CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

10.3

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मार्कण्डेय पुराण

[एक सांस्कृतिक अध्ययन]

वासुदेवशरण अग्रवाल
अध्यापक, काशी विश्वविद्यालय

हिन्दुस्तानी एकेडेमी
इलाहाबाद

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रथम संस्करण: १९६१ ईसवी

आठ रुपये पचास नये पैसे

मुद्रक: तारा यन्त्रालय, कमच्छा, वाराणसी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समर्पण

अपने परमप्रिय सुहृत् और वेद गुरु, वेद विद्या के एकनिष्ठ
आराधक, पं० मधुसूदन जी के तपस्वी शिष्य, शतपथ
ब्राह्मण एवं उपनिषदों के विज्ञान भाष्यों के
निर्माता, राजस्थान वैदिक तत्त्व शोध
संस्थान के संस्थापक,

जयपुरीय स्वर्गीय पं० मोतीलाल जी शास्त्री

की पुण्य स्मृति में
यह अध्ययन भक्ति-पुरस्सर समर्पित है।
ईश्वर से प्रार्थना है कि मुझ पर उनका जो अपार
विद्या ऋण है, उसका कुछ परिशोध इस कृति द्वारा संभव हो सके।

—वासुदेवशरण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकाशकीय

हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद के वार्षिक सम्मेलनों में सदैव से विशिष्ट विद्वानों द्वारा निश्चित विषयों पर व्याख्यान कराने की योजना रही है। विगत ७ दिसम्बर, ५७ के वार्षिक सम्मेलन में इतिहास, पुरातत्व एवं साहित्य के मनीषी विद्वान् डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल ने 'मार्कण्डेय पुराण' के सांस्कृतिक पक्ष पर व्याख्यान प्रस्तुत किया था। डाक्टर अग्रवाल ने संक्षेप में "मार्कण्डेय पुराण—एक सांस्कृतिक अध्ययन" विषय पर विद्वानों के सम्मुख जो भाषण किया था, उससे यह सिद्ध हो गया कि वर्तमान समय में पुराणों की संजीवनी व्याख्या भारतीय धर्म, दर्शन, संस्कृति, सभ्यता एवं इतिहास को संदर्भ सहित समझ लेने के लिए आवश्यक है। योजना थी कि शीघ्र ही उक्त व्याख्यान को पुस्तक रूप में विद्वानों एवं साधारण पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया जाय, परन्तु कई अनिवार्य कारणों से इसमें कुछ विलम्ब हो गया।

डाक्टर वासुदेवशरण जी ने स्वास्थ्य अच्छा न रहने पर भी एकेडेमी के अनुरोध से ग्रन्थ तैयार करने में जो तत्परता दिखाई उसके लिए वह कोटिशः साधुवाद तथा धन्यवाद के पात्र हैं।

हिन्दुस्तानी एकेडेमी
इलाहाबाद

विद्या भास्कर
मन्त्री तथा कोषाध्यक्ष

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विषय-सूची

विषय	अध्याय	पृष्ठ संख्या
पुराण की पृष्ठभूमि	...	१-४
कर्मभूमि भारतवर्ष	...	५-६
भागवतधर्म का समन्वय प्रधान दृष्टिकोण	...	७-८
प्रवृत्ति-निवृत्ति लक्षण धर्म	...	९-१०
भागवतों द्वारा पुराण साहित्य का निर्माण	...	११-१२
नारी और गृहस्थ धर्म की महिमा	...	१३-१४
नारद और मार्कण्डेय ऋषि के प्रतीक	...	१५-१६
मार्कण्डेय पुराण और मार्कण्डेय समस्या पर्व का संबंध	...	१७-१८
मार्कण्डेय पुराण का विश्लेषण	...	१९-२०
धर्मपक्षियों का परिचय	...	२१-२२
धर्मपक्षियों का ऋग्वेद से सम्बन्ध	...	२३-२४
चार धर्मपक्षी चार वेदों के प्रतीक	१-३	२५-२६
भागवतों का नर-नारायण सूत्र	४	२७-२८
निर्गुण-सगुण शक्ति तत्त्व के चतुर्व्यूहात्मक रूप की व्याख्या	४	२९-३०
नाराः या आपः और नारायण तत्त्व की व्याख्या	४	३१-३२
सृष्टि प्रक्रिया की चार कोटियाँ	४	३३-३४
आपो नाराः संज्ञक मातृतत्त्व की व्याख्या	४	३५-३६
पुराणों के त्रिदेववाद का स्वरूप और वैदिक स्रोत	४	३७-३८
वासुदेव-बलराम-प्रद्युम्न-अनिरुद्ध संज्ञक चतुर्व्यूह	४	३९-४०
भागवतों का चतुर्व्यूहात्मा पुरुष	४	४१-४२
भागवत आन्दोलन की कई धाराएँ	४	४३-४४
भागवत धर्म में विभूति या अवतारों का उपबृंहण	४	४५-४६
जैमिनि का दूसरा प्रश्न—द्रौपदी के पाँच पति	५	४७-४८
पाँच इन्द्रों का उपाख्यान	५	४९-५०
उपाख्यानों के मूल में पुराणों का आध्यात्मिक दृष्टिकोण	५	५१-५२
देव तत्त्व क्या है?	५	५३-५४
बलदेव की तीर्थ यात्रा	६	५४-५५
जैमिनी का चौथा प्रश्न	७-८	५५-५६

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विषय	अध्याय	पृष्ठ संख्या
सत्यवादी हरिश्चन्द्र का उपाख्यान	८	५६-५६
सत्यवादी हरिश्चन्द्र की कथा और क्षान्तिवादी जातक	८	५६-६५
आडी-वक के रूप में वसिष्ठ-विश्वामित्र का घोर युद्ध	६	६५
जन्म, मृत्यु और कर्म के विषय में जैमिनि के प्रश्न	१०-१५	६५-७४
पुण्यवान् महामानव का स्वरूप	१३-१५	७४-७९
योग की व्याख्या	४	७६-८०
दत्तात्रेय चरित	१७-१८	८१-८२
अवधूत मत की प्राचीन परम्परा-यदृच्छावाद दर्शन	१९	८३-८५
अवधूत परम्परा और आजगर व्रत पर विचार	१६	८५-८६
अवधूत आजगर मुनि और गोम्मटेश्वर मूर्ति	१६	८६-८८
दत्तात्रेय और मुद्रायोषित् की साधना	१६	८६-६०
अलर्क की माता मदालसा का चरित	२०-२१	६१-६५
अश्वतर नागकृत सरस्वती का स्तोत्र	२२-२३	६५-९८
अलर्क की माता मदालसा का चरित्र	२४-२६	६६-१०१
मदालसा का अलर्क को प्रवृत्ति-धर्मों का उपदेश	२७-२८	१०१-१०२
मदालसा द्वारा गार्हस्थ्यधर्म की महिमा का वर्णन	२७-२८	१०२-१०४
वेदरूप अनन्त अमृत गौ	२९	१०४-१०६
प्रवृत्तिमूलक आचारधर्म	२६	१०७-१०८
अध्यात्मज्ञान और योग	३०-३७	१०८-११०
अध्यात्म-विज्ञान में ओंकार महिमा का वर्णन	३८-४०	११०-११२
ऋषि मार्कण्डेय और उनके शिष्य क्रौष्टुकि का संवाद	४५	११२-११३
पुराणों की सृष्टिविद्या	४५	११३-११५
वेद और पुराण का पारस्परिक सम्बन्ध	४५	११५-११६
पंच तन्मात्रा या गुण और पंच भूत	४५	११६-११८
अण्ड-सृष्टि	४५	११६-१२०
सृष्टि का मूल स्रोत—अव्यक्त	४६	१२१-१२२
संकोच-विकास या स्पन्दन ही सृष्टि है	४६	१२२-१२४
मन्वन्तर और कल्प	४६	१२४-१२६
'पुटके-पुटके मधु' की स्थिति में आदर्श सत्त्व समाज	४९	१२७-१२८
प्रजापति द्वारा वार्ताशास्त्र का विधान	४९	१२८-१२६
रुद्रसृष्टि	५२	१३१-१३२
रुद्रतत्त्व की व्याख्या	५२	१३२-१३५
मन्वन्तर	५३	१३५-१३७
सप्तद्वीपा पृथिवी	५३	१३७-१३६

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विषय	अध्याय	पृष्ठ संख्या
जम्बूद्वीप के वर्ष और पर्वत	५४	१३६-१४०
भारतीय भूगोल	५७	१४०-१५६
पर्वत	५७	१४३-१४६
नदियाँ	५७	१४६-१४९
जनपद-सूची	५७	१४९-१५३
कूर्मसंस्थान के अनुसार देश सूची	५८	१५३-१५६
स्वारोचिष मनु	६१	१५६
पद्मिनी विद्या	६८	१५७-१५९
तीसरे औत्तम मनु की कथा	६९-७०	१५९-१६२
सातवें वैवस्वत मनु	७७-८०	१६२-१७०
देवी माहात्म्य	८१-९३	१७०-१७७
दुर्गा सप्तशती की अध्यात्म व्याख्या	८१-९३	१७७-१८०
मधुकैटभ की व्याख्या	...	१८०-१८१
महिषासुर	...	१८१-१८७
उत्तर चरित—शुंभ निशुंभ का वध	...	१८७-१९०
मार्तण्ड सूर्य की व्याख्या	१०१-१०९	१९१-१९२
सूर्यवंश	१११-१३६	१९२-१९३

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भूमिका

'मार्कण्डेय पुराण, एक सांस्कृतिक अध्ययन' पुस्तक में इस पुराण का धार्मिक और सांस्कृतिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। दिसम्बर १९५६ में हिन्दुस्तानी एकेडमी के मंत्री श्री धीरेन्द्र वर्मा जी का मुझे निमन्त्रण मिला कि मैं एकेडमी के समक्ष किसी चुने हुए विषय पर व्याख्यान दूँ। २५ दिसम्बर १९५६ को धीरेन्द्र जी का यह प्रस्ताव मैंने स्वीकार कर लिया और ७ दिसम्बर १९५७ को प्रयाग में इस विषय पर मेरा व्याख्यान हुआ। वह एक संक्षिप्त प्रयत्न था। समस्त ग्रन्थ का अध्ययन प्रस्तुत करने के लिए तो समय की अपेक्षा थी। कई वर्षों बाद अब वह कार्य पूरा हो सका है। विलम्ब के लिए मैं क्षमा प्रार्थी हूँ। पर इसका परितोष भी है कि इस बीच में इस पुराण के अध्यात्म विषयों को कुछ अधिक विशदता से समझने का अवसर मुझे प्राप्त हो सका है।

पुराण-शास्त्र संस्कृत-साहित्य का महत्त्वपूर्ण अंग है। पुराण संख्या में १८ हैं। उनकी श्लोक संख्या चार लाख के लगभग है। इतने ही उपपुराण हैं जो श्लोक संख्या में एक लाख कहे जाते हैं। इस साहित्य का सामान्य मुद्रण तो अधिकांश में हुआ है, किन्तु जितना ध्यान संस्कृत वाङ्मय की अन्य शाखाओं के मुद्रण और अध्ययन पर दिया गया है उतना अभी तक पुराणों के विषय में संभव नहीं हो सका है। यह कार्य बहुत समय सापेक्ष है, पर किसी मानवती संस्था द्वारा अवश्य करने योग्य है।

भारतीय धर्म, दर्शन और संस्कृति, सदाचार एवं सामाजिक और राजनीतिक जीवन से संबंधित अनेक विषय पुराणों में आए हैं। वस्तुतः पुराणों की वर्णन-समृद्धि से स्तब्ध हो जाना पड़ता है। किन्तु इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण अंश वेदों की अध्यात्म ब्रह्मविद्या या सृष्टिविद्या है जिसे पुराणों ने खुलकर स्वीकार किया। इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्—यह सूत्र ही मानों पुराणों का रचना-बीज बन गया था। इस दृष्टि से वेद-विद्या का ही लोक सुलभ अवान्तररूप पुराण विद्या है। स्कन्द-पुराण में तो पुराण-शास्त्र को वेद की आत्मा कहा है :—

आत्मा पुराणं वेदानाम्,
वेदवन्निश्चलं मन्ये पुराणार्थं द्विजोत्तमाः।
वेदाः प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणे नात्र संशयः।

(स्कन्द, प्रभास खण्ड २।९०)

नारदीय पुराण के अनुसार सब वेदों के अर्थों का सार पुराण हैं :—

सर्ववेदार्थसाराणि पुराणानीति भूपते

(नारदीय १।९।१००)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्कन्द के अनुसार पुराण सर्वशास्त्रमय है (प्रभास खण्ड प्रभास क्षेत्र २।३-४) ये वाक्य श्लाघापरक या अर्थवाद जान पड़ते हैं, किन्तु तथ्य यह है कि वेदार्थ परम्परा ही पुराण का मूल बीज है और वेद सम्बन्धी सृष्टि-विद्या के उपबृंहण के लिए ही पुराणों के अनेक आख्यानों का निर्माण हुआ था। उदाहरण के लिए, इसी मार्कण्डेय-पुराण में एकार्णव विधि की कल्पना, उसमें नारायण का शयन और जागरण, मधु-कैटभ का युद्ध, महिषासुर के साथ देवी का युद्ध, सूर्य के परिवार में संज्ञा और छाया की कथा—ये सब वेदार्थ का ही उपबृंहण करते हैं जैसा उनकी व्याख्या से पाठकों को विदित होगा। इस प्रकार दो चार प्रसंग नहीं, पुराण के सैकड़ों प्रसंगों का मूल वेद-विद्या या सृष्टि-विद्या के साथ जुड़ा हुआ है।

यह बात बहुत आश्चर्यजनक प्रतीत होती है कि पुराण लेखकों के सामने वेदों की अध्यात्म-विद्या की परम्परा अक्षुण्ण थी। कहीं तो वेद के पारिभाषिक शब्द ही और कहीं नई परिभाषा के द्वारा पुराणों में सृष्टि तत्त्व का वर्णन किया गया है। वेद का संवत्सर चक्र (वर्वर्ति चक्रं नहि तज्जराय) पुराणों में विष्णु चक्र है।

वेद की छन्दविद्या पुराण का सौपर्ण उपाख्यान है। पुराण की हयग्रीव विद्या वेद की दध्यङ् अथर्वा विद्या है। वेद की अग्निसोम विद्या का ही उपबृंहित प्रतीक पुराणों की हरिहर मूर्ति है (हरिवंश २।१२५)। वेद का पंचचितिक या पांक्त यज्ञ पुराणों का पञ्चब्रह्म सिद्धान्त है। वेदों की त्रयीविद्या पुराणों की सूर्योपासना में तत्त्वतः पाई जाती है। इसी प्रकार वेद की हिरण्यगर्भ विद्या पुराणों की अण्डसृष्टि के रूप में मिलती है। वेदों की त्रिकविद्या पुराणों की त्रिकविद्या है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित श्लोक पुराणों के दृष्टिकोण की सबसे अधिक व्यापक और सरल कुञ्जी है—

एत एव त्रयो देवा एत एव त्रयोऽग्नयः।
एत एव त्रयो वेदा एत एव त्रयो गुणाः॥

तीन देव, यज्ञ की तीन अग्नियाँ, वेदत्रयी और तीन गुण—ये एक ही त्रिक विद्या के प्रतीक हैं। वस्तुतः वेद में जिन्हें अव्यय, अक्षर और क्षर पुरुष कहा जाता है, वे ही पुराणों में ब्रह्मा, विष्णु और शिव नामक तीन देव हैं और वे ही दर्शन में सत्त्व, रज, तम नामक तीन गुण हैं। इसी का और अधिक विस्तार मार्कण्डेय पुराण के अध्याय २३ में दिए हुए सरस्वती स्तोत्र में देखा जा सकता है—

तव मात्रात्रयं सर्वमस्ति यद् देवि नास्ति च।
त्रयो लोकास्त्रयो वेदा स्त्रैविद्यं पावकत्रयम्॥
त्रीणि ज्योतींषि वर्णाश्च त्रयो धर्मागमास्तथा।
त्रयः कालास्तथावस्थाः पितरोऽहर्निशादयः।
एतन्मात्रात्रयं देवि तव रूपं सरस्वति॥ (२३।३५-३७)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वेद की सदसद् विद्या, परापर विद्या, मूर्तामूर्त विद्या, अक्षर-क्षर विद्या, इनका बारम्बार वर्णन पुराणों में पाया जाता है। कहा गया है कि पुराणरूपी पूर्णचन्द्रमा से वेदों की ज्योत्स्ना ही प्रकाशित होती है। पुराण पंचम वेद हैं। जो पुराण विद्या से परिचित नहीं वह वेदों को भी नहीं जानता—

पुराणं पञ्चमो वेद इति ब्रह्मानुशासनम्।
यो न वेद पुराणं हि न स वेदात्र किञ्चन॥

ईश्वर की वेदविद्या, शौनकादि ऋषियों की पुराण विद्या और मन्वादि की धर्मशास्त्र विद्या ये ही मुख्य विद्याएँ हैं। कौन सा वह धर्म है, कौन सा उसका प्रतिपादक ज्ञान है और कौन सा ऐसा विषय है जो पुराणों में न मिलता हो?

किन्तु पुराणों की भाषा बहुधा प्रतीकात्मक है। उनके रहस्य को जानने के लिये प्रतीकों का उद्घाटन अनिवार्य है। ज्ञात होता है कि वैदिक युग में ही पुराणों के प्रतीक और आख्यानों की रचना आरम्भ हो गई थी।

सूर्य की स्त्री संज्ञा और छाया की कहानी एवं उनके पुत्र यमयमी और दो अश्विनिकुमारों का आख्यान वैदिक युग में ही बना होगा। अथर्व वेद में कहा है—

येत आसीद् भूमिः पूर्वा यामद्धातय इद्विदुः।
यो वै तां विद्यान्नामथा स मन्येत पुराणवित्॥
(अथर्व ११।८।७)

जैसी यह भूमि पहले थी, जैसी ज्ञानी ऋषि इसे जानते हैं, उसके उस स्वरूप को जो जानता है, वही पुराणवित् है। व्रात्य सूक्त में इतिहास-पुराण का उल्लेख आया है। अथर्व ११।७।२४ में ऋक्, यजु, साम, छन्द और पुराण को उच्छिष्ट ब्रह्म से उत्पन्न कहा गया है।

छान्दोग्योपनिषद् में विद्याओं की सूची में इतिहास-पुराण विद्या का उल्लेख पंचम वेद के रूप में है। इस प्रकार वेद और उपनिषदों की पृष्ठभूमि में पुराण विद्या का आविष्कार या आरम्भ हो गया था। अश्वमेध के पारिप्लव आख्यान में अन्य विद्याओं के साथ-साथ पुराणों के व्याख्यान का भी उल्लेख है (शतपथ-१३।३।४।१५)।

पुराण के पंचलक्षण प्रसिद्ध हैं—मन्वन्तर, वंश, सर्ग, प्रतिसर्ग और वंश्यानुचरित। इनमें सर्ग और प्रतिसर्ग ये ही दो मुख्य विषय थे। जगत् की उत्पत्ति या सृष्टि सर्ग है और प्रलयभाव प्रतिसर्ग है। दोनों एक ही रथ के दो पहियों के समान हैं। पुराण की भाषा में इन्हें संचर और प्रतिसंचर कहते हैं। दोनों सृष्टिविद्या के ही रूप हैं। अतएव सृष्टि विद्या ही मुख्यतः पुराण विद्या थी। आगे चल कर जब पुराणों का अति विस्तार हुआ तब और भी अनेक विषयों का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पुराणों में समावेश किया गया जिनका कुछ उल्लेख श्रीमद्भागवत में आया है (२।१०।१-७; १२।७।८-२२)। यदि सब पुराणों से संग्रह किया जाय तो पुराणों में वर्णित विषयों की संख्या सैकड़ों तक पाई जायगी।

वायु पुराण में उल्लेख आता है कि मूल पुराण संहिता चार सहस्र श्लोकों की थीं[1]। इस समय जो अठारह पुराण हैं उनकी श्लोक संख्या चार लाख हैं, अर्थात् मूल पुराण संहिता के विस्तार में सौ गुनी वृद्धि हुई हैं। प्रश्न होता है कि इस विस्तार का श्रेय किसको है ? किसने इस प्रकार पुराणों के कलेवर में वृद्धि की ? इस प्रश्न का सम्प्रदायानुगत उत्तर तो यही है कि अकेले वेदव्यास ने ही चतुर्लक्ष श्लोकात्मक अष्टादश पुराणों की रचना की है। एक दृष्टि से तो यह मान्यता ठीक है, किन्तु दूसरी दृष्टि से जो वायु पुराण में कहा है वही सच्चा दृष्टिकोण है, अर्थात् वेदव्यास ने मूल पुराण संहिता का संकलन किया और उसे उन्होंने अपने छः शिष्यों को पढ़ाया। उन छः में से भी केवल तीन ने अपने अपने नाम से उन संहिताओं की परम्परा को आगे बढ़ाया। विषय की दृष्टि से वे सब 'एकार्थवाचिका' थीं, उनमें केवल पाठान्तरों का भेद था। उन्हें ही लोमहर्षण सूत ने अपनाकर कथावाचन के लिये एकरूपता दी। उन्हीं के पुत्र उग्रश्रवा सौति हुए। गृहपति शौनक के यज्ञ में पुराणों का आद्यन्त वाचन किया गया और तब से कथावाचन की अविच्छिन्न परम्परा प्रचलित हुई। उस परम्परा में जो भी पुराण शास्त्र को जानने वाले विद्वान् हुए वे पौराणिक कहलाए। उन्हें गुजरात महाराष्ट्र में पुराणी एवं उत्तर भारत में व्यास कहा जाता है। इस प्रकार के पौराणिक विद्वानों का उल्लेख बाणभट्ट ने हर्ष चरित में किया गया है।

इन पौराणिकों में अधिकांश कथावाचक या वाचक होते थे किन्तु उन्हीं में कुछ ऐसे मेधावी और प्रतिभाशाली भी होते थे जो नवीन मौलिक काव्य रचना करके पुराण में नए विषयों को जोड़ते रहते थे। उन्हें हम उपबृंहक कह सकते हैं। ये लोग नई रचना को अपनी पोथी में लिखते थे और उन्हीं के आधार पर जो नई प्रतिलिपियाँ तैयार की जाती थीं उनमें वे नए परिवर्द्धित अंश भी सन्निविष्ट हो जाते थे। अन्य पुराणों के कथावाचक भी उन नए अंशों को प्रकरण और सन्दर्भों की संगति के अनुसार अपने अपने पुराण में परिगृहीत कर लेते थे। उदाहरण के लिये तण्डिकृत शिवसहस्रनाम लिंग पुराण (६५।५४।१६८) और

---

(१) षट्शः कृत्वा मयाप्युक्तं पुराणमृषिसत्तमाः।

आत्रेय सुमति, कश्यप अकृतव्रण, भारद्वाज अग्निवर्चः, वशिष्ठ मित्रयु, सावर्णि सौमदत्ति, सुशर्मा शांशपायन ये छः व्यासजी के पुराण-शिष्य थे। इनमें से तीन शिष्यों ने तीन संहिताओं की रचना की। वे एक ही अर्थ की वाचक थीं, किन्तु पाठान्तरों के कारण पृथक् मानी जाती थीं। शांशपायन द्वारा विरचित संहिता को छोड़कर औरों में चार सहस्र श्लोक थे (वायु० ६१।५५-५६)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनुशासन पर्व में पाया जाता है। दक्षकृत शिव सहस्र नाम वायु पुराण अध्याय ३०, ब्रह्म पुराण अध्याय ४०, वामन पुराण अध्याय ४७ (जहाँ उसे वेनकृत स्तोत्र कहा गया है) और शान्ति पर्व अध्याय २८४ में पाया जाता है, यद्यपि शान्ति पर्व पूना संस्करण में उसे प्रक्षिप्त मानकर परिशिष्ट २८ में रक्खा गया है। और भी मथुरा माहात्म्य, प्रयाग माहात्म्य, गया माहात्म्य, काशी माहात्म्य आदि आदि प्रकरणों को एक से अधिक पुराणों में स्थान मिला है।

इसका भी हेतु यही है किसी उपबृंहक आचार्य ने उसकी रचना की और वहीं से वह विभिन्न पुराणों में लिया गया। इससे यह भी अनुमान होता है कि व्यास या पौराणिकों के भिन्न-भिन्न परिवारों में भिन्न-भिन्न पुराणों के बाँचने की परम्परा का पालन होता था। वे ही परिवार अपने-अपने पुराणों की आदर्श प्रतियों की रक्षा करते थे और नये परिवर्द्धित अंशो को जोड़कर उन्हें अद्यावधिक बनाए रहते थे। इस प्रकार लोक में पुराणविद्या का बहुशः प्रचार और उपबृंहण हुआ। महापुराणों की रचना के बाद जो उसी परम्परा में रचना हुई वह साहित्य उपपुराण के नाम से अभिहित हुआ। ज्ञात होता है कि उत्तर गुप्तयुग के बाद महापुराणों के नाम और उनकी श्लोक संख्या का एक आरम्भिक तलपट तैयार हो चुका था, यद्यपि कालान्तर में भी उनमें उपबृंहण करने की छूट बनी हुई थी।

एक तथ्य सदा स्मरण रखना चाहिए, वह यह कि पुराणकारों की एक दृष्टि लोक पर थी और दूसरी वेद पर। लोके वेदे च—इस समग्र सूत्र से पुराणों का आविर्भाव हुआ। इस आँख से पुराणों का अध्ययन अत्यन्त फलदायक सिद्ध हो सकता है। पुराणों में अन्तर्निहित वेदार्थ की परम्परा का उद्‌घाटन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं रोचक विषय है जिसपर कार्य होना आवश्यक है। उदाहरण के लिये लिंगपुराण के दूसरे खण्ड के अध्याय १८ में १० से २२ श्लोक तक शिव द्वारा स्वयं अपने स्वरूप का कथन है जो लगभग वैदिक शब्दावली में ढाला गया गया है। हरिवंश का हरिहर स्तोत्र वैदिक अग्नि सोमविद्या का ही उपबृंहण है (हरिवंश २।११५।२९-३७)।

सैकड़ों पीढियों तक पौराणिकों ने वेदार्थ एवं अन्य सामग्री के उपबृंहण का कार्य किया। उस विषय में कहीं किसी भी व्यक्ति विशेष के नाम का उल्लेख नहीं पाया जाता। रचना करने वालों ने सर्वत्र अपने व्यक्तित्व को मिटाकर अपनी रचना को परम्परा में लीन कर दिया है। व्यक्ति के अहं का कोई प्रश्न कभी उठने नहीं पाया। सारे पुराण वेदव्यास की रचना हैं, यही आस्था दृढ बनी रही। अकेले वेदव्यास ने पुराण संहिता की रचना की, इस मान्यता का क्या कारण है ? यद्यपि नए-नए लेखक नई रचनाएँ करके उन्हें पुराणों में रखते जा रहे थे, फिर भी व्यास जी के कर्तृत्व को छोड़ना संभव न था। इसका भी एक कारण है। व्याकरण शास्त्र में पाणिनि ने तद्विषयता के नियम का उल्लेख किया है (छन्दो ब्राह्मणानि च तद्विषयाणि)। हमने अपने 'पाणिनिकालीन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भारतवर्ष' ग्रन्थ में इस नियम की विस्तृत व्याख्या की है (पृ २८०,-२८१,-२८२-८३)। इसका संक्षिप्त अर्थ यह है कि वैदिक संहिताओं और ब्राह्मण ग्रन्थों का नामकरण व्यक्ति विशेष के नाम से न होकर वैदिक चरण या विद्यापीठ के संस्थापक आचार्य के नाम से ही होता था। जिन ग्रन्थों की रचना वैदिक चरणों के युग में हुई उन सबके विषय में नाम करण का यही नियम लागू हुआ। मूल पुराण संहिता भी उनमें में एक थी और वेदव्यास के नाम के साथ जो उसका सम्बन्ध एक बार जुड़ा तो वह फिर सदा के लिये पक्का हो गया। जैसा तैत्तिरीय संहिता तैत्तिरीय ब्राह्मण, तैत्तिरीय आरण्यक, तैत्तिरीय उपनिषत्, तैत्तिरीय प्रातिशाख्य और उस परम्परा के अन्य ग्रन्थ तैत्तिरीय चरग से सम्बन्धित होने के कारण चरण के मूल संस्थापक तित्तिरि आचार्य की ही रचना माने जाते थे और उन्हीं आचार्य के नाम पर उनका नाम करण लोक में प्रसिद्ध हुआ। ठीक इसी प्रकार पुराण संहिता के साथ पाराशर्य व्यास का नाम एक बार जुड़ जाने के बाद फिर वही नाम सदा चालू रहा। ऋग्वेदीय पाराशर्य चरण में पुराण संहिता का विकास हुआ। संहिता ग्रन्थों के विषय में कर्ता के रूप में फिर किसी दूसरे नाम की स्वीकृति या मान्यता संभव ही न थी। ग्रन्थों के नाम करण की जो प्राचीन भारतीय पद्धति थी उसे एक बार समझ लेने पर इस विषय में फिर कोई शंका का अवसर नहीं रह जाता और यह बात स्पष्ट हो जाती है कि क्यों एक ही व्यास के नाम से समस्त पुराण संहिताओं का कर्तृत्व विख्यात होता रहा है और आज भी है। इस बात की चिन्ता किसी के मन में न हुई कि वे पुराण पहले बने थे, या अब बने हैं या भविष्य में बनेंगे। पुराण ग्रन्थों को किस कोटि में रक्खा जाय इस विषय में भी किसी के मन में सन्देह न था। सर्वत्र उन्हें संहिता कहा गया और माना गया है। जो विशेष आदर और प्रामाणिकता संहिता की कोटि में आने वाले वाङ्मय को इस देश में दी जाती थी वही पुराण संहिता को भी मिली। इस परम्परागत मान्यता में कोई अन्तर कभी नहीं पड़ा। अर्वाचीन दृष्टि से भी जो विद्वान् पुराणों का अध्ययन करते हैं, उन्हें पुराण विद्या के मूल स्वरूप, हेतु और विस्तार के एवं पुराणों के नामकरण के इन तथ्यों का स्मरण रखना चाहिए। तभी वे इस महनीय शास्त्र के शतधा सहस्रधा वितान को यथार्थ रूप में जान सकेंगे।

'मार्कण्डेय पुराण एक सांस्कृतिक अध्ययन' यह ग्रन्थ तो एक लघु प्रयास है। समस्त पुराण साहित्य के विषय में ऐसे ही सन्तुलित एवं इतिहासानुगामी अध्ययन की आवश्यकता है। एक ओर वैदिक तत्त्वविद्या की दृष्टि से पुराणों का अनुशीलन आवश्यक है, तो दूसरी ओर भारतीय इतिहास के विभिन्न युगों में जो सांस्कृतिक विकास हुआ है उसकी दृष्टि से भी पुराणों की छान बीन उतनी ही आवश्यक और फलप्रद हो सकती है। विशेषतः शुंगकाल से लेकर गुप्त युग तक धर्म, दर्शन, कला, लोक विश्वास, आचार पद्धति और संस्कृति का जो अपरिमित विकास हुआ उसी की सामग्री का पुराणों में सन्निवेश है। यदि यह पूछा जाय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कि जिस समय बौद्धों ने बौद्ध संस्कृत साहित्य के सैकड़ों ग्रन्थों का निर्माण किया, जिस समय जैन विद्वानों ने जैन संस्कृत साहित्य की रचना की, उस समय ब्राह्मण लेखकों ने वाङ्मय के क्षेत्र में क्या पराक्रम किया, तो इसके उत्तर में निस्सन्देह यह कहा जा सकता है कि विशाल पुराण साहित्य ही उनकी उस युग की रचना है। लिंग पुराण में तो यहाँ तक कहा है कि स्वयं विष्णु भगवान् ने मायी शास्ता का रूप रखकर सोलह लाख श्लोकों के बराबर मायामय शास्त्र की रचना की जो शास्त्र श्रुतियों स्मृतियों के विरुद्ध, वर्णाश्रम धर्मों से रहित, स्वर्गनरक के विश्वास से शून्य तथा स्त्रियों के पातिव्रत धर्म को अस्त व्यस्त करने वाला था (लिंगपुराण १।७१।७३-८३)। ज्ञात होता है कि गुप्त युग के अन्त में बौद्ध और जैन साहित्य की सम्मिलित श्लोक संख्या १६ लाख मानी गई। उसी समय हिन्दू लेखकों ने चतुर्लक्ष श्लोकात्मक पुराण साहित्य का सृजन किया। इस साहित्य के निर्माण में पाँच निम्नलिखित धाराएं मुख्य थीं—

१—वेद या त्रयीविद्या जिसे वेदारण्यक, वेदोपनिषत् या वेदान्त भी कहते थे।

२—सांख्य

३—योग

४—पंचरात्र वैष्णव भागवत

५—पाशुपत या शैव।

गुप्तकाल में यों तो अनेक दर्शन थे किन्तु आस्तिक धारा में ये पाँच ही मुख्य माने जाते थे। जैसा विष्णुधर्मोत्तर पुराण में कहा है इन्हें उस युग में 'कृतान्त पंचक' कहा जाता था—

सांख्या योगाः पंचरात्रं वेदाः पाशुपतं तथा।
कृतान्तपंचकं ह्येतच्छास्त्राणि विविधानि च॥

(विष्णुधर्मोत्तर ३।२२।१३३-१३४)

शान्तिपर्व में यहाँ तक कहा है कि इस समय लोक में धर्म के झंडो के झुंड के झुंड फैले हुए हैं (दृष्ट्वाच धर्मध्वज केतु मालां प्रकीर्यमाणामुपरि प्रजानाम् ३४२।६), अपने अपने धर्मों के बहुत से दरवाजे लोगों ने खोल रक्खे हैं जिन्हें देखकर बुद्धि चकरा जाती है (३४२।१०-१६, एवं बहुविधैर्लोके धर्म द्वारैरनावृतैः। ममापि मतिराविग्ना)। गुप्तयुग के गाढे समय में जो पाँच महाशास्त्र धार्मिक मन्थन द्वारा ऊपर उभर आए और जिन्हें सबने मान्यता दी वे ये ही पाँच थे, अर्थात् वेद, भागवत-वैष्णव, पाशुपत-शैव, सांख्य और योग। अग्नि पुराण (२१९।६१) एवं गुप्तकालीन अहिर्बुध्न्य संहिता (पृ० ११७-११८) में भी इन्हीं पाँचों का उल्लेख हुआ है। शान्ति पर्व (७६) में इन महान् शास्त्रों को एक दूसरे का अंग या

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परस्पर मिला हुआ कहा गया है। एक ओर ये वेद, आरण्यक और उपनिषदों की परम्परा को सर्वांश में स्वीकार करते थे और दूसरी ओर लोक में प्रचलित मूर्ति-पूजा, मन्दिर-निर्माण, दान, व्रत, उपवास, तीर्थ-यात्रा आदि को भी मान्यता प्रदान करते थे। जैसा वायु-पुराण में कहा है अनेक प्रकार के योगधर्म, सांख्य दर्शन, भागवत-वैष्णव दर्शन, भक्तिमार्ग और ज्ञानमार्ग एवं सौर शाक्त आदि के दर्शनों का पुराणों में निरूपण हुआ है :—

पुराणेष्वेषु बहवो धर्मास्ते विनिरूपिताः।
रागिणां च विरागाणां यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥
गृहस्थानां वनस्थानां स्त्रीशूद्राणां विशेषतः।
ब्राह्मणक्षत्रियविशां ये च संकरजातयः ॥
गङ्गाद्या या महानद्यो यज्ञव्रततपांसि च।
अनेक विधदानानि यात्राश्च नियमैः सह ॥
योगधर्मा बहुविधाः सांख्या भागवतास्तथा।
भक्तिमार्गा ज्ञानमार्गा वैराग्यानिलनीरजाः ॥
उपासनाविधिश्चोक्तः कर्मसंशुद्धि चेतसाम्।
ब्राह्मं शैवं वैष्णवं च सौरं शाक्तं तथाऽऽर्हतम् ॥
षड्दर्शनानि चोक्तानि स्वभाव नियतानि च।
एतदन्यच्च विविधं पुराणेषु निरूपितम् ॥

(वायु० १०४।११–१७)

पुराणों का आलोचनात्मक अध्ययन करते समय यह बात तुरन्त सामने आ जाती है कि ऊपर लिखे हुए पाँच महान् शास्त्रों या कृतान्त पंचक से ही पुराणों के परिबृंहित स्वरूप का विकास हुआ। इसी दृष्टि से पुराणों की समन्वयात्मकशैली का मर्म समझा जा सकता है। वैष्णव और शैव या भागवत और पाशुपत धर्म के आचार्यों ने पुराण साहित्य पर गहरी छाप छोड़ी है। इन दोनों धर्मों और दर्शनों की जानकारी का स्रोत पुराण साहित्य है। बहुधा एक ही पुराण में पाशुपत और पंचरात्र आचार्यों के मन्तव्य एवं कृतियाँ साथ-साथ पाई जाती हैं। सांख्य और योग साधन के विषय भी प्रायः सर्वत्र आए हैं। वेदविद्या की प्राचीन धारा तो इन चारों की मूल ही थी। उसमें आस्था होने के कारण ही इन चारों को 'एकनिष्ठ' कहा जाता था। इस दृष्टिकोण से पुराणों का नवीन एवं जागरूक अध्ययन प्रवृत्त होना चाहिए। तभी विशाल पुराण वाङ्मय का सच्चा मर्म विदित हो सकेगा और प्राचीन भारत के उस महान् सदाचारमय धर्म

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का स्वरूप भी जाना जा सकेगा जिसे चरितार्थ करने के लिये इस प्रकार के साहित्य की रचना हुई और कथावाचन द्वारा लोक में जिसका अपरिमित विस्तार किया गया। पुराणों की यह महती देन है कि वेदों का स्वच्छ अमृतमय सलिल लोक-पावनी गङ्गा बनकर हमारे पास तक आता रहा और वेदरूपी सुपर्ण के पंखों से झरनेवाला अमृत लोक की तृप्ति और श्रेय के लिये हमें सदा प्राप्त होता रहा।

काशी विश्व विद्यालय
२१-४-१९६१
वैशाख शुक्ल ६, सं० २०१८

वासुदेवशरण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्रीः

मार्कण्डेय पुराण जिसका सांस्कृतिक अध्ययन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है पुराण-साहित्य में अपना विशेष स्थान रखता है। विषय और शैली की दृष्टि से यह अत्यन्त रोचक है। इसकी सामग्री का महत्त्व इसलिये भी बढ़ जाता है क्योंकि देश और काल की पृष्ठभूमि में इसको व्याख्या करने की एक ऐतिहासिक संभावना हमारे सामने आती है। यह पुराण गुप्तकालीन संस्कृति की उदात्त भावना से ओतप्रोत है। स्वर्ण-युग की संस्कृति के निर्माण में जिन अनेक धार्मिक और सामाजिक संस्थाओं और विचारधाराओं से प्रेरणा मिल रही थी उन्हें हम इस पुराण के वर्णनों में स्पष्ट पहचान सकते हैं। उस युग में जीवन के प्रति एक नया दृष्टिकोण पल्लवित हुआ था जिसकी ओर 'पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्' कह कर कालिदास ने संकेत किया था। श्री सिद्धसेन दिवाकर ने अपनी पुरातन और नूतन विषयक द्वात्रिंशिका में उसी युग के विषय में इस प्रकार श्रद्धापूर्वक लिखा था—'जो पुरातनकाल था वह मर चुका। वह दूसरों का था। आज का जन उसको पकड़ कर बैठेगा तो वह भी पुरातन की तरह ही मृत हो जायगा। पुराने समय के जो विचार हैं वे तो अनेक प्रकार के हैं। कौन ऐसा है जो भली प्रकार उनकी परीक्षा किए बिना अपने मन को उधर जाने देगा[1] ?' उस नये युग में जीवन और कर्म, धर्म और आचार, त्याग और संग्रह, प्रवृत्ति और निवृत्ति के विषय में जो नई आस्था और नई भावनाएं उत्पन्न हो रही थीं उनके तरंगित वर्णन पुराण साहित्य में अनेक स्थानों पर मिलते हैं। उनमें भी मार्कण्डेय पुराण तो जागरूक विचारों के उस आन्दोलन की प्रबल अभिव्यक्ति है।

उस स्वर्णयुग के विचारों की कई विशेषताएं उभर कर सामने आती हैं। एक तो मानव और उसकी कर्मशक्ति के प्रति नई आस्था और नया विश्वास लोक में उत्पन्न हुआ था। जैसा इसी पुराण में लिखा है—

मनुष्यः कुरुते तत्तु यन्न शक्यं सुरासुरैः।

(मार्क० ५७।६३)

मनुष्य जो कर सकता है वह स्वर्ग के देवता भी नहीं कर सकते। कर्म का बल पृथिवी के मानव की सब से बड़ी शक्ति है। यही उसकी विजय है। इसीलिए तो स्वर्ग के देवता भी पृथिवी पर मनुष्य देह में जन्म लेना चाहते हैं।[2]

१—जनोऽयमन्यस्य मृतः पुरातनः पुरातनैरेव समो भविष्यति।
पुरातनेष्वित्यनवस्थितेषु कः पुरातनोक्तानपरीक्ष्य रोचयेत्॥

२—देवानामपि विप्रर्षे सदा एष मनोरथः।
अपि मानुष्यमाप्स्यामो देवत्वात्प्रच्युताः क्षितौ॥ (मार्क० ५७।६२-६३)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मानवीय कल्पना ने यहाँ तक उड़ान भरा कि ब्रह्मत्व, देवत्व और इन्द्रत्व ये सब मनुष्य के किए हुए कर्मों के फल हैं—

'देवत्वममरेशत्वं तत्पूज्यत्वं च मानवाः ।
प्रयान्ति वांछितं वान्यद् दृढं ये व्यवसायिनः ।।
नाविज्ञातं न चागम्यं नाप्राप्तव्यं दिवि चेह वा ।
उद्यतानां मनुष्याणां यतचित्तेन्द्रियात्मनाम् ।।

(२०।३६-३७)

बुद्धिपूर्वक कार्य करनेवालों के लिये यहाँ असाध्य क्या है (किं वासाध्यं विपश्चिताम् २०। ३५)? देवत्व, इन्द्रत्व और उनके द्वारा भी पूजनीय जो ब्रह्मत्व है उस सबको या और भी जो मनवांछित हो उसे वे मनुष्य प्राप्त कर लेते हैं जिनके पास कर्म का अटल निश्चय है। जिन मनुष्यों का चित्त, इन्द्रियाँ और आत्मा अपने वश में हैं एवं जो कर्म करने में उद्यत हैं, उनके लिये स्वर्ग में या पृथिवी पर कुछ भी ऐसा नहीं है जो ज्ञान और कर्म की उपलब्धि से बाहर हो, जिसे वे चाहें तो न जान सकें या न पा सकें या जहाँ न पहुँच सकें। इन समुदीर्ण विचारों और गूँजते हुए वाक्यों में मानो उस स्वर्णयुग के मेरुदंड को ही हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं, और उस युग की नाडी का ही स्पर्श कर रहे हैं।

कर्म की इस भावना को गुप्तयुग में एक ऊँचे धरातल पर उठाया गया। कर्म की साधना निजी स्वार्थों के लिये नहीं, वरन् प्राणिमात्र के उपकार के लिये होनी चाहिए। मार्कण्डेय पुराण के लेखक ने इस प्रकार के उदात्त कर्म के लिये करुणात्मक कर्म इस नये शब्द का उल्लेख किया है—

एवं न बंधो भवति कुर्वतः करुणात्मकम् ।
न च बंधाय तत्कर्म भवत्यनभिसंधितम् ।। (९५।१५)

मानव का जो कर्म करुणा से प्रेरित है, जिसमें अभिसंधान या कपट का भाव नहीं है, वही कर्म ऐसा है जिससे कर्म का बंधन नहीं होता। उसे करनेवाले प्राज्ञ मनुष्य की आत्मा उससे प्रक्षालित हो जाती है—

एवं प्रक्षाल्यते प्राज्ञैरात्मा बन्धैश्च रक्ष्यते (९५।१७)।

इस प्रकार की भावना गुप्तयुग की विशेषता थी। भागवतधर्म और महायानधर्म दोनों इससे अनुप्राणित थे। जैसा मत्स्यपुराण में आया है, सर्वसत्त्वों की हितचिंता का यह भाव न केवल एक समाज या देश तक सीमित था, वरन् उस युग के मानव ने अपना हृदय विश्व के लिये उन्मुक्त कर दिया था—'जो दुःखी हैं वे सुखी हों, चराचर के पाप दूर हों। इस दान के प्रभाव से ब्रह्माण्ड के दोष

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

क्षीण हों[1]।' बौद्धलोग उस युग में इस प्रकार की धार्मिक प्रभावना को धर्मांबुवर्ष कहते थे।[2] मार्कण्डेय पुराण के शब्दों में प्राज्ञ जनरूपी मेघ अपने उपकारों की वृष्टि से सब सुहृदों को तृप्त करते हैं।[3]

सब भूतों के प्रति मैत्री का भाव गुप्तकालीन संस्कृति का सौगन्धिक पुष्प था। उसके सौरभ से सारा देश महमहा उठा। उन भावों की गमक इन वाक्यों में आज भी सुरक्षित है—

सर्वलोकप्रियो नित्यमुवाचैतदहर्निशम् ।
नन्दन्तु सर्वभूतानि स्निह्यन्तु विजनेष्वपि ॥१२॥
स्वस्त्यस्तु सर्वभूतेषु निरातंकानि सन्तु च ।
मा व्याधिरस्तु भूतानामाधयो न भवन्तु च ॥१३॥
मैत्रीमशेषभूतानि तुष्यन्तु सकले जने ।
शिवमस्तु द्विजातीनां प्रीतिरस्तु परस्परम् ॥१४॥
समृद्धिः सर्ववर्णानां सिद्धिरस्तु च कर्मणाम् ।
ते लोकाः सर्वभूतेषु शिवा वोऽस्तु सदा मतिः ॥१५॥
यथात्मनि तथा पुत्रे हितमिच्छथ सर्वदा ।
तथा समस्तभूतेषु वर्तध्वं हितबुद्धयः ॥१६॥
यो मेऽद्य स्निह्यते तस्य शिवमस्तु सदा भुवि ।
यश्च मां द्वेष्टि लोकेऽस्मिन् सोऽपि भद्राणि पश्यतु ॥१९-२०॥
(मार्क०, अध्याय ११८)।

'सब प्राणी आनन्दित हों, परायों के प्रति भी वे स्नेह प्रकट करें। सब भूतों का कल्याण हो। सब निर्भय हों। सब प्राणी आधि-व्याधियों से मुक्त हों।

१—ये दुःखितास्ते सुखिनो भवन्तु
प्रयान्तु पापानि चराचराणाम् ।
त्वद्दान शस्त्राहत पातकानां
ब्रह्माण्ड दोषाः प्रलयं व्रजन्तु ॥ मत्स्य २७६।१३-१४

२—दृष्ट्वा मुनिः सत्त्वगुणं तथैव
क्लेशेष्वमेध्यप्रतिमेषु मग्नम् ।
तत्क्लेशपंक व्यवदानहेतो-
र्धर्माम्बुवर्षं व्यसृजत्प्रजासु ॥
(रत्नगोत्र विभाग, महायानोत्तर तंत्रशास्त्र १।११०)

३—उपकारं सुहृद्वर्गे नृमेघो वर्षति प्राज्ञः (२०।३०)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सब जीव अन्य सब के प्रति मैत्री की भावना पुष्ट करें। सब में परस्पर प्रीति हो। सब वर्णों की समृद्धि हो। सबको अपने-अपने कर्म में सिद्धि प्राप्त हो। सब लोग सब भूतों में हित-बुद्धि रक्खें। जैसी अपने प्रति और जैसी अपने पुत्र के प्रति हित की इच्छा रहती है वैसी ही सब भूतों के प्रति भी हित की बुद्धि हो। इस लोक में जो हमसे प्रीति करता है उसका भी कल्याण हो, और जो हमसे द्वेष करता है उसका भी कल्याण हो।'

मानव-मात्र के प्रति आस्था और मैत्री की भावना तथा कर्म में दृढ़ निष्ठा, इन दोनों के सम्मिलन से गुप्तयुग में एक नई भावना का जन्म हुआ। वह भारतदेश के एक नूतन स्वरूप की कल्पना थी। उस भावना के मूल में लेशमात्र भी अहंकार या गर्व न था; किन्तु वह ऊपर कहे उच्च आदर्शों को अपने ही चारों ओर प्रत्यक्ष देखने की भावना थी। इस संबंध में मार्कण्डेय पुराण में तथा और भी कई पुराणों में उस युग के भारतवर्ष की तीन विशेषताएँ कही गई हैं। पहली यह कि भारत कर्मभूमि है, दूसरी यह कि भारत सब कल्याणों का बीज है, और तीसरी यह कि भारत केवल भौगोलिक सीमाओं तक ही सीमित नहीं, उसका सांस्कृतिक विस्तार द्वीपान्तरों तक फैला हुआ है।

गुप्तयुग की संस्कृति में भोगभूमि और कर्म भूमि, दो प्रकार के लोकों की कल्पना की गई। वराङ्गचरित नामक काव्य (सातवीं शती) के सातवें अध्याय में भोगभूमि और आठवें अध्याय में कर्मभूमि के आदर्शों का विस्तृत वर्णन किया गया है। उस युग में और सब देशों को भोगभूमि और भारत को कर्मभूमि माना गया। इसमें किसी अन्य देश की निन्दा का भाव न था क्योंकि भोगभूमियाँ होने से वहाँ के मनुष्य भी सुखी और समृद्ध थे। परन्तु कर्मक्षेत्र के रूप में भारत ही वह पुण्यभूमि थी जहाँ भुक्ति के साथ मुक्ति की, एवं स्वर्ग के साथ अपवर्ग की भी साधना कर्म द्वारा की जा सकती थी। जैसा मार्कण्डेय पुराण में कहा है—

भारतं नाम यद्देशं दक्षिणेन मयोदितम्।
तत्कर्मभूमिर्नान्यत्र सम्प्राप्तिः पुण्यपापयोः॥

(५५।२१-२२)।

अर्थात् चतुर्दल पार्थिव कमल के दक्षिणी पत्र का नाम भारतवर्ष है। वही कर्मभूमि है। कर्म का जैसा विवेक भारत में विकसित हुआ है वैसा अन्यत्र नहीं।[1] महाभारत के आरण्य पर्व में भी इसी बात को कहा गया है—

कर्मभूमिरियं ब्रह्मन् फलभूमिरसौ मता

(आरण्यक० २४७।३५)।

यह भाव उस समय इतना प्रबल और सर्वसम्मत था कि न केवल धर्मग्रंथों

१ — न खल्वन्यत्र मर्त्यानां भूमौ कर्म विधीयते (५७।३)।
प्रयाति कर्मभूर्ब्रह्मन् नान्या लोकेषु विद्यते (५७।६२)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में बल्कि काव्य-साहित्य में भी प्रकट हुआ। बाण ने कादम्बरी में कहा है— तथा त्वमपि कर्मभूमीभूतेऽस्मिन् भारते वर्षे जन्मनि जन्मन्येवोत्पन्नानुरागः, अर्थात् कर्मभूमि-रूप इस भारतवर्ष में उत्पन्न होने के लिये जन्म जन्म में तुम्हारा अनुराग हो (कादम्बरी, वैद्य संस्करण पृ० ३१९)। अध्यात्मरामायण में जो उसी युग की रचना थी भारत को कर्मभूमि कहा गया।[1] भागवत में पृथिवी के नव वर्षों का वर्णन करते हुए लिखा है—

> तत्रापि भारतमेव वर्षं कर्मक्षेत्रम्, अन्यान्यष्ट वर्षाणि स्वर्गिणां पुण्यशेषोपभोगस्थानानि भौमानि स्वर्गपदानि व्यपदिशन्ति (भागवत ५।१७।११)।

अर्थात् केवल भारतवर्ष ही कर्मक्षेत्र है। और जो आठ वर्ष हैं वे भौम-स्वर्ग हैं जहाँ स्वर्ग के प्राणी शेष पुण्यों का उपभोग करने के लिये जन्म लेते हैं। स्वर्ग से अधिक कर्म की महिमा यही उस युग के भारत की विशेषता थी। कर्म भोग से श्रेष्ठ है क्योंकि कर्म में मानव की स्वतन्त्रता का बीज है। भोग का जीवन तो कर्मफल की बेड़ियों से जकड़ा हुआ है। भोग में उदय नहीं, केवल क्षय का भाव है। इसीलिये स्वर्ग के देवों को कर्म-निगड़-ग्रस्त और कर्मक्षय में उन्मुख होने के कारण मनुष्यों से हीन माना गया।[2]

जिस भारतवर्ष को उस युग में स्वर्ग से भी श्रेष्ठ कहा जाता था उसके स्वरूप का परिचय भी पुराणों ने दिया है। मार्कण्डेय के शब्दों में भारतवर्ष सर्वबीज है (तदेतद्भारतं वर्षं सर्वबीजं द्विजोत्तम, ५७।६०)। बीज वही है जिससे फल की उत्पत्ति हो। भारतवर्ष रूपी कर्म-भूमि में बोए हुए कर्म के बीजों से कौन-कौन से फल उत्पन्न होते हैं, इस प्रश्न के उत्तर में कहा गया—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का महाफल, तप से प्राप्त होने वाला दुर्लभ फल, सब दानों का फल, सब यज्ञों का फल, तीर्थयात्रा का फल, स्वाध्याय का फल, देवताओं के आराधन का फल, नाना व्रतों का फल, नाना शास्त्रों का फल, अहिंसा आदि धर्मों का फल, ब्रह्मचर्यफल, गार्हस्थ्यफल, वनवास फल, संन्यास फल, इष्टापूर्त फल, अन्य सब शुभकर्मों का फल, ये समस्त लाभ जीवन के जिस कल्पवृक्ष पर फलते हैं उसके बीज भारत की उर्वरा भूमि में बोए हुए हैं। स्वर्णयुग का समाज जिन महानुभाव व्यक्तियों से भरा हुआ था उनमें जीवन के ये विविध कर्मफल मूर्तरूप में देखे जाते थे। अतएव कहा गया—

१—देहं लब्ध्वा विवेकाढ्यं द्विजत्वं च विशेषतः।
तत्रापि भारते वर्षे कर्मभूमौ सुदुर्लभम्॥
(अध्यात्म० ६।४।५१)

२—मनुष्यः कुरुते तत्तु यन्न शक्यं सुरासुरैः।
तत्कर्मनिगडग्रस्तैस्तत्कर्मक्षपणोन्मुखैः॥
(ब्रह्म० २७।७०, मार्कं० ५७।६३-६४)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

न भारतसमं वर्षं पृथिव्यामस्ति भो द्विजाः ।।

वे धन्य हैं जो भारतवर्ष में जन्म लेते हैं।[१] आरण्यकपर्व के व्रीहिद्रौणिक आख्यान में कुरुक्षेत्र के आश्रम में तप करते हुए मुद्गल से देवदूत ने आकर कहा कि आप स्वर्ग चलिए, तो मुद्गल ने उत्तर दिया—'मुझे स्वर्ग नहीं चाहिए। मुझे इसी लोक का त्यागमय जीवन पसन्द है, या फिर मोक्ष।' फिर वह ध्यानयोग से कैवल्य धाम और अनुत्तम वृद्धि को प्राप्त हुआ। जीवन के सम्बन्ध में ये सब गुप्तकालीन आदर्शों के अभिप्राय थे जिनसे पुराणों के वर्णन सुरभित हैं और मार्कण्डेय पुराण की रचना में कथा सूत्रों के भीतर से गूँजते हुए इनके स्वर बार बार सुनाई पड़ते हैं।

गुप्तयुग की संस्कृति की प्रधान विशेषता उसका समन्वयात्मक दृष्टिकोण था। विभिन्न सम्प्रदायों में, दार्शनिक अभिमतों में, कर्म और ज्ञान के आदर्शों में, प्रवृत्ति और निवृत्ति में, पूर्व और नूतन में, सर्वत्र एक विलक्षण समन्वय का भाव गुप्तयुग की विशेषता थी। जैसा कालिदास ने लिखा था—

बहुधाप्यागमैर्भिन्ना पन्थानः सिद्धिहेतवः ।
त्वय्येव निपतन्त्योघा जाह्नवीया इवार्णवे ।।

(रघुवंश १०।२६)।

अर्थात् आगम या दर्शनों के जो पुरुषार्थ साधन के अनेक मार्ग हैं उन सब का अन्तिम लक्ष्य एक ईश्वर में ही है, जैसे गङ्गा के अनेक प्रवाह भिन्न

१—धन्यास्ते भारते वर्षे जायन्ते ये नरोत्तमाः ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां प्राप्नुवन्ति महाफलम् ।।
प्राप्यते यत्र तपसः फलं परम दुर्लभम् ।
सर्वदानफलं चैव सर्वयज्ञफलं तथा ।।
तीर्थयात्रा फलं चैव गुरुसेवाफलं तथा ।
देवताराधनफलं स्वाध्यायस्य फलं द्विजाः ।।
यत्र देवाः सदा हृष्टा जन्म वांछन्ति शोभनम् ।
नानाव्रतफलं चैव नानाशास्त्रफलं तथा ।।
अहिंसादि फलं सम्यक् फलं सर्वातिवांछितम् ।
ब्रह्मचर्यफलं चैव गार्हस्थ्येन च यत्फलम् ।।
यत्फलं वनवासेन संन्यासेन च यत्फलम् ।
इष्टापूर्तफलं चैव तथाऽन्यच्छुभकर्मणाम् ।।
प्राप्यते भारते वर्षे न चान्यत्र द्विजोत्तमाः ।
कः शक्नोति गुणान् वक्तुं भारतस्याखिलान् द्विजाः ।।

(ब्रह्मपुराण २७।७२-७८)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मार्गों से आते हुए समुद्र में जा मिलते हैं। मार्कण्डेयपुराण के लेखक ने बहुत ही सुन्दर ढङ्ग से कहा था—जैनों का कैवल्य, बौद्धों की बोधावगति, सांख्यों का ज्ञान, योगियों का प्राकाम्य, योगाचार का विज्ञान, धर्मशास्त्रियों की स्मृति, वेदांतियों की संवित्, वैदिकों की पराविद्या, ब्रह्मवादियों की शाश्वत ज्योति—ये सब रूप एक ही महाज्योतिष्मान् सूर्य के विभिन्न दर्शन हैं।[1] सब देवों और धर्मों के श्लाघायुक्त समन्वय का श्रेय पंचरात्र भागवतों के महान् आन्दोलन को था। पंचरात्र, एकायन या एकान्तिन्, नारायणीय, सात्वत, भागवत आदि नामों से एक ही विराट वैष्णव आन्दोलन लोक में फैल रहा था। चन्द्रगुप्त आदि गुप्त सम्राटों ने परमभागवत विरुद धारण किया। वासुदेव-विष्णु के रूप में सर्वदेवों का समन्वय भागवती दृष्टि की विशेषता थी। विष्णु ही सब देवों में प्रभविष्णु, अप्रमेय, शाश्वत और अव्यय पुरुष के रूप में मान्य हुए। भागवतों ने किसी देव का निराकरण नहीं किया। लोक के नाना स्तरों पर देवों के ठट्ट पूजे जा रहे थे। उन सबको देवाधिदेव विष्णु की दिव्य विभूतियाँ मान लिया गया। इस पुराण के आरम्भ में ही चतुर्व्यूहात्मक विष्णु को वरिष्ठ, गरिष्ठ, वरेण्य और अमृतदेव कहा गया है जो गुणातीत होते हुए भी त्रिगुणात्मक रूप में भासित हो रहा है[2]। वैष्णव भागवतों ने उन्मुक्त हृदय से अहिंसा धर्म को भी स्वीकार किया—

अहिंसाधर्मयुक्तेन प्रीयते हरिरीश्वरः।

(शान्तिपर्व ३३६।५२)

एकायन धर्म के अनुयायी एकान्तिन् भागवतों को अहिंसक कहा गया है (शान्ति पर्व ३३६।५८)। भागवत में पृथु के अहिंसक यज्ञ का उल्लेख है और कहा है कि विष्णु ने अपने एक अवतार में अपने वादों से (अर्थात् अहिंसा के तर्कों से) यज्ञ करने वालों में खलभली मचा दी थी (वादैर्विमोहयति यज्ञकृतः, ११।४।२२)। अपने घर में भी जो लोग वेदों के अक्षर का आग्रह पकड़ कर हिंसा के पोषक थे उनसे भागवतों ने जम कर लोहा लिया। भागवत ने उन्हें मोह में पड़े हुए आम्नायवादी कहा है जो ठीक प्रकार कर्मकाण्ड भी नहीं जानते,

---

१—विस्पष्टा परमा विद्या ज्योतिर्भा शाश्वती स्फुटा।
कैवल्यं ज्ञानमाविर्भूः प्राकाम्यं संविदेव च॥
बोधश्चावगतिश्चैव, स्मृतिर्विज्ञानमेव च।
इत्येतानीह रूपाणि तस्य रूपस्य भास्वतः॥
(१०१।१८-१९)।

२—चतुर्व्यूहात्मने तस्मै त्रिगुणायागुणाय च।
वरिष्ठाय गरिष्ठाय वरेण्यायामृताय च॥
(४।३७)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जो अपनी ठसक में पाण्डित्य का अभिमान करते हैं और जो विष्णु के भक्तों पर अपने दम्भ के कारण हँसते हैं (भागवत ११।५।५-७)।

भागवतों का सबसे महत्त्वपूर्ण दृष्टिकोण समाज और मनुष्य के विषय में था। बौद्धधर्म में निर्वाण और गृहत्याग पर अतिशय बल दिया गया था। उसकी जब अति हुई तो समाज के विघटनकारी तत्त्वों ने सिर उठाया। उसकी प्रतिक्रिया में भागवतों ने गृहस्थ धर्म को नई प्रतिष्ठा दी। जैसा हम आगे देखेंगे मार्कण्डेयपुराण के कई अध्यायों में गृहस्थ धर्म की एक नई महिमा और वन्दना पाई जाती है। अध्याय ९५ में रुचि नामक मोक्षार्थी को पितरों ने यही उपदेश दिया है—"हे वत्स, विद्या परिसमाप्त करने के अनन्तर अब तुम विधिपूर्वक पत्नी का संग्रह करो (तस्माद् वत्स कुरुष्व त्वं विधिवद् दारसंग्रहम्, ९५।२३)। महाभारत आदि पर्व में मन्दपाल ऋषि का जो सुन्दर उपाख्यान है उसमें भी पितर उन्हें उद्देश्यविहीन प्रव्रज्या का पथ त्याग कर सन्तान उत्पन्न करने का उपदेश देते हैं (आदि पर्व २२०।११-१४)। कालिदास ने जो गृहस्थाश्रम को अन्य सब आश्रमों का मूल आधार और उनके उपकार में समर्थ कहा था[१], वही स्वर्णयुग का लोक-सन्नादन स्वर इस पुराण के निम्नलिखित श्लोक में भी गूँज रहा है—

गृही समस्तदेवानां पितृणां च तथार्हणाम्।
ऋषीणामतिथीनाञ्च कुर्वन् लोकानुपाश्नुते ॥

समस्त देव, पूजनीय पितर, ऋषि और अतिथि इनके प्रति जो अपने कर्तव्य का पालन करता है उसीका इस लोक में जीना यथार्थ है। कहां श्रमण धर्म के निर्वाण आदर्श में गृहस्थ धर्म को बन्धन माना जाता था, कहां भागवतों ने दूसरा ही स्वर ऊँचा किया? उनकी घोषणा थी—'विवाह अत्यन्त पवित्र कर्म है। वह स्वर्ग और मोक्ष दोनों का कारण है। जिसने विवाह नहीं किया वही रात दिन बंधन में पड़ा रहता है'।[१] ये स्वर कितने बलिष्ठ थे? इनकी ललकार से मिथ्यात्याग और प्रव्रज्या के पाखण्ड का कुहासा छिन्न भिन्न हो गया—'हे मूढ़', गृहस्थ धर्म के प्रति अपने कर्तव्य का निर्वाह किए बिना क्या तुम सुगति पाने की इच्छा कर रहे हो?'[२]

जहां एक ओर केवल निर्वाण के सुख का प्रलोभन लोगों को विहार जीवन की ओर भटका रहा था वहाँ भागवतों ने भुक्ति और मुक्ति की प्राप्ति के भोग नये

१—अपि प्रसन्नेन महर्षिणा त्वं सम्यग्विनीयानुमतो गृहाय।
कालो ह्ययं संक्रमितु द्वितीयं सर्वोपकारक्षममाश्रमं ते ॥
(रघु० ५।१०)

१—वत्स कस्मात्त्वया पुण्यो न कृतो दारसंग्रहः।
स्वर्गापवर्ग हेतुत्वाद् बंधस्तेनानिशं विना ॥

२—अनुत्पाद्य सुतान् देवान् सन्तर्प्य पितृंस्तथा।
अकृत्वा च कथं मौढ्यात् सुगतिं गन्तुमिच्छसि ॥ ९५।७

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जीवन सूत्र का आविष्कार किया। घर में ही रहते हुए स्वर्ग का भोग और अपवर्ग या मोक्ष का निर्वाण सुख दोनों की प्राप्ति संभव है। पुराणों में सैकड़ों बार भुक्ति-मुक्तिप्रद या भुक्ति-मुक्ति भाजन या स्वर्गापवर्ग के हेतु जीवनादर्श का उल्लेख आया है। जब प्रतिपक्षियों ने भागवतों को तर्क में चाँपते हुए कहा—'तुम्हारे वेदों में कर्म मार्ग को अविद्या कहा है, तो तुम कर्म की दुहाई क्यों देते हो?' उत्तर में भागवतों ने कहा—'वेदों का वचन सत्य है। वस्तुतः कर्म अविद्या है, किन्तु विद्या तक पहुँचने के लिये कर्म के अतिरिक्त दूसरा मार्ग है ही नहीं। जो कर्तव्य है उसे न करके जो संयम का ढोंग करता है उसे कभी मुक्ति नहीं हो सकती। उस दम्भी का संयम उसे अधोगति के और भी गहरे खड्ड में गिराता है।[1] जो ये कहते हैं कि संयम से अन्तरात्मा प्रक्षालित कर रहे हैं, यदि सचाई से देखा जाय तो उनके अन्तःकरण पाप की लपटों से जल रहे हैं।' भागवत धर्म के नेताओं ने प्रवृत्ति और निवृत्ति के समन्वय या सन्तुलन का नया आदर्श रक्खा—

प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च द्विविधं कर्म वैदिकम्। (४५।१)

इस पुराण का कथन करने वाले धर्मपक्षियों को प्रवृत्ति और निवृत्ति एवं कर्म और ज्ञान में निर्मल मतिमान कहा गया है।[2]

भागवतों ने वैदिक कर्मकाण्ड और गृहस्थोचित स्मार्त कर्मकाण्ड का भी समन्वय किया। सब यज्ञों को भगवान् विष्णु का स्वरूप कहा गया (विष्णुस्वरूपमखिलेष्टिमयम्, १०३।१०)। नीति प्रधान जीवन एवं सद्वृत्त और सदाचार पर उनका अत्यन्त आग्रह था। कितने ही पुराणों में इस विषय के प्रकरण जोड़े गए जैसा इस पुराण में भी है (अध्याय ३४)। योग साधन और योगियों की चर्या को भी श्लाघनीय आदर्श के रूप में भागवत धर्म में स्वीकार किया गया है (अध्याय ३९-४१)। भक्ति धर्म को जीवन के सबल तत्त्व के रूप में स्वीकार करते हुए भगवान् विष्णु के प्रति नये प्रपत्ति धर्म का उपदेश भागवत दृष्टिकोण की विशेषता थी। भक्तिधर्म के साथ एक ओर मन्दिर निर्माण और देवमूर्तियों

१—अविद्या सत्यमेवैतत् कर्म नैतन्मृषा वचः।
किन्तु विद्या परिसमाप्तौ हेतुः कर्म न संशयः॥
विहिताकरणात् पुंभिरसद्भिः क्रियते तु यः।
संयमोऽमुक्तये सोऽन्त्ये प्रत्युताऽधोगतिप्रदः॥
प्रक्षालयामीति भवान् वत्सात्मानन्तु मन्यते।
विहिताकरणोद्भूतैः पापैस्त्वन्तु विदह्यसे॥
(९५।१९-२१)

२—प्रवृत्ते च निवृत्तो च भवतां ज्ञान कर्मणि।
मतिमस्तमलां मन्ये यथा नान्यस्य कस्यचित्॥
(४५।७)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के पूजन की क्रिया को आगम या संहिता ग्रन्थों में विस्तार से पल्लवित किया गया, दूसरी ओर विचार के क्षेत्र में सांख्य और वेदान्त के साथ भक्तिधर्म का स्पृहणीय समन्वय हुआ। उस समय तक शंकराचार्य के ब्रह्मवादी अद्वैत दर्शन का दृष्टिकोण सामने नहीं आया था। अतएव मार्कण्डेय में तथा उसी युग के अन्य पुराणों में भी जहां वेदान्त का उल्लेख आता है वहां औपनिषद दर्शन या उपनिषदों में प्रतिपादित ब्रह्मवाद की दृष्टि ही समझना चाहिए। बाण ने भागवत पांचरात्रिक, मीमांसक (साप्ततान्तव), धर्मशास्त्री, नैयायिक (ऐश्वर्यकारणिक) काणाद, कापिल आदि आस्तिक दार्शनिकों की सूची में औपनिषदों का उल्लेख किया है। हर्षचरित के टीकाकार शंकर के अनुसार उसका तात्पर्य वेदान्तवादियों से ही था (हर्षचरित उच्छ्वास ८ पृ० २३६)[1] वेदान्त के साथ मिल कर भक्ति का आन्दोलन अत्यन्त प्रबल और आकर्षण युक्त बन गया जिसकी गहरी छाप उस युग के पुराण साहित्य में पाई जाती है।

पांचरात्रिक भागवतों ने अपने व्यापक आन्दोलन की सफलता के लिये वैसा ही विशाल साहित्य भी तैयार किया। उस युग में कितनी ही वैष्णव संहिताएँ, जिन्हें पांचरात्रिक आगम भी कहते हैं, तैयार की गई। अहिर्बुध्न्य संहिता उसी प्रकार का गुप्तकालीन पंचरात्रों का आगम ग्रन्थ है। इन्हें उस युग में तन्त्र भी कहते थे। मंदिरों में अर्चा पूजा के लिये संहिता, आगम या तन्त्रों में पूरे विधि-विधान का उल्लेख आया है। आगम-प्रोक्त अर्चा-पूजन ही भागवतों का क्रिया योग था जिसके द्वारा वे केशव की औपचारिक पूजा करते थे।[2]

भागवत धर्म के नेता जिस समन्वयवाद को लेकर चले थे उसी की प्रेरणा के अनुरूप उन्होंने पूर्व और नूतन दोनों को मिलाने का स्तुत्य प्रयत्न किया। वे सामाजिक गतिरोध के विरोधी थे। किन्तु भूतकाल के साथ सहसा तिनका-तोड़ भी करना सम्भव न था। वे प्रगतिशील दृष्टिकोण को आगे रखते हुए पुरातन और नूतन दोनों के प्रति उदार भावना व्यक्त करते थे। वेद और तन्त्र या आगम दोनों को साथ लेकर उन्होंने अपने धर्म का विकास किया (यजन्ति वेदतन्त्राभ्यां परम जिज्ञासवो नृप, भाग० ११-५-२८)। इस दृष्टि से भागवतों ने सबसे अधिक परिश्रम पुराण-साहित्य के पुनःसंस्करण में किया। इतिहास और पुराण का अस्तित्व प्राचीन उत्तर वैदिक काल से था। इस साहित्य को पंचम वेद ही कहा

१—उच्छ्वास पांच में इन्हें ही संसार की असारता के कथन में कुशल ब्रह्मवादी कहा गया है।

२—विधिनोपचरेद्देवं तन्त्रोक्तेन च केशवं,
लब्धानुग्रह आचार्यात्तेन संदर्शितागसः।
महान्पुरुषमभ्यर्चेन् मूर्त्याभिमतयात्मना

(भाग० ११-३-४७-४९)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जाता था। महाभारत की भी उसी में गणना थी। भागवतों को यह साहित्य उत्तराधिकार में मिला था। उन्होंने बड़ी युक्ति से उसे नए युग का समर्थ साधन बना दिया। उनका जितना नया दृष्टिकोण था उसे कूट-कूट कर पुराणों में भर दिया। पुराणों की पहली सामग्री का पुनः संस्कार किया गया और कितने ही नए पुराणों की रचना हुई। प्रस्तुत मार्कण्डेय पुराण ऐसी ही अभिनव कृति थी। भागवत में मत्स्य पुराण को दिव्य पुराण संहिता का विशेषण देते हुए कहा है कि एक ओर उसमें प्राचीन सांख्ययोग दर्शन की सामग्री थी; दूसरी ओर उस प्राचीन अध्यात्म ज्ञान के साथ नई आगमोक्त या तन्त्रोक्त क्रिया या चर्या का भी संनिवेश था। यही क्रिया देवालय और मूर्तियों एवं दान, व्रत, पूजा आदि से सम्बन्धित सामग्री के रूप में पुराणों का अंग बन गई।[1]

अभिनव पुराण साहित्य में किस उदार दृष्टि से काम लिया गया इसका सर्वांगपूर्ण परिचय मार्कण्डेय पुराण के पारायण से प्राप्त हो जाता है। उसकी दो विशेषताओं की ओर ध्यान जाए बिना नहीं रहता। एक तो प्राचीन वैदिक अध्यात्म तत्त्व की सूक्ष्म जानकारी और दूसरी स्त्री की प्रतिष्ठा। कालिदास ने अपने युग की पहली विशेषता की ओर संकेत करते हुए लिखा था—

श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत् (रघु० २।२)

नूतन स्मृतियों की रचना प्राचीन श्रुतियों की सामग्री के अनुसार ही की जा रही थी। यहाँ स्मृतियों से तात्पर्य आगम, पुराण, तंत्र, संहिता इस प्रकार के सभी साहित्य से था। वस्तुतः गुप्त-युग में प्राचीन ग्रन्थों को प्रतिसंस्कृत करके उनके नए संस्करण युगानुकूल रूप में तैयार किए गए, जैसे नीति-ग्रंथों में शुक्रनीति[2] और कामन्दकीय नीतिसार, आयुर्वेद में चरकसुश्रुत के आधार पर अष्टांग संग्रह और अष्टांग हृदय, व्याकरण के क्षेत्र में चान्द्र व्याकरण और काशिका वृत्ति, ज्योतिष में आर्यभटीय और बृहत्संहिता, अलंकार में दण्डीकृत काव्यादर्श, कोश में अमरकोश, शिल्प ग्रन्थों में मानसार, पुराणों में विष्णुधर्मोत्तर पुराण। यह सब उस प्रकार का साहित्य है जो गुप्तयुग की आवश्यकताओं के लिये सम्पादित और संकलित किया गया। किन्तु सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास की दृष्टि से सर्वाधिक मूल्यवान् पुराण-साहित्य ही था जो सर्वथा प्रतिसंस्कृत रूप में ढाल दिया गया था।

१—इत्युक्तवन्तं नृपतिं भगवानादिपूरुषः।
मत्स्यरूपे महाम्भोधौ विहरंस्तत्त्वमब्रवीत्।
पुराणसंहितां दिव्यां सांख्ययोगक्रियावतीं॥
(भागवत ८-२४-५४-५५)।

२—तुलना कीजिए कुमारसम्भव में कालिदास की उक्ति-अध्यापितस्योशनसाऽपि नीतिं, अर्थात् उशना या शुक्र की नीति भी जिसने पढ़ी हो उसे भी मैं परास्त कर सकता हूँ (कुमारसम्भव ३।६)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ऐसा करते हुए पुराणों के आचार्यों ने वेदों के अर्थों को नाना रूपों में नए साहित्य में भरने का प्रयत्न किया। केवल इस दृष्टि से ही उस युग के साहित्य का, विशेषतः पुराण-साहित्य का, विशिष्ट अध्ययन सम्पन्न किया जा सकता है। महाकवि माघ का निम्नलिखित श्लोक उस महान् साहित्यिक प्रयत्न के लिये अक्षरशः ठीक है—

उद्धृत्य मेघैस्तत एव तोयमर्थं मुनीन्द्रैरिव संप्रणीताः।
आलोकयामास हरिः पतन्तीर्नदीः स्मृतीर्वेदमिवाम्बुराशिम्॥
(माघ ३।७५)।

जिस प्रकार मेघ समुद्र का जल उठा कर आकाश में ले जाते हैं और पुनः नदियाँ उसे समुद्र में भर देती हैं, ऐसे ही मुनीन्द्र या ज्ञानी आचार्यों ने वेदों से लेकर उनका अर्थ स्मृतियों में भरा है, और स्मृतियाँ पुनः उसे वेद-परायण अर्थों में प्रकट करती हैं। वेद और स्मृति दोनों की यह परस्पर उपकारक स्थिति गुप्त-युग के साहित्य की प्रभावशाली विशेषता थी। इस दृष्टिकोण से मार्कण्डेय पुराण में ही पर्याप्त सामग्री विद्यमान है। विशेषतः इस संबंध में शान्तिकृत अग्निस्तोत्र (९९।२७-७०) अदितिकृत सूर्यस्तोत्र (१०४।१८-२९), ब्रह्माकृत सूर्यस्तोत्र (१०३।५-१२), विश्वकर्माकृत सूर्यस्तोत्र (१०७।२-११), ब्राह्मणों द्वारा किया हुआ सूर्यस्तोत्र (१०९।६२-७४), ब्रह्माकृत योगनिद्रा या शक्तिस्तोत्र (८१।५४-६७) देखने योग्य हैं, जिनमें वैदिक दर्शन, अध्यात्म और सृष्टिविद्या के अभिप्राय बारम्बार दुहराए गए हैं। उदाहरण के लिये, अग्नि की स्तुति में ये भाव देखने योग्य हैं—

'हे महानात्मा, देव हुताशन, सब भूतों के निर्माण साधन तुम्हीं हो। एक, दो एवं पाँच धिष्ण्याओं में तुम प्रज्वलित होते हो। सब देवता तुम्हारी ही प्राणशक्ति के रूप हैं। यज्ञ तुमसे ही आप्यापित होते हैं। तुमसे ही सबका उद्गम है और तुम में ही सबका लय हो जाता है। कविलोग तुम्हें ही एक रूप में जानते हैं, और फिर तुम्हें ही त्रिविध रूप से बखानते हैं। पुनः अष्टवसुओं के रूप में, आठ धिष्ण्याओं में तुम्हारी अष्टधा कल्पना करके सृष्टि के आद्य यज्ञ-वितान की कल्पना करते हैं। परमर्षियों का कथन है कि तुमने ही इस विश्व की सृष्टि की है। हे जातवेद, तुम से ही यह सृष्टि है और भूतों में अभिव्यक्त जितना त्रयीविद्यात्मक कर्म है वह तुम्हारे कारण ही है। तुम्हीं हिरण्यरेता, तुम्हीं हिरण्यगर्भ और तुम्हीं अन्न पचाने वाले वैश्वानर हो। सबका परिणाम या परिपाक करने वाला काल भी तुम्हारा ही रूप है। तुम सब भूतों से अग्रिम उत्पन्न हुए थे अतएव तुम्हें अग्नि कहते हैं। वही तुम अग्नि हो। तुम ही हृत्पुण्डरीक हो। तुम ही एक होते हुए बहुधा हो (९९।२७-६३)।'

इन भावों में कितनी ही ऋचाओं के अर्थ गूँज रहे हैं। 'एक एवाग्निर्बहुधा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समिद्धः' ऋग्वेद का यह खिल-मन्त्र (ऋ० ८।५८।२) अवश्य ही पुराण-कर्ता के मन को उद्वेलित कर रहा था, जब उसने 'एको बहुधा त्वमत्र' इस वाक्य का विन्यास किया। 'अग्नेऽग्रे सर्वभूतानां समुद्भूत विभावसो' इस वाक्य का लेखक शतपथ ब्राह्मण के इस सिद्धान्त से परिचित था कि प्रजापति ने अग्नि को सब देवों के पूर्व (अग्रे) उत्पन्न किया, इसलिये उसका नाम अग्नि हुआ। उसे ही अब सांकेतिक भाषा में अग्नि कहते हैं।[1] 'अग्निः पशुरभूत् पूर्वं (१२१।२९)' पुराण के इस वाक्य में 'पशुरेष यदग्नि (शतपथ० ६।४।१।२)' इस वैदिक अर्थ को ही उद्धृत किया गया है।

पुराण साहित्य की जिस दूसरी विशेषता की छाप अनायास मन पर पड़ती है वह स्त्री जाति के प्रति नई आस्था और नई निष्ठा का भाव था। यह ठीक भी हुआ क्योंकि जिस गृहस्थ-धर्म को भागवतों ने इतनी श्रद्धा से अपनाया था उसका अविचल केन्द्र नारी थी। विशेषतः मार्कण्डेयपुराण में तो कई कथानक ऐसे हैं जो स्त्री-महिमा ख्यापित करने के लिये ही रचे गए हैं। इनमें ऋतध्वज की पत्नी मदालसा का उपाख्यान (अध्याय २०-३५) उस युग की नारी-भावनाओं का प्रतिनिधि है। पुराण-लेखक ने मदालसा को उस युग की पुरन्ध्रि नारियों का प्रतीक मानकर उसके द्वारा गृहस्थ-धर्म, आचार-धर्म और राजतन्त्र की भी व्याख्या कराई है। इसी उपाख्यान में कुण्डला के ये उद्गार ध्यान देने योग्य हैं—

'पति को सदा भार्या की भृति और रक्षा करनी चाहिए। धर्म, अर्थ, काम की सिद्धि में पत्नी पति की सहयायिनी है। जब पति-पत्नी परस्पर वशीभूत होते हैं तभी धर्म, अर्थ, काम तीनों का मेल होता है? पत्नी के बिना पति धर्म, अर्थ या काम कैसे पा सकता है, क्योंकि उसी में तीनों की निधि है? वैसे ही पति के बिना पत्नी भी धर्म, अर्थ, काम के साधन में समर्थ नहीं होती। यह त्रिवर्ग दाम्पत्य जीवन के ही अधीन है। बिना पत्नी के पुरुष देवता, पितर, अतिथि और अपने भृत्यों का पूजन नहीं कर सकता। पुरुष घर में धन ले भी आवे तो भी पत्नी के बिना या निन्दित स्त्री के हाथ में पड़कर उसका क्षय हो जाता है। बिना पत्नी के काम का सुख नहीं मिल सकता यह तो प्रत्यक्ष ही है। दम्पति की एक साथ धर्मचर्या से ही वेद धर्मों का अनुष्ठान किया जा सकता है। जैसे सन्तति से पितरों को, अन्न से अतिथियों को, पूजा से देवों को तृप्त किया जाता है, वैसे ही उसी भाव से पुरुष साध्वी पत्नी की रक्षा करता है (२१।६८-७५)।'

भागवतों ने नव-साहित्य के निर्माण में प्रमुख भाग लिया। वे उपाख्यानों की शैली में निष्णात थे। जिस प्रकार बौद्ध साहित्य में अनेक अवदानों की रचना हुई वैसे ही भागवतों ने अनेक नए उपाख्यान रचे। गुप्तयुग में बौद्धों का विपुल

१—तद्वाऽएनमेतदग्रे देवानां (प्रजापतिः) अजनयत।
तस्मादग्निरग्रिर्ह वै नामैतद्यदग्निरिति (शतपथ० २।२।४।२)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

धार्मिक साहित्य प्राप्त होता है। उसी के समकक्ष ब्राह्मणों की रचना तत्कालीन पुराण-साहित्य है। दोनों के तुलनात्मक अध्ययन से शैली, विषय और लक्ष्य का साम्य या भेद जाना जा सकेगा।

भागवत धर्म के नेताओं ने जिन दो प्रतीकों को ज्ञान के स्रोत के रूप में ग्रहण किया वे नारद और मार्कण्डेय थे। दोनों ही परम भागवत और धर्म के सनातन या चिरजीवी प्रतिनिधि हैं। दोनों ही सम्प्रदाय-प्रवर्तक गुरु के रूप में मान्य हुए।[१] यद्यपि इन दोनों के नाम प्राचीन साहित्य में भी मिलते हैं, किन्तु उनके चरित्र विशेषरूप से गुप्तयुग के साहित्य में उभरे हुए दिखाई पड़ते हैं। नारद वैदिक विद्याओं के प्राचीन आचार्य थे जिनका उल्लेख छान्दोग्य उपनिषद् में आया है। वहाँ वे सनत्कुमार से अपनी पढ़ी हुई अपराविद्याओं का उल्लेख करके उस अध्यात्मज्ञान की आकांक्षा करते हैं जिसे पराविद्या कहा जाता है। नारद सामवेद के आचार्य थे जिनके नाम से एक शिक्षाग्रन्थ भी उपलब्ध होता है। यह इस बात का संकेत है कि नारद की परम्परा में कोई वैदिक चरण या गुरु-शिष्य परम्परा का वैदिक संप्रदाय विद्यमान था। नारद के नाम की प्रतिष्ठा प्राचीन बौद्ध-साहित्य में भी थी। वहाँ उन्हें महा-ब्रह्मा कहा गया है। प्राचीन चरण-युग में किसी एक विद्या का जाननेवाला वेदिता, कई विद्याओं का जानकार भूयोविद्य और सब विद्याओं का पारंगत सर्वविद्य कहलाता था जिसकी उपाधि ब्रह्मा भी होती थी। नारद इसी प्रकार के सर्वविद्य आचार्य थे। पंचरात्र आचार्यों ने स्वभावतः उनके उस प्रतीक से लाभ उठाया। किन्तु उन्होंने नारायणीय धर्म के साथ विशेष रूप से नारद का सम्बन्ध जोड़ने के लिये एक उपाख्यान की रचना की जिसके अनुसार नारद पहले वदरिकाश्रम में जाते हैं और फिर वहाँ से श्वेतद्वीप में जाकर नारायणीय धर्म की दीक्षा प्राप्त करते हैं। शांतिपर्व के नारायणीय धर्म-प्रकरण में इसका विस्तार से उल्लेख है। स्वयं नारायण ने, जो सात्वत धर्म के गोप्ता हैं, उस धर्म का उपदेश दिया था। नर-नारायण की महिमा का उपबृंहण सात्वत धर्म की सबसे बड़ी विशेषता थी (शांतिपर्व अध्याय ३२१-

---

१. नारद के विषय में माघ में स्पष्ट कहा है—

कृतः प्रजाक्षेमकृता प्रजासृजा सुपात्रनिक्षेपनिराकुलात्मना ।
सदोपयोगेऽपि गुरुस्त्वमक्षयो निधिः श्रुतीनां धनसंपदामिव ॥ (माघ १।२८)।

अर्थात् प्रजाओं का कल्याण चाहने वाले ब्रह्मा ने नारद को श्रुतियों की अक्षय निधि वना दिया। जैसे कोई धन-सम्पत्ति सुपात्र को सौंप कर निश्चित हो जाता है, ऐसे ही ब्रह्मा श्रुतियों की सम्पत्ति नारद को सौंपकर निश्चित हो गए। नारद ही सर्वत्र आख्याता या उपदेष्टा के रूप में गुरु माने गए। भागवत या पंचरात्र आगमों में प्रायः नारद इसी रूप में आते हैं। वन पर्व के मार्कण्डेय समस्यापर्व (अ० १७९-२२१) में यही स्थान मार्कण्डेय का है। वे युधिष्ठिर को नारायण की महिमा का उपदेश उसी प्रकार करते हैं जैसे नारद शान्तिपर्व के नारायणीय पर्व में।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

३२२)। शांतिपर्व के अनुसार, प्रवृत्तिलक्षणाश्चैव धर्मो नारायणात्मकः (३३५।७७), अर्थात् नारायणदेव पर आश्रित प्रवृत्तिलक्षण धर्म नारायणीय धर्म था। चराचर के गुरु अनन्त नारायण विष्णु की महिमा, उनके अवतारों और चरितों का आख्यान, एवं विश्व के सृष्टिस्थिति संहार में विष्णु के दुष्प्रधर्ष गुणों का प्रभाव—यही सामग्री जोड़कर पुराणों का भागवत स्वरूप निष्पन्न हुआ।

मार्कण्डेय पुराण में स्पष्ट कहा है :—

विष्णोश्चराचरगुरोरनन्तस्य महात्मनः।
प्रादुर्भावाः पुराणेषु कथ्यन्ते शार्ङ्गधन्वनः॥
अनन्तस्याप्रमेयस्य शंखचक्रगदाभृतः।
एतस्य परमं रूपं यश्चिन्तयति मानवः॥
(१९।३२-३३)

भागवतों ने जिस ग्रन्थ को अपने सांचे में ढाला उसी में 'नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्' मंगलाचरण का यह श्लोक अथवा विष्णु का स्तुति-परक कोई अन्य श्लोक जोड़ दिया। इस पुराण के आरम्भ में धर्म-पक्षी जहाँ से कथा का आरम्भ करते हैं वहाँ सर्व प्रथम 'नमस्कृत्य सुरेशाय विष्णवे प्रभविष्णवे' आदि की भूमिका के साथ विष्णु के चतुर्व्यूहावतारों का वर्णन हुआ है (४।३६-५९)।

भागवतों की धर्म-प्रभावना और साहित्य-रचना में दूसरे प्रतिनिधि पुरुष मार्कण्डेय थे। इस पद के लिये मार्कण्डेय का अधिकार कई कारणों से था। एक तो मार्कण्डेय भार्गव वंश (भृगुकुलोद्भव, ४६-२) के थे। महाभारत में उन्हें भृगुनन्दन, भार्गव सत्तम या भार्गव-कुल श्रेष्ठ कहा गया है। जैसा पूना के नवसंशोधित महाभारत संस्करण के सम्पादक श्री सुकथनकर ने अपने भृगुवंश और भारत नामक लेख में विस्तार से प्रतिपादित किया है, प्राचीन महाभारत ग्रंथ का एक संस्करण भार्गवों द्वारा सम्पन्न किया गया। उसी समय राजनीति और नीति धर्म के अनेक प्रकरण महाभारत में परिगृहीत हुए। हमारा अनुमान है कि महाभारत का पांचरात्रिक संस्करण भी भार्गवों के प्रभाव का ही फल था। भृगुनन्दन मार्कण्डेय शंख-चक्र-गदा-धारी वासुदेव विष्णु के परम भक्त थे। मृत्यु उनके वश में थी। धर्म के कारण वे चिरजीवो हुए (धर्मेण चिरजीविता)। उन्होंने वटपत्रशायी नारायण की महिमा को सृष्टि के आरम्भ में साक्षात् अपने नेत्रों से देखा था। युधिष्ठिर के एक प्रश्न के उत्तर में मार्कण्डेय ने उसका वर्णन इस प्रकार किया—

'उस एकार्णवीभूत अवस्था में मैंने एक विशाल वटवृक्ष की शाखा पर एक बालक को देखा जो स्वयं श्रीवत्सधारी नारायण थे। उन्होंने कहा 'हे मार्कण्डेय, तुम थक गए हो, तुम मेरे शरीर में विश्राम लो, मैं तुमसे प्रसन्न हूँ।' बालक के यह कहने पर मार्कण्डेय उसके मुख में प्रविष्ट हो गए। वहाँ उन्होंने उसके शरीर में जिस भौगोलिक क्षितिज का दर्शन किया, वह भारतवर्ष की जनपद और नगरों से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भरी हुई भूमि थी। वहाँ उन्होंने सीता, सिन्धु, विपाशा, चन्द्रभागा, शतद्रु, सरस्वती, गंगा, यमुना, चर्मण्वती, वेत्रवती, नर्मदा, गोदावरी, शोण, महानदी, कौशिकी, इन नदियों को, एवं महेन्द्र, मलय, पारियात्र, विन्ध्य, गन्धमादन, मन्दराचल, मेरु, हिमाचल और हेमकूट इन पर्वतों को देखा। मध्य-एशिया की सीता (यारकन्द) नदी से लेकर दक्षिण की गोदावरी तक एवं मेरु या पामीर से लेकर दक्षिण-पूर्वी समुद्र-तट के मन्दराचल तक का भौगोलिक क्षितिज मार्कण्डेय के इन वर्णनों की पृष्ठभूमि में है। गुप्तकालीन सम्राटों ने जिस भूभाग का पुनः उद्धार किया था वह भी लगभग इतना ही था। चन्द्रगुप्त द्वितीय के महरौली-स्तम्भ-लेख में बाल्हीक तक के प्रदेश को युद्ध में जीतकर उसका उद्धार करने का स्पष्ट उल्लेख आया है। श्रीवत्सधारी नारायण यहाँ भागवत-धर्म के प्रतीक हैं। उनकी कुक्षि का भौगोलिक विस्तार उस प्रदेश को सूचित करता है, जहाँ गुप्त राजाओं के प्रभाव से भागवत-धर्म की पुनः स्थापना हुई। यही उस समय की राष्ट्र और नगरों से आकीर्ण पृथिवी थी, जो मार्कण्डेय के दृष्टिपथ में आई (सराष्ट्र-नगराकीर्णां कृत्स्नां पश्यामि मेदिनीम्)।

भागवतों की दृष्टि में मार्कण्डेय धर्ममय अनन्त जीवन के प्रतीक बन गए। धर्म और नारायण दोनों एक दूसरे से अभिन्न हैं। जिस प्रकार नारायण का, उसी प्रकार धर्म का भी अस्तित्व सृष्टि और प्रलय दोनों में अखंड बना रहता है। आरण्यक पर्व में स्वयं विष्णु के मुख से उन के स्वरूप की यह व्याख्या दार्शनिक और सामाजिक दृष्टियों से अत्यन्त भव्य है—'हे मार्कण्डेय तुम्हारा ब्रह्मचर्य महान् है और तुम मेरी शरण में आए हो। अतएव मेरे जिस रूप को देवगण भी तत्त्वतः नहीं जानते उस महिमा को तुमने अपने नेत्रों से देखा है। मैं नारायण हूँ। विश्व का शाश्वत और अव्यय प्रभव-स्थान हूँ। सब भूतों का विधाता और संहर्ता हूँ। ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, कुबेर, यम, शिव, सोम, प्रजापति सब मैं ही हूँ। यज्ञ मेरा ही रूप है। वेदों के विद्वान् देव यज्ञों में मेरा ही भजन करते हैं। पृथिवी में जितने क्षत्रिय राजा और वैश्य हैं वे सब मेरे ही रूप हैं। चतुःसमुद्र पर्यन्त वसुन्धरा को मैं ही धारण करता हूँ। मेरे ही विराट् रूप में चारों वर्ण समाविष्ट हैं। ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद मुझ से ही जन्म लेते हैं और मुझ में ही लीन हो जाते हैं। मुमुक्षु यति अध्यात्म तत्त्व के जाननेवाले नित्य निःसंग भाव से अपने मन को सत्वगुण में स्थित करके मेरा ही ध्यान और उपासना करते हैं। जैसे आकाश में तारे हैं वैसे ही मेरे नानारूप दृश्य जगत् में भरे हुए हैं। रत्नाकर समुद्र, सब दिशाएँ, वसन, शयन, आवास, काम, क्रोध, मोह, भय, हर्ष ये सब मेरे ही रूप हैं। सत्य, दान, तप, अहिंसा जो कुछ भी प्राणियों में शुभ कर्म हैं वे सब मुझसे ही प्रवृत्त होते हैं। जब जब धर्म की ग्लानि और अधर्म का अभ्युत्थान हो जाता है तब मेरी शक्ति अवतारों में अभिव्यक्त होती है। मैं पुण्यात्मा मनुष्यों के घरों में मनुष्य-देह धारण करके सब विघ्नों का शमन करता हूँ। मैं अपने आधे भाग से रूपरहित रहता हुआ अपने शेष अर्ध शरीर से कालचक्र को घुमाता हूँ। जो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कुछ भी स्थावर और जंगम तुमने देखा है वह सब मेरी ही आत्मा है। मैं नारायण हूँ।' इस प्रकार कहकर वह परम अद्भुत देव अचिन्त्य आत्मा पुराण पुरुष अन्तर्हित हो गए और मार्कण्डेय प्रलयान्त में उत्पन्न होती हुई विचित्र नाना प्रजाओं को अपने चारों ओर देखने लगे।

आरण्यक पर्व के अन्तर्गत लगभग दो सहस्र श्लोकों का जो विस्तृत मार्कण्डेय समास्या पर्व है (अ० १७९–२२१, पूना संस्करण), उसकी मूल सामग्री का स्रोत वहीं से लिया गया है जहां से मार्कण्डेय पुराण की सामग्री का, यद्यपि जैसा स्वाभाविक है पुराण का क्षेत्र कहीं अधिक विस्तृत है। मार्कण्डेय समास्या पर्व में अग्निवंश का वर्णन है। पुराण में शान्ति कृत अग्निस्तोत्र और चार सूर्य स्तोत्र हैं जिनकी पृष्ठभूमि भी वैदिक है। समास्या पर्व में स्कन्द जन्म और मातृकाओं का विस्तृत वर्णन है। पुराण में देवी माहात्म्य का अतिभव्य वर्णन है। पुराण में कुवलयाश्व का परिचय देते हुए मदालसा का उदात्त चरित्र विस्तार से कहा गया है। समास्या पर्व में भी धुन्धुमार कुवलाश्व और पतिव्रता का उपाख्यान सन्निविष्ट है। धुन्धु भी एक अश्व है जिस प्रकार पुराण में कुवलय अश्व का नाम है। अवश्य ही इस बृहद् उपाख्यान का मूल ठाठ एक जैसा था। मदालसा के द्वारा जिस प्रकार पुराण में प्रवृत्ति लक्षण धर्म की व्याख्या कराई है उसी प्रकार आरण्यक पर्व में मिथिला के धर्मव्याध की सुलक्षणा पत्नी की कथा द्वारा पहले गृहस्थधर्म और उसके अनन्तर शिष्टाचार धर्म का उपदेश दिया गया है। समाज में एक ओर जो श्रुति-स्मृति प्रतिपादित सत्यपरायण धर्म चला आता है और दूसरी ओर शील नीतिधर्म एवं सदाचार का नित्य उदीयमान आदर्श है उसी को शिष्टाचार कहा गया—

क्रमेण संचितो धर्मो बुद्धियोगमयो महान्।
शिष्टाचारे भवेत्साधुः रागे शुक्लेव वाससि॥

(आरण्यक० १९८।६८)

अर्थात् अनेक युगों के भीतर से क्रमशः संचित होता हुआ जो परंपरागत बुद्धि-योगमय धर्म है वही शिष्टाचार है। उसका पालन इतना सुन्दर प्रतीत होता है जैसे शुक्ल वस्त्र पर चढ़ा हुआ रंग। अहिंसा, सत्य, सर्व-भूतहित, यह इस शिष्टाचार धर्म की विशेषता है। सत्य की दृढ़भूमि को लेकर ही जीवन की सब प्रवृत्तियां चलती हैं। न्याययुक्त आचार का नाम ही धर्म है। उससे विपरीत जो अनाचार है, वह अधर्म है। जैसे बुद्ध को शास्ता कहकर धर्म में प्रमाण माना जाता था वैसे ही भागवतों ने शिष्टों की एक नई परिभाषा नीति धर्म के आधार पर बनाई। 'जो ऋजु हैं,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शमयुक्त हैं, क्रोध, असूया, अहंकार मत्सर से रहित हैं, शुचि, वृत्तिवान् और मनस्वी हैं, गुरुओं की शुश्रूषा करने वाले, और इन्द्रियों का दमन करने वाले हैं और वेदों की त्रयीविद्या में निष्णात हैं वे ही शिष्टाचार धर्म परायण शिष्ट कहलाते हैं। शिष्टाचार पुराण शाश्वत धर्म है। क्षमा, सत्य, आर्जव, शौच, सर्वभूतदया, अहिंसा ये संतों के लक्षण हैं। अद्रोह, दान और सत्य ये सदाचार के तीन खंभे हैं। संत लोग करुणवेदी और दयावन्त होते हैं। शिष्टाचार-परायण महात्माओं का धर्म सुनिश्चित होता है। वे स्वयं प्रज्ञा के प्रासाद पर चढ़कर दूसरों के चरित्रों को देखते हैं (आरण्यक १९८।५६-९४)। इस प्रकार महायान के नीतिमूलक धर्म और भागवतों के शिष्टाचार इन दोनों का निर्माण समान तत्वों से हुआ था। समास्या पर्व और मार्कण्डेय पुराण, उभयत्र भागवतों ने इस नये धर्म का प्रतिपादन बड़े ओजस्वी शब्दों में विस्तार से किया है।

बहुसंवत्सरजीवी मार्कण्डेय ऋषि को, जो एक ओर निवृत्ति लक्षण यति-धर्मों के[1] और दूसरी ओर प्रवृत्ति लक्षण गृहस्थ धर्मों के सम्पूर्ण ज्ञाता थे, भागवतों ने अपने नये लोक संग्रहात्मक एवं आचारमूलक धर्म का प्रतिनिधि कल्पित करके उनके मुख से निकले हुए उपदेशों के रूप में इस नये पुराण का संकलन किया। वक्ता श्रोताओं की दृष्टि से इस पुराण के निम्नलिखित पांच भाग हैं—

(१) अध्याय १-९ इसमें जैमिनि मार्कण्डेय से चार प्रश्न पूछते हैं। मार्कण्डेय उन्हें विंध्याचल में रहनेवाले धर्मपक्षियों के पास भेजते हैं। वे धर्मपक्षी जैमिनि के चार प्रश्नों का समाधान करते हैं। इसी में हरिश्चन्द्र का महद् उपाख्यान आया है।

(२) अध्याय १०-४४—इस भाग में जैमिनि प्राणियों के आविर्भाव, तिरोभाव, संसृति, जन्म और वृद्धि आदि के विषय में धर्मपक्षियों से और प्रश्न पूछते हैं, किन्तु पक्षी नाममात्र के वक्ता हैं, वास्तविक वक्ता—श्रोता जड़ सुमति और उसके पिता हैं जो भार्गववंशी ब्राह्मण हैं।

(३) अध्याय ४५-८०—इस भाग में जैमिनि और धर्मपक्षी केवल नाममात्र के श्रोता वक्ता हैं, वास्तविक वक्ता मार्कण्डेय हैं जो अपने शिष्य क्रौष्टुकि से पुराण का कथन करते हैं।

(४) अध्याय ८१-९२—देवी माहात्म्य—इसके वास्तविक वक्ता मेधा ऋषि हैं। मार्कण्डेय श्रावयितामात्र हैं।

१—मार्कण्डेयमुखात् कृत्स्नं यतिधर्ममवाप्तवान्। (शान्ति पर्व, ३८।१३)

इसके अनुसार पितामह भीष्म ने भी यतिधर्मों की शिक्षा मार्कण्डेय ऋषि से प्राप्त की थी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(५) अध्याय ९३-१३६–इसमें मार्कण्डेय और क्रौष्टुकि के संवाद का जो सूत्र अध्याय ८१ के बाद टूट गया था वह फिर शुरू होता है और अन्त तक चलता है। अन्त में अध्याय १३७ में पुराण का उपसंहार किया गया है। श्री पार्जिटर का विचार था कि मार्कण्डेय और क्रौष्टुकि के संवाद स्वरूप भाग ३ और ५ पुराण का मूल अंश का जिसमें भाग १, २ और ४ के प्रकरण जिनके वक्ता श्रोता स्वतंत्र हैं पीछे से संगृहीत करके इस पुराण को उसका वर्तमान स्वरूप प्रदान किया गया। इस विषय में पौर्वापर्य का विशेष आग्रह न करके इतना ही सुनिश्चित कहा जा सकता है कि पुराण के जिस प्रतिसंस्कृत पांचरात्रिक स्वरूप की चर्चा ऊपर की गई है उसकी विशेषताएं पांचों ही भागों में प्राप्त होती है और आदि से अन्त तक सर्वत्र इस पुराण में उस की छाप पाई जाती है। अतएव यह परिणाम समीचीन ज्ञात होता है, जैसा श्री पार्जिटर ने भी माना है, कि इस पुराण का वर्तमान स्वरूप विक्रम की पांचवीं शती में चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय तक संपन्न हो चुका था।

पुराण के आरंभ में पहले ही अध्याय में महाभारत की महिमा बताई गई है और स्वयं व्यास-शिष्य जैमिनि उसका कथन करते हैं। जिस प्रकार मार्कण्डेय पंचरात्र धर्म के प्रतिनिधि हैं वैसे ही जैमिनि महाभारत की परंपरा का प्रतिनिधित्व करते हैं, एवं धर्मपक्षी जैसा हम आगे देखेंगे प्राचीन वैदिक परंपरा के प्रतीक हैं। वेद, महाभारत और पंचरात्र धर्म इन तीनों की समष्टि ही विक्रम की पहली पांच शतियों का तेजस्वी भागवत धर्म था।

जैसा स्वयं नारायण ने ऋषियों से कहा है, लक्षश्लोकात्मक महाभारत लोकतंत्र के समस्त धर्मों का मूल एवं प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्गों के जितने धर्म थे उन सबका बीज माना जाता था—

कृतं शतसहस्रं हि श्लोकानामिदमुत्तमम्।
लोकतंत्रस्य कृत्स्नस्य यस्माद् धर्मः प्रवर्तते॥
प्रवृत्तौ च निवृत्तौ च योनिरेतद् भविष्यति।

(शान्तिपर्व ३२२।३६-३७)

जैमिनि के मुख से महाभारत के संबंध में यह संगत कथन है—'भगवन्', महात्मा व्यास ने जो भारताख्यान रचा है वह नाना शास्त्रों के निर्मल सारांशों से पूर्ण है। उसमें छंदों की शुद्धि और साधु शब्दों की शोभा है। पूर्व पक्ष और सिद्धान्त की परिनिष्ठा से वह युक्त है। जैसे देवों में विष्णु, आयुधों में वज्र और इन्द्रियों में मन है वैसे ही सब शास्त्रों में महाभारत उत्तम है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों का यहां वर्णन है, उनका पारस्परिक संबंध और तारतम्य भी दिखाया गया है, एवं पृथक् कथन भी किया गया है। यह भारत ग्रंथ श्रेष्ठ धर्मशास्त्र,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परम अर्थशास्त्र, अग्रणी कामशास्त्र और उत्तम मोक्षशास्त्र है। आश्रम धर्मों का और सदाचार धर्मों का इसमें प्रतिपादन किया गया है। इसकी रचना में ऐसी युक्ति है कि विषय-विस्तार की दृष्टि से व्यापक महाशास्त्र होते हुए भी इसमें विरोध नहीं है। व्यास के वाक्यरूपी प्रवाह, वेदरूपी ऊँचे पर्वतों से नीचे उतरे हैं। वे कुतर्करूपी वृक्षों का उन्मूलन करने वाले हैं। उनसे यह पृथिवी सब प्रकार की मैल-मिट्टी से रहित बना दी गई है। कृष्ण द्वैयपायन द्वारा विरचित इतिहास-पुराणरूपी यह पंचम वेद एक बड़े जलाशय के समान है जिसमें मार्कण्डेय, सनत्सुजात आदि परमहंसों का मधुर शब्द कूजित हो रहा है, जिसमें कुरु-पाण्डवों का महदाख्यानरूपी श्रेष्ठ कमल खिला हुआ है और जिसमें नाना कथारूपी नदियां मिल कर उसकी जलराशि को बढ़ा रही हैं। ऐसा बहुअर्थयुक्त, श्रुतियों से विस्तार को प्राप्त यह भारत आख्यान है। इसे तत्त्वतः समझने के लिये मैं आपके पास आया हूँ।'[1]

महाभारत के संबंध में गुप्तकाल की निष्ठा ऊपर के शब्दों में सटीक रूप से प्रकट हुई है। बाण ने भी लिखा है कि उस युग में भारती कथा तीनों

१—भगवन् ! भारताख्यानं व्यासेनोक्तं महात्मना ।
पूर्णमस्तमलैः शुभ्रैर्नानाशास्त्रसमुच्चयैः ॥
जातिशुद्धिसमायुक्त साधुशब्दोपशोभितम् ।
पूर्वपक्षोक्ति सिद्धान्तपरिनिष्ठासमन्वितम् ॥
त्रिदशानां यथा विष्णुर्द्विपदां ब्राह्मणो यथा ।
भूषणानाञ्च सर्वेषां यथा चूड़ामणिर्वरः ॥
यथायुधानां कुलिशमिन्द्रियाणां यथा मनः ।
तथेह सर्वशास्त्राणां महाभारतमुत्तमम् ॥
अत्रार्थश्चैव धर्मश्च कामो मोक्षश्च वर्ण्यते ।
परस्परानुबन्धाश्च सानुबन्धाश्च ते पृथक् ॥
धर्मशास्त्रमिदं श्रेष्ठमर्थशास्त्रमिदं परम् ।
कामशास्त्रमिदं चाग्र्यं मोक्षशास्त्रं तथोत्तमम् ॥
चतुराश्रमधर्माणमाचारस्थितिसाधनम् ।
प्रोक्तमेतन्महाभाग वेदव्यासेन धीमता ॥
तथा तात कृतं ह्येतद् व्यासेनोदारकर्मणा ।
यथा व्याप्तं महाशास्त्रं विरोधैर्नाभिभूयते ॥
व्यासवाक्यजलौघेन कुतर्कतरुहारिणा ।
वेदशैलावतीर्णेन नीरजस्का मही कृता ॥
कलशब्दमहाहंसं महाख्यानपराम्बुजम् ।
कथा विस्तीर्णसलीलं कार्ष्णं वेदमहाह्रदम्
तदिदं भारताख्यानं बह्वर्थं श्रुतिविस्तरम् ।
तत्त्वतो ज्ञातुकामोऽहं भगवंस्त्वामुपस्थितः ॥ (१।२-१२)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लोकों में व्याप्त हो रही थी और उससे अनेक उपाख्यानों का ज्ञान होता था। (हर्ष० ११९)। उज्जयिनी में महाकाल के मन्दिर में और किन्नर लोक में कादम्बरी के कुमारी अन्तःपुर में सर्व मंगलों के विधायक महाभारत की कथा हुआ करती थी।[1] चन्द्रापीड़ के विद्यामंदिर में महाभारत, पुराण, इतिहास और रामायण इन चारों की शिक्षा का प्रबंध था। इस प्रकार गुप्त युग में महाभारत अत्यन्त लोकप्रिय और शक्ति शाली ग्रन्थ बन गया था।

इस भूमिका के साथ जैमिनि ने अपनी चार शंकाएं मार्कण्डेय के सामने रक्खीं—(१) निर्गुण होते हुए भी जनार्दन विष्णु मनुष्य योनि में क्यों आए? (२ अकेली द्रौपदी पांच पाण्डवों की पत्नी कैसे हुई? (३) महाबली बलराम ने तीर्थयात्रा द्वारा अपनी ब्रह्महत्या कैसे दूर की? (४) द्रौपदी के पांच छोटे पुत्र कुमार अवस्था में ही क्यों वध को प्राप्त हुए?'

जैमिनि के ये प्रश्न सुनकर महामुनि मार्कण्डेय ने कहा—"यह नित्य कर्म का समय है और आपके प्रश्नों का उत्तर कुछ विस्तार से देना होगा। अतएव आप विंध्याचल की कन्दरा में रहने वाले पक्षियों के पास चले जाइए जो आपकी शंका का निवारण करेंगे।" (१।१९-२०)

ये पक्षी द्रोणपुत्र कहे गए हैं। पिंगाक्ष, विबोध, सुपुत्र और सुमुख ये उनके यहां नाम हैं। इन पक्षियों को तत्त्वज्ञ, शास्त्र चिन्तक एवं वेदों और शास्त्रों का अर्थ समझने में अप्रतिहत बुद्धि वाला कहा गया है। सुनते ही जैमिनि को सन्देह हुआ। उसने कहा—'यह अचरज की बात है कि पक्षी मनुष्य की वाणी में बोलते हैं और दुर्लभ ज्ञान भी उनके पास है। यह द्रोण कौन है और उसके चार पुत्र कौन हैं?' उत्तर में मार्कण्डेय ने पक्षियों की तिर्यक् योनि के संबंध में एक कहानी सुनाई जो तीसरे अध्याय तक चलती है। इसका सार यह है— एक बार नारद ने नन्दन वन में अप्सराओं से घिरे हुए इन्द्र को देखा। इन्द्र ने इच्छा प्रकट की कि नारद अप्सराओं का नृत्य देखें। नारद ने कहा—'तुममें से जो अपने आपको रूप और गुण में सब से अधिक समझती हो वह मेरे सामने नृत्य करे। गुण और रूप से हीन का नाट्य सफल नहीं माना जाता। अंग-सौष्ठव से ही नृत्य में रस आता है औरों का नृत्य विडंबना है।'[2] अप्सराओं में

१—पठ्यमाने च सर्वमंगलमहीयसि महाभारते
दत्तावधानाम्, कादम्बरी अनुच्छेद २०५।

अद्यतु चतुर्दशीति भगवन्तं महाकालमर्चितुमितो गतया तत्र महाभारते वाच्यमाने श्रुतं अपुत्राणां किल न सन्ति लोकाः शुभाः। पुन्नाम्नो नरकात् त्रायते पुत्र इति, अनुच्छेद, ५७।

२—युष्माकं इह सर्वासां रूपौदार्यगुणाधिकम्।
आत्मानं मन्यते या तु सा नृत्यतु ममाग्रतः॥
गुणरूपविहीनायाः सिद्धिर्नाट्यस्य नास्ति वै।
चार्वधिष्ठानवन्नृत्यं नृत्यमन्यद् विडंवनम्॥ (१।३५-३६)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होड़ लगी देखकर नारद ने एक कड़ी कसौटी रख दी—'तुममें से जो यहीं तप करते हुए दुर्वासा का मन डिगा देगी उसी को मैं अधिक मानूंगा।' यह सुनकर और सब तो ठिठक गईं, किन्तु वपु नाम की अप्सरा ने कार्य का बीड़ा उठाया और वह जाकर मुनि के सामने हाव भाव करने लगी, पर मुनि टस से मस न हुए और उन्होंने उसके अभिनय से कुपित हो कर शाप दिया—'जा, तू सुपर्ण गोत्र में पक्षिणी बन। वहां तेरे चार पुत्र होंगे।'

इधर अरिष्ट मुनि के पुत्र पक्षिराज गरुड़ के वंश में कंधर नाम का पक्षी हुआ। वपु अप्सरा ने उसी के घर पक्षी योनि में जन्म लिया। उसका नाम तार्क्षी रक्खा गया। उधर किसी मन्दपाल के पुत्र जरितारि आदि चार पक्षी थे। उनमें सबसे छोटा द्रोण था। उसने तार्क्षी से विवाह किया। वह गर्भवती अवस्था में ही किसी प्रकार कुरुक्षेत्र में पहुँच गई और वहां उसने चार अण्डे दिए। उसी समय संयोग से एक बड़ा गज-घंटा उनके ऊपर गिरा और युद्ध होते हुए युद्ध भूमि में भी वे चारों बच गए। तब वहाँ शमीक ऋषि ने उन्हें चहचहाते हुए देखा और अपने आश्रम में ले आए और श्रुतियों के अनुसार उनके संस्कार किए। वहाँ ऋषि के प्रभाव से उनमें ज्ञान प्रकट हुआ और उन्हें संस्कारवती स्फुट वाणी प्राप्त हुई। वहाँ शमीक के पुत्र शृङ्गीऋषि के पूछने पर उन्होंने पक्षी योनि में जन्म लेने का कारण बताते हुए एक कहानी और कही—"पूर्वकाल में विपुलस्वान् नामक मुनि के दो पुत्र थे सुकृष और तुम्बुरु। हक सुकृष के चार पुत्र थे। एक बार देवराज इन्द्र पक्षी का रूप धरकर पिता के पास आए और क्षुधा शान्ति के लिये भोजन की याचना की और यह भी कहा कि नरमांस से ही मुझे परम तृप्ति होती है। ऋषि ने शरणागत पक्षी की इच्छा पूरी करने के लिये पहले अपने पुत्रों से पूछा—'क्या तुम मेरी आज्ञा मानोगे।' उनके 'हाँ' कहने पर जब काम बताया तो चारों पुत्र बगलें झाँकने लगे और उन्होंने सोचा—जीने से ही कल्याण मिलता है। जीवित रहकर पुण्य किया जा सकता है। देह के नष्ट होते ही धर्म का क्रम भी टूट जाता है। धर्मविदों का कहना है कि आत्मा को सर्वथा रक्षा करनी चाहिए।[1] पुत्रों से लाचार होकर मुनि ने उन्हें तिर्यक् योनि में जन्म लेने का शाप दिया और सच्ची बोधिसत्व भावना से अपना ही शरीर उस पक्षी को अर्पित कर दिया। सुपर्णरूपी इन्द्र ने प्रसन्न होकर कहा—'मैंने केवल जिज्ञासा भाव से तुम्हारी परीक्षा ली थी। मुझे क्षमा करो। तुमने सत्य की रक्षा की। अतएव मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। आज से तुम्हारे हृदय में ऐन्द्रज्ञान (आत्मज्ञान) प्रतिभासित होगा।' इन्द्र के चले जाने पर वे चारों पुत्र पिता के सामने गिड़गिड़ाने लगे—'हे तात, हम मरने से डर गए। हमें क्षमा दो।

१—जीवन् भद्राण्यवाप्नोति जीवन् पुण्यं करोति च।
मृतस्य देहनाशश्च धर्मादुपरतिस्तथा॥
आत्मानं सर्वतो रक्ष्यमाहुर्धर्मविदो जनाः।
(३।४१-४२)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

त्वचा, अस्थि, मांस के संघात इस शरीर में हमें मोह हो गया। यह शरीर दुर्ग के समान है। इसमें प्रज्ञा प्राकार है। अस्थियाँ स्थूणा हैं। मांस और शोणित का लेप है। त्वचा रोकने वाली भित्ति है। इन्द्रियों के नव द्वार फाटक हैं। उसके भीतर बैठा हुआ चेतनावान् पुरुष राजा है। बुद्धि और मन उसके दो मंत्री हैं जो आपस में विरोधी होकर एक दूसरे का नाश करने के लिये उतारू रहते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह ये बाहरी शत्रु हैं। जब राजा द्वार बन्द करके बैठता है तो सकुशल रहता है। यदि वह द्वार खुला छोड़ देता है तो राग नामक शत्रु आक्रमण कर देता है और मन और इन्द्रियों को वश में करके दुर्ग को तोड़-फोड़ डालता है जिससे राजाका नाश हो जाता है। हे पिता, हम भी राग के कारण नष्ट बुद्धि होकर जीवन के मोह में फँस गए। अब आप कृपया प्रसन्न हों।'

मुनि ने कहा—'मेरी बात अन्यथा न होगी। दैव बलवान् है—

दैवमत्र परं मन्ये धिक् पौरुषमनर्थकम्।
नास्त्यसाविह संसारे यो न दृष्टेन बाध्यते॥

(३।७६-८०)

यहाँ कथाकार ने नियतिवादी दर्शन का एक छींटा डाल दिया है यद्यपि पांचरात्रिक दर्शन में आजीवकों के नियतिवाद या दिष्टवाद को स्थान न था।

तब शमीक मुनि ने कहा—'ये सामान्य पक्षी नहीं, ये द्विजोत्तम हैं—

सामान्यपक्षिणो नैते केऽप्यते द्विजसत्तमाः।

(३।८२,२।५८)

इन बालसुलभ कहानियों के झीने हल्के आवरण में कथाकार जो बात कहना चाहता था वह यह है—ये चार पक्षी ऋग्वेद के दशम मंडल के चार ऋषियों के प्रतीक हैं। वहां जरिता, द्रोण, सारिसृक्क और स्तम्भ नाम के चार ऋषि शृङ्गी-गोत्र में उत्पन्न या शृङ्गी के पुत्र होने के कारण शार्ङ्ग कहे गए हैं। चारों ऋषि अग्नि की स्तुति में दो-दो मंत्र के द्रष्टा हैं। उस सूक्त का भाव यह है—हे अग्नि, इस मंत्र का गायक मैं तुम्हारे साथ था। तुम त्रिविध कल्याण के दाता हो। हिंसा को हम से दूर रक्खो। तुम्हारा जन्म जलों से हुआ है। तुम विश्वभुवन के सखा हो। हमारी इन्द्रियां और हमारी बुद्धि विजयी हों। हे अग्नि, तुम जंगलों का भक्षण करते हुए आगे बढ़ते हो। उर्वरा भूमि को खिल बनाते हुए चलते हो। हम तुम्हें क्रुद्ध न करें। हवा के झोंके से पर्वतों और खड्डों को भस्म करते हुए जब तुम बढ़ते हो पृथिवी सपाट हो जाती है। यहाँ रथ अनेक हैं, किन्तु मार्ग एक है। तुम्हारा बल, तुम्हारी अर्चि और वीर्य ऊर्जित हों। सब वसु तुम्हारी उपासना करें। यह विश्व सब जलों का संग्रहस्थान महासमुद्र है। इसे बचाते हुए तुम अपने लिये दूसरा मार्ग चुनो। तुम्हारे आने और जाने के मार्ग में दूब के पुष्पित नाल उगें। वहां कमलों से भरे सरोवर हों। ये समुद्र के बीच में बने वास स्थान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं (ऋग्वेद १०।१४२।१-८)। यह सूक्त सृष्टि के अध्यात्म कारण की व्याख्या करता है। अग्नि ही नाना रूपों में प्रकट होकर प्राणियों की रचना करता है। यहाँ रथरूपी शरीर अनेक हैं, किन्तु उनका मार्ग एक है। प्रत्येक जीवन में उस जल का, जो सृष्टि के पूर्व था, कुछ अंश संचित दिखाई पड़ रहा है। प्रत्येक मानव के भीतर हृत्पुण्डरीक है। अतएव वह खिले हुए कमल से युक्त सरोवर जैसा है। जैसे जल के भीतर सलिल-क्रीडा के लिये समुद्र गृह की रचना की जाती है वैसे ही शक्ति के महासमुद्र में मनुष्य देह या विश्व के दूसरे आयतनों को हम समुद्र गृह के रूप में देख रहे हैं। प्रत्येक व्यक्ति के आने और जाने के मार्ग में अर्थात् इस लोक और परलोक में पुष्पिणी दूर्वाओं के अंकुर दूर तक फुटाव लें। यह विश्व एक महावन या अरण्य है जिसमें एक-एक वृक्ष एक-एक ब्रह्माण्ड के समान फूल फल रहा है। प्रलय की महा अग्नि वन और उसके वृक्षों को भस्म न करे।'

ऋग्वेद के इस सूक्त के आधार पर महाभारत के आदि पर्व में, जब कृष्ण और अर्जुन ने खाण्डव वन का दाह किया, एक कहानी दी गई है जिसमें मन्दपाल नामक ऋषि के पुत्रों के रूप में वे चार ऋग्वेदीय ऋषि जन्म लेते हैं। महाभारत में उसके नाम भी वेही हैं—जरितारि, सारिसृक्क, द्रोण और स्तम्भ। किन्तु आदिपर्व की कहानी में वे चारों पक्षी योनि में उत्पन्न हुए हैं। वे चारों सुपर्ण खाण्डववन जलाने वाले अग्निदेव की स्तुतिकर उन्हें प्रसन्न करते हैं और बदले में उनसे रक्षा का आश्वासन प्राप्त करते हैं। उन चार शार्ङ्गक पक्षियों को महाभारत में भी ब्रह्मवादी कहा गया है।

वस्तुतः वैदिक भाषा में सुपर्ण एक प्रतीक वाची शब्द था। यज्ञ सुपर्ण है। संवत्सर सुपर्ण है। स्वयं प्रजापति पुरुष गरुत्मा सुपर्ण है। गायत्री, त्रिष्टुप् जगती ये तीनों सुपर्ण हैं जो स्वर्ग से सोम का आहरण करते हैं।[1] ये तीन छन्द वैदिक सृष्टि विद्या में ऋग्, यजु, साम के प्रतीक हैं। ऋग्, यजु, साम का नाम ही त्रयी विद्या है। जहां जहां अग्नि या तप की अभिव्यक्ति है वहाँ सृष्टि के मूलभूत त्रिक या अग्नि या यज्ञ का ही रूप है। यदि यज्ञ के संस्थान को एक वृत्त माना जाय तो ऋग्वेद उसका व्यास या विष्कम्भ है जिससे मूर्त्ति या पिंड का स्वरूप बनता है। सामवेद उस वृत्त की परिधि है जिससे मूर्ति का घेरा बनता है और यजुर्वेद उसके केन्द्र से परिधि तक भरा हुआ क्रिया रूप प्राण

१—एष महासुपर्ण एव यत्संवत्सरः। (शतपथ, १२।२।३।७)
पुरुषः सुपर्णः। (शतपथ ७।४।२।५)
यज्ञः वै सुपर्णं रूपं कृत्वा चरति। (ताण्ड्य १४।३।१०)
प्रजापतिर्वै सुपर्णो गरुत्मान्। (शतपथ १०।२।२।४)
यद् गायत्री श्येनो भूत्वा दिवः सोममाहरत् तेन सा श्येनः (=सुपर्णः)। (शतपथ ३।४।१।१२)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तत्त्व या रस है जो व्यास और परिधि के आयतन में परिच्छिन्न होता है। इस प्रकार एक और ऋक्-यजु-साम अग्नि है, और दूसरी ओर वह सोमतत्त्व है जिसे ऋत या आपः भी कहा जाता है। अथर्ववेद उसी आपः का प्रतीक है। यह विश्व अग्नी सोमात्मक है। अग्नीसोमात्मकं जगत्-इस वैदिक परिभाषा के अनुसार विश्व में मूर्त और अमूर्त सभी कुछ अग्नि के द्वंद में आ जाता है। दूसरे शब्दों में इसे ही ऋत और सत्य कहते हैं। ऋत आपः या जल या उस क्षीर की संज्ञा है जिसमें भागवतों के शेषशायी विष्णु या नारायण शयन करते हैं। विष्णु सत्यात्मक है। सोम की संज्ञा ऋत है तो उसकी तुलना में तीन अग्नियों को सत्य कहा जाता है। जिस संस्थान का केन्द्र हो वह सत्य कहलाता है। शक्ति के महासमुद्र में सत्य या तप की अभिव्यक्ति अर्थात् केन्द्र युक्त संस्थान का प्रकट होना यही सृष्टि है। इसे भागवतों ने क्षीर समुद्र और विष्णु के प्रतीक द्वारा उपाख्यानों में कहा है।

अग्नि के प्रतोक ऋक्-यजु-साम और सोम का अथर्व, ये चार वेद ही चार ब्रह्मवादी सुपर्ण हैं। यज्ञीय अग्नि की रक्षा द्वारा ही वेदों की रक्षा संभव है, वैदिक कर्मयोग के अधिगम से ही समाज के दृढ़ संस्थान की रक्षा की जा सकती है। भागवतों ने इस महान् तत्त्व को भली प्रकार आत्मसात् कर लिया था।

जैसा पहले कहा जा चुका है मार्कण्डेय, जैमिनि और शांर्गक पक्षी ये तीनों तीन धाराओं के प्रतीक थे। इनमें पक्षियों को वैदिक परम्परा के प्रतीक माना गया। पुराण में इन्हें साधारण पक्षी नहीं, धर्मपक्षी कहा है जो तपः स्वाध्याय में निरत और समाधि के लिये संकल्पित थे (३।८२-८४)। सुपर्ण योनि में भी सरस्वती ने उनका सान्निध्य नहीं छोड़ा। सरस्वती वाग्देवी का उपलक्षण है। वैदिक ब्रह्मविद्या और वाक् ये दोनों पर्याय थे। पक्षियों ने स्वयं अपना परिचय देते हुए कहा है—'चारों वेदों में जो तत्त्व है, धर्मशास्त्रों में, सब अंगों में एवं और भी जहां तक वेदसम्मित या वेदानुकूल ज्ञान का विस्तार है वह सब हमारी बुद्धि में गोचर है।'[1] आगे चल कर जैमिनि ने उनके विषय में कहा है—'मैं भाग्यशाली हूँ जो मार्कण्डेय जी ने मुझे आपके पास भेजा। आप सब संदेहों के निवारण करने वाले हैं। इस संकटपूर्ण संसार में आप जैसे ज्ञानदृष्टि महात्माओं का सान्निध्य पाकर भी यदि मैं कृतार्थ न हुआ तो अन्यत्र कहीं न हो सकूंगा। प्रवृत्ति और निवृत्ति में, ज्ञान और कर्म में आप की बुद्धि जितनी निर्मल है और किसी की न होगी (४५।१-७).'

१—चतुर्ष्वपि हि वेदेषु धर्मशास्त्रेषु चैव हि ।
समस्तेषु तथांगेषु यच्चान्यद्वेदसम्मितम् ॥
एतेषु गोचरोऽस्माकं बुद्धेर्ब्राह्मणसत्तमम् ।

(४।२७-२८)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

महाभारत में जो ब्रह्मवादी सुपर्ण कुरुक्षेत्र के प्रदेश में थे वे ही अब विन्ध्याचल में निवास करते हुए कहे गए हैं। उनका आश्रम विन्ध्य की ऐसी कन्दरा में था जहाँ नर्मदा के जल के छींटे उड़-उड़ कर जाते थे (विन्ध्यस्येहागतो रम्यं रेवावारिकणोक्षितम्, ४।२२)। इस सूचना के आधार पर श्री पार्जिटर ने यथार्थ अनुमान किया था कि नर्मदा और विन्ध्याचल दोनों के सान्निध्य में इस प्रकार का स्थान मान्धाता हो हो सकता है जहाँ विन्ध्य पर्वत दोनों ओर नर्मदा के तटों तक आया हुआ है और नदी के बीच में एक द्वीप भी पड़ गया है। मान्धाता में ओङ्कारेश्वर नामक प्राचीन ज्योतिर्लिङ्ग है। मान्धाता का ही प्राचीन नाम माहिष्मती था। महाभारत सभापर्व के अनुसार माहिष्मती अग्नि का प्राचीन निवासस्थान था (तत्र माहिष्मतीवासी हव्यवाहनः)। इससे सूचित होता है कि विंध्याचल और नर्मदा का प्रदेश गुप्त कालीन संस्कृति का जीता-जागता क्षेत्र था और उज्जयिनी से भरुकच्छ, दशपुर, प्रतिष्ठान और विदिशा के भौगोलिक चौखटे में उस समय कोई विलक्षण सांस्कृतिक प्राणधारा स्पंदित हो रही थी। जैसा बाण की सूचना से विदित होता है उज्जयिनी में महाभारत के पठन-पाठन, कथा-वार्ता का बड़ा केन्द्र था। जिन भार्गववंशी ऋषियों या ब्राह्मणों का उल्लेख मार्कण्डेय ऋषि के रूप में हुआ है उनका भी मुख्य केन्द्र नर्मदा और ताप्ती नदियों के उपकण्ठ प्रदेश में था।

जैमिनि अपनी जिन चार शंकाओं को लेकर ज्ञानपक्षियों के पास गए थे उनमें पहला प्रश्न यह था कि सब कारणों के परम कारण, अखिल विश्व के आधार गुणातीत विष्णु सगुण मनुष्य देह कैसे धारण कर लेते हैं —

कस्मान्मानुषतां प्राप्नोति निर्गुणोऽपि जनार्दनः।
वासुदेवोऽखिलाधारः सर्वकारणकारणम्॥
(५।३१)

भागवतों के लिये यह प्रश्न साधारण न था। उस युग की सबसे बड़ी दार्शनिक उलझन इस प्रश्न के भीतर से झाँक रही है। इस प्रश्न का कुछ महत्व जानना चाहें तो उस समय के दार्शनिक ऊहा-पोह से परिचय करना पड़ेगा। बौद्ध-जैन, भागवत सब के सामने यही उलझा हुआ प्रश्न समाधान के लिये मुँह खोले खड़ा था। सभी तथागत, तीर्थंकर या देवाधिदेव विष्णु की अर्चा-पूजा में विश्वास करते थे। एतएव मूर्त और अमूर्त, सगुण और निर्गुण, क्षणिक-दृश्य और अदृश्य-नित्य के सामञ्जस्य का प्रश्न सबके सामने था। उदाहरण के लिये बौद्धों में सत्त्वधातु और धर्मधातु के दिखाई पड़नेवाले विरोध के समन्वय का प्रश्न था। जो अंतिम गुणातीत नाम रूप से परे कोई सत्ता है उसे वे धर्मकाय कहते थे। दार्शनिक दृष्टि से उसके और भी कई नाम थे, जैसे धर्मधातु, तथता या तथागत। जो दृश्य, क्षणिक मानव या विश्व के पदार्थ हैं वे सत्त्वधातु कहे जाते थे। प्रत्येक सत्त्वधातु के भीतर नित्य धर्मधातु निहित है। वहां छिपी हुई तथता को ही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तथागतगर्भ कहा जाता था। तथागतगर्भ वह चित्तप्रकृति है जो सदा परिशुद्ध रहती है और जिसे दोषों से संस्पृष्ट या मलिन किया ही नहीं जा सकता। ऐसी प्रभास्वर चित्त प्रकृति या परिशुद्ध चित्तांश दिव्य ही हो सकता है, भौतिक नहीं। यह ठीक है कि प्रत्येक सामान्य व्यक्ति में यह तथागत गर्भ क्लेश या उनके आवरणों से घिरा हुआ रहता है, किन्तु ये आवरण आगन्तुक हैं, वास्तविक नहीं। इनसे मुक्त होने के लिये प्रत्येक बोधिसत्व व्यक्ति को क्रमशः साधना की दश भूमिकाओं को पार करना पड़ता है। तथागतगर्भ और स्वत्वधातु के इस सिद्धान्त में शब्दों का अन्तर अवश्य है किन्तु मूल बात वही है कि एक निर्धर्मक, गुणातीत तत्त्व समस्त सत्त्वों में मूर्तरूप में प्रकट हो रहा है। भागवतों की परिभाषा में अव्यक्त निर्गुण तत्त्व नारायण है और व्यक्त सगुणरूप की संज्ञा नर है। नर रूप में नारायण के ही दर्शन हो रहे हैं। प्रवृत्ति लक्षण धर्म के कारण नारायण नर बनता है (प्रवृत्तिलक्षणश्चैव धर्मो नारायणात्मकः, शान्ति ३३५।७७)। भागवत दृष्टिकोण की मूलभित्ति नारायण और नर या नरनारायण ऋषि इस एक सूत्र में प्रकट हुई। महाभारत में स्पष्ट कथन है :—

नारायणः नरश्चैव सत्त्वमेकं द्विधा कृतम्।

भागवत में इसी का उद्घोष इस प्रकार है :—

नारायणं नरसखं शरणं प्रपद्ये।

प्राचीन वैदिक परिभाषाओं में जो तत्त्व अनेक प्रकार से कहा जाता था उसे ही भागवतों ने नारायण और नर की नई परिभाषा द्वारा परिगृहीत किया, जैसा इस तालिका से ज्ञात होगा :—

नारायण	नर
सहस्र शीर्षा पुरुष	दशांगुल पुरुष
त्रिपाद्	एक पाद्
अमृत	मर्त्य
प्राण	अन्न
ऋत	सत्य
असत्	सत्
ज्ञान	विज्ञान
प्रतिसंचर	संचर
विसृष्टि	सृष्टि
असंभूति	संभूति
विद्या	अविद्या
ज्ञान	कर्म
निवृत्ति	प्रवृत्ति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

त्याग	संग्रह
यति धर्म	गृहस्थ धर्म
अर्ध मात्रा	अ-उ-म् त्रिमात्रा
परात्पर-अव्यय	अक्षर-क्षर
गुहा	आविः
तत्	एतत्
शेष	विष्णु
कृष्ण	शुक्ल
निर्गुण	सगुण
अन्तिक	दूर
ब्रह्म	इदं सर्वम्
केन्द्र	परिधि
ब्रह्मौदन	प्रवर्ग्य
अदः	इदम्
मुक्ति	भुक्ति
मोक्ष क्षेत्र	कर्मक्षेत्र
रस	बल
समष्टि	व्यष्टि
निष्कल	कला
चिदात्मा	चिदंश
पर रूप	अपर रूप
अनन्त	सान्त
अवर्ण	वर्णात्मक
अरूप	रूपात्मक
नाद	बिंदु
एक	बहुधा
सहस्र	शत

इस प्रकार वैदिक साहित्य में एवं परवर्ती ग्रंथों में सृष्टि के द्विविध रूप की अनेक कल्पनाएं पाई जाती हैं। उनकी बुद्धिगम्य व्याख्याएं स्वतंत्र विषय हैं। यहां इतना पर्याप्त है कि भागवतों के मन में इस द्वैत की और मूलभूत एकत्व की अत्यन्त स्पष्ट प्रतीति थी। वैदिक भावों को ही वे बार बार उमंग कर अपने वर्णनों में अनेक प्रकार से पिरोते हैं। अनेक अध्यायों में और विशेषतः स्तोत्रों में उन्होंने अपनी इन भावनाओं को उन्मुक्त रूप से उंड़ेल दिया है। उदाहरण के लिये-

य ऋङ्मयो यो यजुषान्निधानं,
साम्नाश्च यो योनिरचिन्त्यशक्तिः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

त्रयीमयी स्थूलतयार्द्धमात्रा,
परस्वरूपो गुणपार योग्यः ॥

(१०३।६)

ऋक्-यजु-साम की जो त्रयीमयी मूर्त्ति है वह स्थूल या दृश्य है उसे नारायण का मानुषी रूप समझना चाहिए। उसका जो गुणातीत पर स्वरूप है वह ऋक्, यजु, साम की तीन मात्राओं से व्यतिरिक्त या ऊपर है जिसका प्रतीक प्रणव की अर्धमात्रा है।

अमूर्त की मूर्त रूप में अभिव्यक्ति, नारायण का नररूप में अवतार किस प्रकार संभव होता है, इस जटिल प्रश्न का उत्तर ज्ञान, विज्ञान, दर्शन, धर्म, सभी को देना आवश्यक है। सबको इससे जूझना पड़ता है। भागवतों ने इसका समाधान स्पष्ट, सरल और सुनिश्चित ढंग से किया। एक के नाना भाव में या नारायण के नर भाव में प्रकट होने का कारण उसी की शक्ति महामाया कही गई है—

भगवन् का हि सा देवी महामायेति यां भवान्।
ब्रवीति कथमुत्पन्ना सा कर्मास्याश्च किं द्विज ॥
यत्स्वभावा च सा देवी यत्स्वरूपा यदुद्भवा।
तत् सर्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदां वर ॥
नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम्।
देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा।
उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते ॥

(८१।४५-४८)

इस प्रकार भागवतों ने सृष्टि की मूल व्याख्या प्रस्तुत की। उसी का उपबृंहण मार्कण्डेय पुराण में तथा अन्यत्र पाया जाता है। महामाया के अनेक नाम दिये गए हैं। उपनिषदों में जिसे बहुधा शक्तियोग कहा है उसी का अनुसरण करते हुए महामाया को योगनिद्रा, स्वाहा, स्वधा, वषट्कार, महाविद्या, परमेश्वरी, महामेधा, महास्मृति, यहाँ तक कि महासुरी और महामोहा भी कहा है। वह महामाया शेषशायी विष्णु के अंगों से निकलकर मूर्त रूप में आती है और सृष्टि की रचना करती है (८१।६९)।

ऊपर के विवरण की पृष्ठभूमि में जैमिनि के पहले प्रश्न का महत्त्व समझा जा सकता है, अर्थात् कैसे विष्णु ने मानव रूप धारण किया। इसके उत्तर में धर्म-पक्षियों ने भागवतों के दृष्टिकोण को स्पष्ट रूप में कहा है जिसका सारांश यह है—सबसे पूर्व एक अप्रमेय, शाश्वत, अव्यय पुरुष था। वह अगुण या गुणतीत सब में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वरेण्य, सबका गुरु और अमृत है। उससे अधिक अणु कुछ नहीं और उससे अधिक बृहद् भी नहीं है। वह अजन्मा और जगत् का आदिकारण है। उससे यह विश्व व्याप्त है। आविर्भाव और तिरोभाव (सृष्टि-प्रलय) दृष्ट और अदृष्ट इन दोनों से वह विलक्षण है। उसीसे यह विश्व सृष्ट है और अन्त में उसी में लीन होता है। ऐसे प्रभविष्णु भगवान् विष्णु को प्रणाम है। उन्हीं की शक्ति से आदिदेव ब्रह्मा अपने मुखों से ऋक् सामों का उच्चारण करते हुए तीनों लोकों को पवित्र करते हैं। उन भगवान् शिव को भी प्रणाम है जिनके बाणों से असुर निर्जित होकर यज्ञों के वितान का लोप नहीं कर सकते।

सृष्टि के आरम्भ में एकमात्र आपूतत्त्व था। उसे ही तत्त्वदर्शी मुनियों ने नारा कहा है। जो भगवान् उनमें निवास करता था वही सर्व व्यापक देव नारायण है। अपने निर्गुण और सगुण रूप में वही देव चार व्यूह या विभाग करके चार प्रकार से स्थित है। त्रिगुण और अगुण की समष्टि का नाम चतुर्व्यूहात्मा मूर्ति है[1] उसकी जो एक अनिर्देश्य मूर्ति है वही गुणातीत है। अतिशय तेजोमयी होने के कारण उसे शुक्ल वर्ण के कहते हैं। शुक्ल का तात्पर्य वही है जिसे उपनिषदों में अवर्ण कहा है।[2] वह गुणातीत मूर्ति वासुदेव कहलाती है। रूप, वर्ण, भाव और कल्पना से वह परे है। वह सदा शुद्ध है और सब की प्रतिष्ठा है।

इस निर्गुण अनिर्देश्य मूर्ति की अपेक्षा से गुणमयी मूर्ति वह है जो सृष्टि, स्थिति और संहार की क्रियाओं में अभिव्यक्त है। उसके तीन रूप हैं। एक तामसी, दूसरी सात्विकी और तीसरी राजसी। त्रिगुणात्मिका इन तीन मूर्तियों के चतुर्व्यूहात्मक या पांचरात्रिक नाम इस प्रकार हैं—

१. पहली मूर्ति—वासुदेव, अनिर्देश्या, शुक्ला, गुणातीत मूर्ति।
२. दूसरी मूर्ति—तामसी, शेषाख्या, बलराम।
३. तृतीया मूर्ति—सात्विकी, प्रद्युम्न, प्रजापालन और धर्म की व्यवस्था करने वाली।
४. चतुर्थी मूर्ति—राजसी यहाँ इसे जलमध्य में शेष की शय्या पर शयन करने वाली और सृष्टि में तत्पर कहा गया है। वैसे इसका चतुर्व्यूहात्मक नाम अनिरुद्ध है।

१—चतुर्व्यूहात्मने तस्मै त्रिगुणायागुणाय च।
चतुर्धा संस्थितो ब्रह्म सगुणो निर्गुणो तथा॥

(४।३७,४४)

२—य एकोऽवर्णो वहुधा शक्तियोगात्
वर्णाननेकान् निहितार्थो दधाति।
विचैति चान्ते विश्वमादौ स देवः।
स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु॥

(श्वेताश्वतर उपनिषद् ४।१)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जो धर्म-संस्थान की व्यवस्थापक मूर्ति है वही अनेक रूपों में अवतार लेती है। वराह, नृसिंह, वामन, कृष्ण उसी सात्विकी मूर्त्ति के विभिन्न रूप हैं। भगवान् वासुदेव की इच्छा से ही देव-मनुष्य-तिर्यक् योनियों में अनेक रूप प्रकट हो रहे हैं। यद्यपि निर्गुण रूप में वह भगवान् कृत-कृत्य है अर्थात् स्वयं वह अपने में तृप्त है फिर भी वह व्यक्त भाव में आ रहा है। यही मानुषत्वं गतो विष्णुः इस प्रश्न का समाधान है (४।२६-५९)।

नारायण शब्द की जो व्याख्या भागवतों ने की उसका मूल तन्तु उन्हें वैदिक साहित्य से प्राप्त हुआ था। उसके अनुसार सृष्टि की प्राक्कालीन अवस्था में सब कुछ आप् तत्त्व या सलिल ही था। वहीं से प्रजोत्पत्ति हुई।[1] वेद में ही प्रश्न किया गया है कि उस तत्त्व को आपः क्यों कहा गया। वस्तुतः आपः का अर्थ जल नहीं है। भौतिक जलों की सृष्टि तो स्थूल प्रक्रिया में आगे चल कर होती है। जो मूल व्यापक शक्ति तत्त्व था उसे ही आपः कहा गया, जैसा शतपथ में कहा है—'क्योंकि उसने सबको व्याप्त कर रक्खा था इसलिये उसे आपः कहते हैं।'[2] इसी व्युत्पत्ति को आधार मानकर सृष्टि के अग्रिम तत्त्व को आपः कहा गया। क्योंकि पुराणों में कई बार 'आपो नाराः' इस श्लोक का उल्लेख आता है और क्योंकि यह वेदानुकूल मत भागवतों को अतिशय मनःपूत हुआ, इसलिए इसे स्पष्टता के साथ समझ लेना आवश्यक है। मनुस्मृति में सृष्टि के इस क्रम का सर्वोत्तम विवेचन है। किन्तु इसका मूल ऋग्वेदीय पुरुष सूक्त है। गीता में भी इसका उल्लेख आया है। विष्णुपुराण, भागवत एवं अन्यत्र भी सृष्टि की यह व्याख्या प्रतिपादित है। इस सामग्री का तुलनात्मक विवेचन इस प्रकार है—सृष्टि प्रक्रिया पर बुद्धिपूर्वक विचार करने से सर्वप्रथम भूतों के जो पृथक् भाव हैं वे अनुभव में आते हैं। ये पृथक् पृथक् भूत-भौतिक भाव किसी एक स्रोत से प्रकट हुए हैं। इन सब की वह समष्टि ही महत् (अंग्रेजी युनिवर्सल) है। जो अलग अलग व्यक्ति हैं उनका समवाय किसी एक जाति, आकृति या समष्टि में मानना आवश्यक है, अन्यथा व्यक्ति का पुनः पुनः प्रादुर्भाव संभव नहीं। इस प्रकार दृश्य व्यक्ति (अं० स्पिशीज) और उनको एक सूत्रता में पिरोने वाली जाति ये वस्तु की दो कोटियां हुईं। जाति महत् है, और व्यक्ति इदं सर्वम् या विश्व है। जाति या महत् का भी जहां से उद्गम होता है वह अव्यक्त

---

१. आपो हवा इदमग्रे सलिलमेवास।
ता अकामयन्त कथन्नु प्रजायेमहीति॥
(शतपथ ० ११।१।६।१)

२. सा इदं सर्वम् आप्नोद् यदिदं किञ्च।
यदाप्नोत् तस्मादापः।
(शतपथ, ६।१।१।९, और भी गोपथ पूर्व भाग १२)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तीसरी कोटि है। इन्हीं तीन कोटियों से संपूर्ण विश्व के प्रादुर्भाव की व्याख्या हो जाती है। जो तीसरी अव्यक्त कोटि है उसके ही दो भेद मान लिए जाते हैं। एक सापेक्ष अव्यक्त और दूसरा निरपेक्ष अव्यक्त। सापेक्ष अव्यक्त को सर्वधर्मोपपन्न और निरपेक्ष को सर्वथा निर्धर्मक या निर्विशेष अव्यक्त कहेंगे। उसे ही नेति-नेति कहा जाता है। वैदिक भाषा में वही गुहा कहा गया है। इस प्रकार शुद्ध तर्क-मीमांसा की दृष्टि से सृष्टि प्रक्रिया की ये चार कोटियां निश्चित होती हैं— (१) निर्विशेष या परात्पर, (२) सापेक्ष अव्यक्त या अव्यय (३) विश्वात्मक महत् (या जाति जिसे व्याकरण में आकृति भी कहते हैं), और (४) व्यक्तिभूत या पृथक् पदार्थ। इन चारों में पहला गुणातीत और शेष सगुण हैं।

ऊपर की लिखी हुई तर्क सम्मत सृष्टि कोटियों का ही नामान्तर से वर्णन ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में और मनु स्मृति के प्रारम्भिक श्लोकों में आया है। उसे यों समझना चाहिए।

पुरुषसूक्त में जो सहस्रशीर्षा पुरुष है वह अपने निरपेक्ष रूप में परात्पर एवं गुणातीत है। वह प्रथम कोटि है। उसे त्रिपाद् और अमृत कहा जाता है। उसी का दूसरा सापेक्ष रूप वह है जो विश्वभुवनों को व्याप्त करके स्थित है। इसे भी पुरुष ही कहा गया है। इसी के लिये 'अत्यतिष्ठद्दशांगुलम्' संकेत है। दस अंगुल से कुछ अधिक अर्थात् साढ़े दस अंगुल यह एक वितस्ति की माप मानी गई है। समस्त ब्रह्माण्ड उस सर्वव्यापक पुरुष की आठ वितस्तियों के परिमाणवाला है। अपनी नाप से प्रत्येक केन्द्र का प्राण या अक्षर तत्त्व आठ प्रादेशों के नाप की इकाई या शरीर में व्याप्त होता है। इसीका नाम अष्टाक्षरा गायत्री है। पुरुष की यह दूसरी कोटि थी। तीसरी कोटि की संज्ञा विराट् है। विराट् ही वह तत्त्व है जिसे अन्यत्र आपः या महत् या योनि कहा गया है। इसी में पुरुष द्वारा सृष्टि का गर्भाधान किया जाता है। विराट ही प्रधान या प्रकृति है। विराट् के गर्भ धारण करने से यह विश्व व्यक्त भाव में आता है। व्यक्त विश्व ही वैराज पुरुष, हिरण्यगर्भ या नारायण आदि कई नामों से अभिहित हुआ है। विराज् की ही संज्ञा आपः कही गई है—

आपो ह यद् बृहतीर्विश्वमायन्
गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम्।
ततो देवानां समवर्ततासुरेकः
कस्मै देवाय हविषा विधेम।

(ऋग्वेद १०।१२१।७)

बृहतीः आपः, अर्थात् बृहत् आप् तत्त्व या प्रकृति का सर्वव्यापक मातृतत्त्व पुरुष के संसर्ग से गर्भ धारण करता है और फिर पुरुष को ही जन्म देता है। जो जन्म लेनेवाला पुरुष है वह अग्नि, यज्ञ, नारायण, विष्णु, सूर्य, हिरण्यगर्भ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आदि कई नामों से अभिहित किया गया है। आपः तत्त्व को ही वेदों में सलिल या ऋत भी कहा गया है। उसी ऋत के गर्भाधान से जिस तत्त्व का जन्म होता है उसे ही सत्य, अग्नि, सूर्य, हिरण्यमय पुरुष, यज्ञ, या यज्ञात्मक विष्णु कहते हैं। यज्ञात्मक विष्णु ही विश्व है। इन वैदिक परिभाषाओं का हेतु विस्तृत व्याख्या से ही जाना जा सकता है। किन्तु यह स्मरण रखना आवश्यक है कि 'आपः' का अर्थ जल नहीं, सर्वव्यापक शक्ति-तत्त्व या मातृ तत्त्व ही है जिससे इस व्यक्त विश्व का जन्म होता है।

इसी वैदिक सृष्टि-तत्त्व का विकसित वर्णन मनुस्मृति में आया है। उसकी क्रमिक चार कोटियां इस प्रकार है।[1] (१) सर्वप्रथम कोई अप्रतर्क्य, अविज्ञेय,

---

१—मनुस्मृति के सृष्टि विद्या विषयक वर्णन की चार कोटियों के प्रतिपादक श्लोक इस प्रकार हैं—

१—पहली कोटि, गुणातीत परात्पर ब्रह्म—

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः।

(मनु० १।५)

२—दूसरी कोटि स्वयंभू प्रजापति पुरुष

ततः स्वयंभूर्भगवान् अव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम्।
महाभूतादि वृत्तौजाः प्रादुरासीत् तमोनुदः
योऽसावतिन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः
सर्वभूतमयोऽचिन्त्यः स एव स्वयमुद्बभौ॥

(मनु०, १।६-७)

३—तीसरी कोटि आपः, नाराः, महत्, परमेष्ठी

सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत्॥

(मनु०, १।८)

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।

(मनु०, १।१०)

४—चौथी कोटि, हैमाण्ड, सर्वलोक पितामह ब्रह्मा, त्रिगुणात्मक विश्व

तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम्।
तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोक पितामहः।

(मनु०, १।९)

ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः।

(मनु०, १।१०)

यन्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम्।
तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते॥

(मनु०, १।११)

५

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अप्रज्ञात और अलक्षण तत्त्व था। इसके विषय में कुछ भी कहा नहीं जा सकता। यह सूक्ष्म, अव्यक्त, सनातन, अचिन्त्य तत्त्व पुरुषसूक्त के सहस्रशीर्षा पुरुष के समकक्ष था।

(२) वह गुणातीत तत्त्व स्वयं अपनी शक्ति से अव्यक्त से व्यक्त भाव में आने के लिये प्रकट हुआ। स्वयमुद्बभौ (मनु० १।७), इस व्युत्पत्ति या शक्ति के कारण वह स्वयंभू कहलाया (मनु० १।८)। वह स्वयंभू भी अव्यक्त पुरुष है किन्तु वह अपने भीतर महाभूतों से निर्मित समस्त भूतों के मूलकारण को निहित रखता है। उसे गणित की परिभाषा में 'वृत्तौजाः' कहा गया है, अर्थात् उसका ओज या प्रातिस्विक शक्ति वृत्ताकार या गोल थी। वृत्त सृष्टि से पूर्व की अवस्था का और अण्ड सृष्टि के बाद की अवस्था का द्योतक है। वृत्त का एक केन्द्र होता है और अण्ड के तीन। अण्ड को ही वैदिक भाषा में त्रिनाभिचक्र कहते हैं जो त्रिगुणात्मक विश्व का प्रतीक है। अव्यक्त दशा में वृत्त का केवल केन्द्र होता है, परिधि नहीं, या यों कहना उचित होगा कि परिधि अपने केन्द्र में ही लीन रहती है। वैदिक भाषा में जिसे ऊर्ध्व कहा है वही वृत्त का केन्द्र है। ऊर्ध्व, हृदय, नाभि, गर्भ, उक्थ ये केन्द्र की ही वैदिक संज्ञाएँ हैं।

(३) इस स्वयंभू तत्त्व ने अपने ध्यान की शक्ति से सिसृक्षा या सृष्टि की इच्छा करते हुए सर्व प्रथम 'आपः' तत्त्व का सृजन किया। स्वयंभू नर तत्त्व था। किसी भी वस्तु के संचालक प्राण को नर कहा जाता है। स्वयंभू इस सारे विश्व का नर है। उसी ने इसकी सृष्टि की और वही इसमें प्रविष्ट है। नर रूप उस स्वयंभू से जन्म लेने के कारण आपः या मातृ-तत्त्व या प्रकृति को 'नारा' कहा गया, जैसा स्पष्ट कहा है—

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।

(मनु० १।१०)

यह श्लोक बारंबार पुराणों में दोहराया जाता है,[1] जैसा यहाँ मार्कण्डेय पुराण में भी आया है—

आपो नारा इति प्रोक्ता मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।
अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥

(मनु० ४।४३)

१—आपो नरस्य सूनुत्वान्नारा इतीह कीर्तिता।
विष्णोस्तास्त्वयनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥

(ब्रह्मपु० ६५।२५)

आपो नारा इति पुरा संज्ञाकर्म कृतं मया।
तेन नारायणोऽस्म्युक्तो मम तास्त्वयनं सदा॥

(ब्रह्मपु० ५६।१२)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ऋग्वेद में जिसे भूत और भविष्य का अधिष्ठाता कहा है (पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्चभव्यं, १०।९०।२), वही यहाँ नर कहा गया है। उस पुरुष से विराज् का जन्म हुआ और यहाँ नर से 'आपः नाराः' की उत्पत्ति हुई। इसीलिये विराज् और आपः को हमने पर्याय कहा है। विराज् या आपः सृष्टि की तीसरी कोटि है, इसे ही वैदिक भाषा में परमेष्ठी कहा जाता है। महान् या सर्वव्यापक या बृहत् का जो भाव है वही परमेष्ठी का अर्थ है। अंग्रेजी पारिभाषिक शब्दावली में विराज्, महत् या आपः को प्राइमार्डियल मैटर, प्राइमिवल मदर प्रिंसिपल या यूनिवर्सल कहेंगे। यही महत् गीता के शब्दों में विश्व की योनि है—

मम योनिर्महद् ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्।
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत॥
सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः संभवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीज प्रदः पिता॥

(गीता, १४।३-४)

आपः संज्ञक मातृ-तत्त्व ऋतात्मा है। ऋत शक्ति के उस स्वरूप को कहते हैं जिसका अस्तित्व तो हो किन्तु जिसमें अभी किसी केन्द्र का निर्माण न हुआ हो, अर्थात् एक केन्द्र पर जिसकी अभिव्यक्ति न हुई हो। मातृ-तत्त्व में प्रजनन की शक्ति व्याप्त रहती है किन्तु किसी वस्तु के जन्म के लिये उसमें उसका बीज से गर्भित होना आवश्यक है। जो तथ्य मानव की प्रक्रिया में है वही सृष्टि में भी लागू है। महत्, आपः, नारा या विराज् से पूर्व जो स्वयंभू तत्त्व था वही प्रकृति का बीजप्रद पिता या उसे सृष्टि-प्रक्रिया के लिये गर्भित करनेवाला तत्त्व है। प्रारंभ में वह एकाकी था, वही सृष्टि की कामना से अपने ही शरीर में से जिस मातृ-तत्त्व या नारी-तत्त्व को उत्पन्न करता है वही आपः या प्रकृति है। वह स्वयंभू अपने शरीर के अर्धभाग से नारी बनता है, अतएव सृष्टि प्रक्रिया का वास्तविक प्रतीक अर्धनारीश्वर है। वह स्वयंभू आग्नेय तत्त्व है। महत् संज्ञक परमेष्ठी ऋत या सोम है। 'अग्नीषोमात्मकं जगत्' यही विश्व का तथ्य है। अग्नि पिता, सोम माता है। अग्नि नर, सोम नारी है। अग्नि वृषा, सोम योषा है। अग्नि रुद्र या शिव, सोम शक्ति है। इन परिभाषाओं का भारतीय साहित्य में अपरिमित विस्तार हुआ है।

(४) मनुस्मृति की सृष्टि-प्रक्रिया में जो चौथी कोटि है उसे हैम अण्ड या हिरण्यमय अण्ड से उत्पन्न सर्वलोक पितामह ब्रह्मा कहा गया है—

तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशु समप्रभम्।
तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः॥

(मनु० १।९)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यह हैम अण्ड या सोने का अण्डा उसी आपः तत्त्व की गर्भित अवस्था की संज्ञा है। व्यक्त भाव का नाम हिरण्य है। मातृ-कुक्षि में जहाँ कुछ नहीं था, केवल जन्म की निहित संभावना थी, वहीं पुरुष द्वारा गर्भ के आधान या बीज पड़ने से जो रूप परिवर्तन हुआ वही हिरण्याण्ड है। शुक्र, वीर्य या रेत की संज्ञा हिरण्य है। जहाँ योनि है वहाँ रेतोधान आवश्यक है। महत् रूपी योनि में बीज का आधान करने वाला रेतोधा तत्त्व या वीजप्रद पिता स्वयंभू ही है। माता-पिता के सम्मिलन के वाद जो गर्भित अवस्था होती है उसे ही हिरण्याण्ड कहा गया है। गर्भ की चरितार्थता यही है कि पिता स्वयं उसमें प्रविष्ट होता है और पुत्ररूप में जन्म लेता है। सत्यात्मा स्वयंभू ऋतरूपी परमेष्ठी को गर्भित करता है और ऋत सत्य के संयोग से पुनः सत्य का जन्म होता है। वह सत्य ही हिरण्यगर्भ, सूर्य, त्रयीविद्या, यज्ञात्मक विद्या या सत्यनारायण है। सूर्य से तात्पर्य आकाश में स्थूल आग्नेय पिंड से नहीं, किन्तु विश्व के प्रथम अभिव्यक्त होने वाले तैजस रूप से है जिससे सूर्य आदि समस्त पिण्डों का जन्म हुआ और हो रहा है। सृष्टि के अधिष्ठाता सत्यात्मक पुरुष को यदि किसी प्रतीक से बताना हो तो उसके लिये सूर्य ही सर्वोत्तम प्रतीक हो सकता है। गुणातीत पुरुष का विश्व में जो त्रिगुणात्मक रूप है उसे ही सूर्य कहा जाता है। अतएव वैदिक भाषा में कहा जाता था कि यह जो सूर्य है यह त्रयीविद्या ही तप रही है (सैषा त्रयीविद्या तपति)। ऋक्, यजु, साम यही त्रयीविद्या है। भूर्भुवः स्वः त्रयीविद्या के प्रतीक हैं [1]। सूर्य ही त्रिगुणात्मिका सृष्टि का प्रतीक है। त्रयीविद्या की समष्टि को वैदिक भाषा में सत्य कहा जाता है। जिसमें केन्द्र हो वही सत्य है। जहाँ केन्द्र है वहीं वृत्त अभिव्यक्त होता है। वृत्त के रूप में अभिव्यक्त केन्द्र ही वस्तु का स्वरूप है। ऋक्, यजु, साम के बिना वृत्त का पूरा स्वरूप या मूर्त रूप बन ही नहीं सकता। वृत्त का व्यास या विष्कम्भ ऋग्वेद है। वृत्त की परिधि साम है जिसे वैदिक भाषा में महिमा या तेजोमण्डल भी कहते हैं। केन्द्र का बहिर्मुखी विस्तार उसकी महिमा है। केन्द्र स्वयं यजुर्वेद या रस तत्त्व है जो व्यास और परिधि से निर्मित वृत्त या मण्डल में ओत-प्रोत रहता है। ऋग्वेद में जिसे 'एतावानस्य महिमा' कहा है वह केन्द्र का बहिर्मुखी विस्तार है। केन्द्र स्वयं पुरुष है। वह अपने विस्तार से कहीं अधिक महान्। केन्द्र में परिमाण का कोई स्पर्श नहीं। उसमें न चौड़ाई है, न लम्बाई और न मोटाई है। वह न अणु है न महत्, अथवा उसे अणोरणीयान् महतो महीयान्, अणु से अणु और महान् से महान् कहना अधिक उपयुक्त है। केन्द्र को 'यजु' इसलिये भी कहते हैं कि केन्द्र में स्थिति और गति इन दोनों का समन्वय है। केन्द्र में जो स्थिति भाव है उसका वैदिक संकेत 'जू' है और केन्द्र में जो गति भाव है उसका संकेत 'यत्' है। यत् और जू दोनों के मिलने से ही यज्जू बनता है। उसे ही सांकेतिक भाषा में 'यजु' कहते हैं। इसका वैज्ञानिक अभिप्राय यह है कि स्थिति के धरातल पर गति का

१—भूर्भुवः स्वरिति सा त्रयी विद्या (जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण २।९।७)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रादुर्भाव होता है। यदि स्थितिभाव न हो तो गति की कल्पना असंभव हो जाय। शक्ति का शांत रूप स्थिति है। उसी का क्रियाशील रूप गति है। स्थिति और गति के समन्वय की संज्ञा ही स्पन्दन है। इसे ही 'एति च प्रेति च' कहा जाता है। शक्ति केन्द्र से परिधि और परिधि से केन्द्र की ओर बराबर स्पन्दन करती है। स्पन्दन या गति के दो रूप हैं। एक केन्द्र से बाहर की ओर जिसे गति ही कहा जाता है और दूसरा परिधि से केन्द्र की ओर जिसे आगति कहते हैं। गति और आगति को ही वैदिक भाषा में प्राण-अपान कहा गया है। वैज्ञानिक शब्दों में गति को प्रसारण और आगति को समंचन कहते हैं। समंचन और प्रसारण की प्रक्रिया जहाँ अभिव्यक्त हो वहीं शक्ति या प्राण का रूप समझना चाहिए। शतपथ ब्राह्मण में इस वैज्ञानिक परिभाषा का स्पष्ट उल्लेख है—

प्राणो वै समञ्चन प्रसारणम् ।

(शत० ८।१।४।१०.)

स्थिति, गति और आगति इन तीनों की संज्ञा त्रयीविद्या है। स्थिति ब्रह्मा, गति इन्द्र या रुद्र और आगति विष्णु का रूप है। गर्भित हिरण्याण्ड से, या स्थिति के धरातल पर शक्ति के जागरण से, या स्पन्दन से जिस सृजनात्मक प्रक्रिया का जन्म होता है उसे ही सर्वलोक पितामह ब्रह्मा कहा गया है। ब्रह्मा उपबृंहणात्मक बल का उपलक्षण है। वह शिव और विष्णु के बिना अकेला कभी नहीं रहता। यहीं से पुराणों के महान् त्रिदेववाद का जन्म होता है। यही उसकी स्पष्ट व्याख्या समझनी चाहिए।

पुराणों में इस बात का स्फुट उल्लेख है कि एक ही ईश्वरी शक्ति तीन गुणों के रूप में प्रकट हो जाती है। भागवतों की शब्दावली में स्वयं विष्णु ही रजोगुण के रूप में ब्रह्मा बन जाते हैं। उन्हीं की सतोगुणी मूर्त्ति विष्णु है और वही तामसरूप में रुद्र कहलाते हैं—

सृष्टिस्थित्यन्तकरणीं ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम् ।[1]
स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः ॥

(विष्णु० १।२।६६)

१—एक वैष्णवी शक्ति ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीन नामों से विख्यात होती है। इस विषय में पुराणों का दृष्टिकोण स्पष्ट है—

जुषन् रजोगुणं तत्र स्वयं विश्वेश्वरो हरिः ।
ब्रह्मा भूत्वास्य जगतो विसृष्टौ संप्रवर्तते ॥
सत्वभृद् भगवान् विष्णुरप्रमेयपराक्रमः ।
तमोद्रेकी च कल्पान्ते रुद्ररूपी जनार्दनः ॥

(विष्णु० १।२।६२-६३)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और भी कहा है कि भगवान् नारायण ही लोकपिता ब्रह्मा कहलाते हैं; अथवा कालिदास के शब्दों में ब्रह्मा ही तीन गुणों के अनुसार त्रिमूर्त्ति रूप में प्रकट होते हैं।[१]

वैदिक हृदय विद्या या अक्षर-विद्या में जिसे स्थिति, गति आगति के प्रतीक ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र कहा जाता है वे ही पुराणों में त्रिदेव के रूप में वर्णित हुए। इन्द्र ही रुद्र या शिव हैं। हृदय-विद्या के अनुसार ये तीन प्रतीक इस प्रकार हैं—

१. हृ—आहरण करने वाला तत्त्व, अर्थात् परिधि से केन्द्र की ओर आने वाला शक्ति का रूप जिसे आगति तत्त्व या पालन कर्त्ता विष्णु कहते हैं।

२. द्—दो अवखण्डने का प्रतीक, केन्द्र से परिधि की ओर शक्ति का वहिर्गत होना या बिखरना, जिसे गति कहते हैं, जो इन्द्र या रुद्र का प्रतीक है।

३. य—यमयति, अर्थात् गति अगति को नियमित करने वाला प्रतिष्ठा तत्त्व जो केन्द्र में रहता है, यही स्थित्यात्मक ब्रह्मा है।

जहां भी हृदय या केन्द्र का विकास हुआ हो वहीं ये तीन प्राण देवता गति-स्थिति, आगति के रूप में अवश्य विद्यमान रहते हैं। इन्हे प्राणात्मक अक्षर देवता भी कहा जाता है। शक्ति के स्पन्दन के लिये ये तीनों अक्षर देवता अनिवार्यतः आवश्यक हैं। प्राण ही अक्षर या शक्ति का रूप है। प्राण का रूप स्पन्दन या संकोच-प्रसार है। वैदिक अक्षर-विद्या या हृदय-विद्या का यही स्वरूप है। इन तीनों में स्थिति-तत्त्व एक ओर एवं गति तत्त्व दूसरी ओर है। गति के अन्तर्गत आगति अन्तर्निहित है। गति-आगति रूपी इन्द्र और विष्णु इन दो देवों में सदा स्पर्धा या टक्कर होती रहती है। दोनों में से कोई नहीं हारता। इन्द्र और विष्णु के द्वन्द्व से, गति और आगति की स्पर्धा या संघर्ष से ही प्रत्येक वस्तु का स्वरूप निर्मित होता है—

उभा जिग्यथुर्न पराजयेथे न पराजिग्ये कतरश्चनैनोः।
इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वितदैरयेथाम्॥
(ऋग्वेद ६।६९।८)

१—नमस्त्रिमूर्त्तये तुभ्यं प्राक् सृष्टेः केवलात्मने।
गुणत्रयविभागाय पश्चाद् भेदमुपेयुषे॥
तिसृभिस्त्वमवस्थाभिर्महिमानमुदीरयन्।
प्रलयस्थितिसर्गाणामेकः कारणतां गतः॥
(कुमारसंभव, २।४—६)

नमो विश्वसृजे पूर्वं विश्वं तदनुबिभ्रते।
अथ विश्वस्य संहर्त्रे तुभ्यं त्रेधास्थितात्मने॥
(रघुवंश, १०।१६)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ऊपर हमने सृष्टि की जिस प्रक्रिया का वर्णन किया है उसमें निर्गुण और सगुण, अमूर्त्त और मूर्त्त, पर और अपर इन दोनों का समन्वय पाया जाता है।[1] जो अमूर्त्त और पर है उसे ही अरूप भी कहा गया है, एवं जो मूर्त्त और अपर है वही उस परम आत्मा नारायण विष्णु का विश्वस्वरूप है।[2] विष्णु के स्थूल रूप की व्याख्या विष्णु पुराण के लेखक ने अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में की है—यह जो विश्व में गोचर पदार्थ हैं यही विष्णु का स्थूल रूप है। हिरण्यगर्भ ब्रह्मा भगवान् वासुदेव, प्रजापति मरुद्गण, वसु, रुद्र, आदित्य, नक्षत्र, ग्रह, गन्धर्व, यक्ष दैत्य आदि देवयोनियां, मनुष्य, पशु, पर्वत, समुद्र, नदियां वृक्ष सम्पूर्ण भूत, उन भूतों के जितने कारण प्रधान से लेकर विशेष या पंचतन्मात्राओं तक हैं और जिसमें चेतन अचेतन दोनों सम्मिलित हैं, एकपाद्, द्विपाद्, बहुपाद् या बिना चरणों वाले सरीसृपादि जितने प्राणी हैं वे सब विष्णु के मूर्त्त रूप हैं। इसे ही 'इदं सर्वम्' विश्व या चराचर जगत् कहते हैं। तीन प्रकार की भावनाओं से इनकी रचना हुई। एक ब्रह्मभावना, दूसरी कर्मभावना और तीसरी उभयात्मिका भावना। इन्हें क्रमशः सत्व, तम और रज समझना चाहिए। परब्रह्म रूपी विष्णु जब अपनी शक्ति से संयुक्त होता है तब इन्हीं तीन भावों में अपने आपको प्रकट करता है (विष्णुपुराण ६।७।५५–६०)। इस प्रकार यह विदित होता है कि पुराणकारों को इस विषय में कोई सन्देह न था कि गुणातीत परब्रह्म पुरुष एक ओर है और दूसरी ओर उसके समस्त सगुण रूप हैं जिनमें सृष्टि के अधिष्ठाता विष्णु और उनसे उत्पन्न अन्य समस्त भूत-भौतिक सृष्टि सम्मिलित है। इस वर्णन की पहली पंक्ति यह है—

हिरण्यगर्भो भगवान् वासुदेवो प्रजापतिः।

ये तीनों पारिभाषिक शब्द निश्चित अर्थ में प्रयुक्त हैं। भगवान् वासुदेव सगुण सृष्टि के पहिले कारण हैं जिसे मनुस्मृति में स्वयंभू कहा गया है। उनके शरीर से जो महत् तत्त्व या आपः उत्पन्न होता है वही परमेष्ठी प्रजापति कहा जाता है जिसका संकेत यहाँ केवल प्रजापति से है। वासुदेव नर तत्त्व है, प्रजापति मातृ-तत्त्व है। उसी गर्भित प्रजापति या परमेष्ठी या नर तत्त्व से जिस व्यक्त स्वरूप का जन्म होता है वही हिरण्यगर्भ सूर्य है। हिरण्यगर्भ या सूर्य द्युलोक

१—स देवो भगवान् सर्वं व्याप्य नारायणो विभुः।
चतुर्धा संस्थितो ब्रह्मन् सगुणो निर्गुणस्तथा॥ (मार्क० ४।४४)

आश्रयश्चेतसो ब्रह्म द्विधा तच्च स्वभावतः।
भूप मूर्त्तममूर्त्तञ्च परञ्चापरमेव च। (विष्णु० ६।७।४७)

२—तच्च विष्णोः परं रूपं अरूपाख्यमनुत्तमम्।
विश्वस्वरूप वैरूप्यं लक्षणं परमात्मनः॥
(विष्णु० ६।७।५४)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और पृथिवी के सम्मिलित स्वरूप का प्रतीक है। द्यावा पृथिवी के अन्तराल में ही सम्पूर्ण विश्व की सृष्टि निहित है।

सृष्टि की ऊपर लिखी हुई चार कोटियों को विभिन्न दार्शनिक दृष्टिकोणों से अपनी अपनी शब्दावली में इस प्रकार स्वीकृत किया गया है—

ऋग्वेद	पर-अपर ब्रह्म	मनु	सांख्य	वेदांत	पंचरात्र
गुणातीत सहस्रशीर्षा पुरुष	परात्पर	तमोभूत अप्रतर्क्य अविज्ञात	निर्गुण पुरुष	ब्रह्म	वासुदेव (=शुक्ला मूर्ति अनिर्देश्या)
सगुण पुरुष (भूतभव्य)	पर (=अव्यय)	स्वयम्भू (=नर) नरसूनवः	पुरुष	ईश्वर	बलराम = शेष (तामसीमूर्ति)
विराज्	परावर (=अक्षर)	आपः, नारा :— उसी का गर्भितरूप	प्रकृति (गुणों की साम्यवस्था)	माया	प्रद्युम्न (सत्त्वमूर्ति प्रजापालनतत्परा)
पुरुष (=प्रजापति ब्रह्मा)	अवर (=क्षर, क्षरःसर्वाणि भूतानि, गीता)	हिरण्यांड, उससे ब्रह्मा सर्वलोक की सृष्टि या गोचरविश्व	विकृति त्रैगुण्य विषमा सृष्टि विशेष	विश्व संसार	अनिरुद्ध (राजसीमूर्ति) जल मध्ये शेते पन्नग तल्पगा

नर-नार-नारायण

ऊपर निर्दिष्ट सृष्टि के चतुर्पाद को सर्वात्मना स्वीकार करते हुए भागवतों ने उसे नई शब्दावली में ढालने का यत्न किया। नर, नार, नारायण ये तीन नाम मनु के श्लोकों में आए हैं जो सृष्टि की तीन कोटियों के सूचक हैं। इनमें से नर शब्द वैदिक वैश्वानर शब्द में प्रचलित हो चुका था। विश्व अर्थात् तीन नरों या देवों से उत्पन्न अग्नि वैश्वानर कहलाई। मूल नर अग्नि था। वही अग्नि, वायु, आदित्य वे तीन रूप धारण कर लेता है। पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यौ ये तीन लोक हैं। इनमें से प्रत्येक का संचालक प्राण उसका नर कहा जाता है। जहाँ लोक है वहां उसका लोकी पुरुष या अधिष्ठाता नर अवश्य है। पृथिवि का नर अग्नि, अन्तरिक्ष का वायु, और द्यौः का आदित्य (पुरुष के शरीर में जो प्राण-शक्ति या जीवनी शक्ति कार्य कर रही है वही वैश्वानर है—

अयमग्नि वैश्वानरो योऽयं अन्तः पुरुषे।

(शतपथ, १४।८।१।१०)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति तीनों की समष्टि वैश्वानर है। अव्यय, अक्षर, क्षर ये ही तीन पुरुष या नर हैं। तीनों का सम्मिलित रूप यह विश्व है। इस प्रकार पुरुष का पर्यायवाची नर शब्द वैदिक युग में प्रयुक्त होने लगा था। नाराः शब्द के स्थान में मंत्रों में आपः प्रयुक्त हुआ है। नार या आप् तत्त्व के गर्भ में निवास करने वाले देव प्राण या देवात्मा के लिये नारायण शब्द शतपथ ब्राह्मण में आया है और वहां उसके सम्बन्ध में पंचरात्र यज्ञ का भी उल्लेख हैं (श० १३।६।१।१)। ज्ञात होता है पांचरात्रिकों ने उसी नर-नार-नारायण सूत्र का विकास किया और पुरुष सूक्त में निर्दिष्ट सृष्टि की व्याख्या को नारायण तत्त्व के आधार पर अपनी शब्दावली में ढाल दिया। महाभारत शान्ति पर्व के अंतर्गत नारायणीय धर्म नामक एक विशिष्ट पर्व है (अ० ३२१-३४०)। उसमें भागवतों के दृष्टि कोण का और उनकी नई शब्दावली का विस्तार से विवेचन पाया जाता है। ऊपर ऋग्वेद और मनुस्मृति के अनुसार जिस सृष्टि विद्या का चार कोटियों में निरूपण किया गया है उसे ही भागवतों ने वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इस चतुर्व्यूह के रूप में प्रकट किया। मार्कण्डेय पुराण में भी उसे ही स्वीकार किया गया है। दोनों का सार इस प्रकार है—

१—वासुदेव मूर्ति—अजन्मा, नित्य, निष्कल, गुणातीत, मूर्ति की संज्ञा वासुदेव है। वह एकमेवा द्वितीयम् है और किसी भी प्रकार के निर्देश से बाहर है। ज्ञानी लोग उस निर्गुण स्वरूप को शुक्ल भी कहते हैं। तेज की सहस्रों ज्वालाओं से घिरी हुई वही मूर्ति योगियों के ध्यान की निष्ठा है। वह सत् और असत्, दूर और निकट दोनों ही द्वन्दों से परे है, अथवा उसे ही सदसदात्मिका और दूरस्थ और निकटस्थ भी कह सकते है। वासुदेव नामक वह स्वरूप निर्मम है, किसी के साथ उसका ममत्व भाव नहीं है। न उसका कोई रूप है और न वर्ण, और न किसी प्रकार के भाव से उसकी कल्पना ही की जा सकती है। 'वह है अवश्य' इतना ही, उसके विषय में कहा जा सकता है। शुद्ध सत्ता या प्रतिष्ठा ही उसका रूप है।[1]

२—दूसरी मूर्ति की संज्ञा शेष या संकर्षण है। उसका स्वरूप तामसी है।[2]

१—स देवो भगवान् सर्वं व्याप्य नारायणो विभुः ।
चतुर्धा संस्थितो ब्रह्मन् सगुणो निर्गुणस्तथा ॥
एका मूर्तिरनिर्देश्या शुक्लां पश्यन्ति तां बुधाः ।
ज्वालामालोपरुद्धाङ्गी निष्ठा सा योगिनां परा ॥
दूरस्था चान्तिकास्था च विज्ञेया सा गुणातिगा ।
वासुदेवाभिधानोऽसौ निर्ममत्वेन दृश्यते ॥
रूपवर्णादयस्तस्या न भावाः कल्पनामयाः ।
अस्त्येव सा सदा शुद्धा सुप्रतिष्ठैकरूपिणी ॥ (मार्क० ४।४४-५७)

२—द्वितीया पृथ्वीं मूर्ध्ना शेषाख्या धारयत्यधः ।
तामसी सा समाख्याता तिर्यक्त्वं समुपाश्रिता ॥ (४।४८)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उसी की संज्ञा जीव है।[1] पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश ये पंचभूत प्रथम मूर्ति सनातन परमात्मा वासुदेव की ही आत्माभिव्यक्ति हैं। इन पांचों के एकत्र संघात से जो शरीर बनता है उसे चलाने वाला जीव शेष या संकर्षण कहा जाता है। वस्तुतः वह भी उस अदृश्य गुणातीत मूर्ति से ही उत्पन्न होता है।

३—तीसरी मूर्ति की संज्ञा प्रद्युम्न है। वह सत्त्व गुण से प्रेरित होती है और प्रजाओं का पालन करती है।[2] सब भूतों में जो मन है वह उसीका रूप है। उसे ही सनत्कुमार भी कहा जाता है।[3]

४—चौथी मूर्ति रजोगुणी है और वही सृष्टि की रचना करती है। समुद्र के भीतर शेष की शय्या पर विश्राम करने वाली मूर्ति यही है जो नारायणात्मक ब्रह्मा का रूप धारण कर लेती है।[4] इसी के विषय में शान्ति पर्व में लिखा है कि मन रूपी प्रद्युम्न से जो सृष्टि का कर्त्ता, कार्य और कारण उत्पन्न होता है, और समस्त स्थावर जंगम जगत जिससे जन्म लेता है वही अनिरुद्ध है। उसे ही अहंकार कहते हैं।[5] स्थूल जगत् की जो अभिव्यक्ति है वही अनिरुद्ध है। ऊपर जिस क्रम का उल्लेख किया है उसे ही भागवतों की शब्दावली एवं दर्शन की शब्दावली में स्पष्टता के लिये पुनः महाभारत के अनुसार यों समझना चाहिए[6]—

१—पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम्।
ते समेता महात्मानः शरीरमिति संज्ञितम्॥
तदाविशति यो ब्रह्मन् न दृश्यो लघुविक्रमः।
उत्पन्न एव भवति शरीरं चेष्टयन् प्रभुः॥
न विना धातु संघातं शरीरं भवति क्वचित्।
न च जीवं विना ब्रह्मन् धातवश्चेष्टयन्त्युत।
स जीवः परिसंख्यातः शेषः संकर्षणः प्रभुः॥ (शा० प० १२६।३२–३५)

२—तृतीया कर्म कुरुते प्रजापालनतत्परः।
सत्वोद्रिक्ता तु सा ज्ञेया धर्मसंस्थानकारिणी॥ (४।४७)

३—तस्मात्सनत्कुमारत्वं यो लभेत स्वकर्मणा।
यस्मिंश्च सर्वभूतानि प्रलयं यान्ति संक्षये।
स मनः सर्वभूतानां प्रद्युम्नः परिपठ्यते॥ (शान्तिपर्व ३२६।३५–३६)

४—चतुर्थी जलमध्यस्था शेते पन्नगतल्पगा।
रजस्तस्या गुणः सर्गं सा करोति सदैव हि॥ (४।५०)

५—तस्मात्प्रसूतो यः कर्ता कार्यं कारणमेव च।
यस्मात्सर्वं प्रभवति जगत्स्थावरजंगमम्॥
सोऽनिरुद्धः स ईशानो व्यक्तिः सा सर्वकर्मसु। (शान्तिपर्व ३२६।३७)

६—यो वासुदेवो भगवान् क्षेत्रज्ञो निर्गुणात्मकः।
ज्ञेयः स एव भगवाञ्जीवः संकर्षणः प्रभुः॥
संकर्षणाच्च प्रद्युम्नो मनो भूतः स उच्यते।
प्रद्युम्नाद्योऽनिरुद्धस्तु सोऽहंकारो महेश्वरः॥ शान्ति, ३२६।३८-३९)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

१—निर्गुण क्षेत्रज्ञ आत्मा	भगवान् वासुदेव
२—जीव	संकर्षण
३—मन	प्रद्युम्न
४—अहंकार	अनिरुद्ध

मार्कण्डेय पुराण के अतिरिक्त विष्णु, ब्रह्माण्ड, ब्रह्म, विष्णुधर्मोत्तर, वायु, मत्स्य आदि पुराणों में भी इसी से मिलते-जुलते रूप में सृष्टि-विद्या विषयक विवेचन का सन्निवेश कर लिया गया।

गुप्त युग में नारायणीय-धर्म का जो स्वरूप निष्पन्न हो रहा था उसमें कई स्रोतों से आई हुई धाराओं के जल एक में मिलकर अतिशय वेगवाली महाधारा का निर्माण हुआ। इन सबका सम्मिलित नाम भागवत धर्म प्रसिद्ध हुआ किन्तु यदि उस महान् आन्दोलन के बटे हुए तारों को अलग अलग करके देखा जाय तो भारतीय धार्मिक इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण अध्याय सामने आ जाता है। बाण ने हर्षचरित में दिवाकरमित्र के आश्रम का वर्णन करते हुए भागवत, पांचरात्र और वैखानस इनका अलग अलग उल्लेख किया है। तूषम से प्राप्त गुप्तकालीन एक लेख में सात्वत सम्प्रदाय का उल्लेख आया है।[1] शान्ति पर्व से ज्ञात होता है कि प्राचीन वेद और उपनिषदों की जो धारा थी वह नर-नारायण के प्रतीक में अभिव्यक्त हुई। जिसे पांचरात्रिक नाम से अलग कहा है वह वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध की प्राचीन मान्यता पर आश्रित थी। पाणिनि ने वासुदेव और अर्जुन की भक्ति पूजा का जो उल्लेख अपने एक सूत्र में किया है (वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन्, ४।३।९८) वह मान्यता प्राचीन नर-नारायण सम्प्रदाय के साथ ही मिल गई और वासुदेव नारायण का एवं अर्जुन नरका अवतार माने जाने लगे। नर-नार-नारायण के प्राचीन सूत्र में जिसका मनुस्मृति में उल्लेख हुआ है, नर स्वयंभू का वाचक था और नारायण का भी पूर्वरूप होने से उसका महत्त्व अधिक था। किन्तु अर्जुन के साथ नर का भाव जब मिल गया तो नर-नारायण के आपेक्षिक महत्त्व में परिवर्तन हुआ। वैसे उद्योग पर्व में एक सत्त्व या मूल तत्त्व को नारायण और नर के रूप में द्विधा विभक्त कहा है—

नारायणो नरश्चैव सत्त्वमेकं द्विधा कृतम्।

(उद्योग०, ४८।२०)

नर-नारायण के वर्णन के प्रसंग में, अथवा चतुर्व्यूहात्मक पांचरात्रिक धर्म के अन्तर्गत, पुराणों में एक वर्णन और जुड़ा हुआ प्रायः मिलता है। वह है विष्णु का वराह और नृसिंह के रूप में अवतार लेना। मार्कण्डेय पुराण के इस प्रकरण

१—देवदत्त रामकृष्ण भण्डारकर, क्या गुप्त युग में कोई वैष्णव सम्प्रदाय विद्यमान था। (वाज देयर एनी वैष्णव सैक्ट् इन एक्जिसटेन्स इन दी गुप्त पीरियड), इंडियन कल्चर, बरुआ वैल्यूम, पृष्ठ ४-५।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में भी वराह रूपधारी विष्णु के समुद्र से पृथिवी के उद्धार करने का संक्षिप्त उल्लेख है। हिरण्यकशिपु के वध के लिये नृसिंह-रूप का भी उल्लेख आया है। उसी के साथ विष्णु के वामनादि अवतारों के रूप में जन्म लेने का संकेत है और कहा गया है कि इस समय माथुर अवतार अर्थात् भगवान् वासुदेव कृष्ण के अवतारकाल में हमलोग रह रहे हैं।[1] दार्शनिक दृष्टि से इन विचारों का वर्गीकरण इस प्रकार प्राचीन सात्वत संहिता में किया गया था—जो सबसे सूक्ष्म परब्रह्म का स्वरूप है उसकी संज्ञा वासुदेव है। उसे भगवान् कहते हैं क्योंकि उसमें ऐश्वर्य, ज्ञान, वैराग्य, यश, वीर्य, श्री, इन भगसंज्ञक गुणों का पूर्ण विकास पाया जाता है। इसकी दूसरी कोटि व्यूह कहलाती है जिसमें वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इन चार प्रारंभिक तत्त्वों की अभिव्यक्ति होती है। तीसरी कोटि विभव या राम, कृष्ण, नृसिंह, वराह, वामनादि रूपों में भगवान् के अवतारों की है। विभवों की उपासना द्वारा व्यक्ति व्यूह मूर्तियों का साक्षात्कार करता है और व्यूह से ऊपर उठकर परम तत्त्व ब्रह्मस्वरूप भगवान् वासुदेव को प्राप्त करता है। यह भी सृष्टि प्रक्रिया की ही विशेष कोटियाँ हैं। विभव के रूप में नाना व्यक्तियों का ग्रहण किया जाता है। विभव या पृथक् पृथक् आविर्भाव जहाँ समष्टि में एकीभूत होते हैं वह व्यूहात्मक आविर्भाव है। इसे परमात्मा, जीव, मन और अहंकार के रूप में चतुर्धा माना गया है। उन्हीं की संज्ञाएँ क्रमशः वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध हैं, जैसा पहले व्याख्या में कहा जा चुका है। राम, कृष्ण, वामन, वाराह आदि अवतार कहने के लिये परिमित हैं, वस्तुतः अवतारों की संख्या अनन्त है। अवतार या विभव को ही विभूति कहा गया। गीता के अनुसार भगवान् की दिव्य विभूतियों का कोई अन्त नहीं है। सृष्टि के आरम्भ से अनन्त देश और काल में दुर्धर्ष चैतन्य तत्त्व के अभिव्यक्त होने की क्या कोई सीमा बाँधी जा सकती है? सृष्टि या अभिव्यक्ति उसके ज्ञान और बल की स्वाभाविकी क्रिया है। मनुष्यों के विभिन्न समुदाय अपनी-अपनी रीति से भगवान् के छोटे बड़े विभवों का वर्णन करते हैं। वस्तुतः तृण से ब्रह्म पर्यन्त सब उसी का विभव (एकं वा इदं विबभूव सर्वम्, ऋग्वेद, ८।५८।२) और उसी की महिमा है (एतावानस्य महिमा, ऋग्वेद १०।९०।३)। राम कृष्ण आदि की विशेष गणना जिस हेतु से ऊपर उभर आती है वह सामाजिक कारणों का स्वाभाविक मन्थन है जिसे गीता में—'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति

१—भूत्वा पुरा वराहेण तुण्डेनापोनिरस्य च।
एकदांष्ट्रोत्खाता नलिनीव वसुन्धरा॥
कृत्वा नृसिंहरूपं च हिरण्यकशिपुर्हतः।
विप्रचित्ति मुखाश्चान्ये दानवा विनिपातिता॥
वामनादींस्तथैवान्यान्न संख्यातुमिहोत्सहे।
अवतारांश्चास्येह माथुरः साम्प्रतं त्वयम्॥
(४।५४-५६)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भारत' इत्यादि श्लोकों में कहा है। भागवतों का वह दृष्टिकोण सभी पुराणों को मान्य हुआ और अनेक स्थलों में या तो उन्हीं शब्दों को या उनसे मिलते जुलते भावों को दोहराया गया है, जैसा यहाँ भी अवतार वर्णन की भूमिका के रूप में कहा गया है—'भगवान् की जिस सात्त्विकी मूर्ति का काम प्रजा का पालन करना है उसका यह भी कर्तव्य है कि पृथिवी पर धर्म की नियत व्यवस्था करे। धर्म का संतुलन बिगाड़नेवाले आसुरी स्वभाववाले व्यक्तियों का दमन करे और धर्म की रक्षा करनेवाले व्यक्तियों का पक्ष ले जिनमें स्वर्ग के देवता और पृथिवी के सन्त दोनों की गणना है। हे जैमिनि, जब-जब धर्म की घटती और अधर्म की बढ़ती होती है वह भगवान् अपनी आत्मा या तात्त्विक अव्यक्त रूप को व्यक्त मूर्त रूप में उत्पन्न करता है।'[1]

अवतारों के संबंध में यह बात जानने योग्य है कि उनके कुछ हल्के से उल्लेख प्राचीन वैदिक साहित्य में भी पाए जाते हैं किन्तु उनका व्यवस्थित वर्गीकरण और पल्लवित उपाख्यानों द्वारा उनकी सजावट यह कार्य भागवत धर्म के अन्तर्गत ही किया गया। उदाहरण के लिये त्रिविक्रम, विष्णु और वामन की कल्पना ऋग्वेद में ही पाई जाती है—'इदं विष्णु विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्' मंत्र में विष्णु के तीन चरणों का उल्लेख है। दुर्धर्ष गोपा विष्णु ने तीन चरण न्यास के द्वारा द्युलोक और पृथिवी के बीच में सब धर्मों को धारण किया (ऋग्वेद, १।२२।१८)। वहां विष्णु को बृहच्छरीर और इन्द्र का सदा साथ रहने वाला सखा कहा है (इन्द्रस्य युज्यः सखा, ऋ० १।२२)।

किन्तु भारतीय विचारों के बीज यहां की उर्वर मानस भूमि में अंकुरित होकर बढ़ते फूलते फलते हुए महाविस्तार प्राप्त कर लेते हैं। यही स्थिति पुराणों के उपाख्यानों की है। जब हम उनमें से कुछ के मूल बीज का स्वरूप वैदिक मंत्रों में देखते हैं और उसकी तुलना पुराणों में पाए जाने वाले रूप से करते हैं तो 'इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्' इस आदेशात्मक वाक्य की पूरी व्यंजना हमारी समझ में आ जाती है। बाद के साहित्यकारों के लिये यह विधिवाक्य आदेश ही बन गया था; जैसा कालिदास ने लिखा है—श्रुतियों के मर्म को कहने के लिये ही पुराणादि स्मृतियां प्रवृत्त हुईं, अथवा जैसा माघ ने कहा है—

१—या तृतीया हरेर्मूर्तिः प्रजापालनतत्परा।
सा तु धर्मव्यवस्थानं करोति नियतं भुवि॥
प्रोद्धतानसुरान् हन्ति धर्मविच्छित्तिकारिणः।
पाति देवान् सतश्चान्यान् धर्मरक्षापरायणान्॥
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति जैमिने।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजत्यसौ॥
(४।५१-५३)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वेदों के अर्थों को ही मनीषी लेखकों ने स्मृतियों में उँड़ेल दिया। फिर साहि की उन अनेक धाराओं से लोक मानस को सींचते हुए उन सबका अन्तिम श्रुतियों पर ही था। एक प्रकार से यही भारतीय वाङ्मय का अखंड नियाम सूत्र बन गया, जिसकी रसात्मक प्रेरणा से अष्टादश पुराण, अनेक उपपुरा दो सौ से अधिक पंचरात्र आगम, अनेक शैव पाशुपत आगम, नाना तंत्र-ग्रं निबन्ध, माहात्म्य, कथा-वार्ता आदि का लगभग दो सहस्र वर्षों तक निरन्तर निर्मा होता रहा। जैसे आकाश में स्थित एक भास्वर सूर्य का प्रतिबिम्ब अनेक मणिदर्प में पड़ता है जिनकी संख्या और विस्तार की कोई सीमा देश और काल में निर्धारि नहीं की जा सकती, ऐसे ही भारतीय वाङ्मय के अनेकानेक कोष्ठों में एक मानस-मध्यमणि का दीप-प्रकाश फैल रहा है, और वह तेज सनातन, व्यक्ताव्यक्त निर्गुण-सगुण स्वरूप, अखण्ड दुर्धर्ष तत्त्व परमात्मा का ही है। उसी की महिम नाना पुराण आदि के रूप में समुदित शतसाहस्री संहिताओं में पाई जाती है यह उल्लेखनीय है कि पुराणों में जिस परमात्म तत्त्व का व्यापक विस्तार मिलता उसमें भागवत धर्म का विशेष हाथ था। साहित्य की शक्ति को पहचान क उन्होंने उसका भरपूर उपयोग इस उद्देश्य से किया कि प्राचीन सांस्कृतिक परम्परा की रक्षा भी बनी रहे, नए युगधर्मों का स्वागत भी किया जा सके और व्यक्ति समाज, राष्ट्र के निर्माण के लिये सक्षम जीवन-पद्धति की रचना के उद्देश्य से ध और कर्म को लोक धरातल पर भी लाया जा सके। अपने मन की उदारता से इ कार्य में उन्होंने सांख्ययोग, वेदान्त, शैव, वैष्णव, शाक्त सौर सभी के दृष्टिकोणों क सम्मान किया; यहां तक कि जैन और बौद्धों के भी जो ग्राह्य तत्त्व थे उन्हे भी चुनने और लेने से वे नहीं ठिठके। जैसे दुर्धर्ष नदी वेग को रोकना दुष्क है ऐसे ही भागवती संस्कृति का यह वेग देश भर में फैल गया। भारत की राष्ट्री संस्कृति का जो सहिष्णुतामूलक प्रीतिसंपन्न समन्वयात्मक दृष्टिकोण है व भागवत धर्म के प्रचार का साक्षात् पुष्प और फल है।

जैमिनि ने अपनी जिज्ञासा में सर्वप्रथम जो प्रश्न पूछा था वह उस युग क प्रतिनिधि प्रश्न था। अव्यक्त, परमात्म तत्त्व कैसे व्यक्त भाव में आता है नारायण विष्णु कैसे मानुषी धरातल पर अवतीर्ण होते हैं? इसका समाधान धर्मपक्षियों ने संक्षेप से किन्तु निश्चित शब्दों में किया। आगे चलकर अल के उपाख्यान का उपसंहार करते हुए पुनः इसका सार कहा है – 'चराचर के गुरु महान् आत्मा, अनन्त भगवान् विष्णु के ही नाना व्यक्त रूपों का पुराणों में वर्णन किया जाता है। वही अनन्त, अप्रमेय भगवान, जो सहस्र बाहु है मानवी धरातल पर चतुर्भुजी रूप में व्यक्त होता है। इसके परम रूप का जो मानव ध्यान करता है वह संसार की उलझनों से पार होकर सुखी बनता है विश्व की रचना, स्थिति, और पालन उसी अनादि अनन्त शक्ति के अधीन है अधर्म के विनाश और धर्म के आचरण के हेतु उसकी लीलाएं हैं। मानव के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लिये इतना आश्वासन दिया है कि भक्ति द्वारा मैं सुलभ और सुगमता से प्राप्त हूँ। फिर मनुष्य को उसका आश्रय क्यों नहीं लेना चाहिए ?[1]

ऊपर के उल्लेख में यह ध्यान रखने योग्य है कि सहस्रभुजी और चतुर्भुजी दोनों रूप लोक में तथ्यात्मक नहीं हैं, दोनों प्रतीकात्मक हैं। वैदिक परिभाषा में अनन्त निर्गुण तत्त्व सहस्र और सान्त, सगुण शत् कहा जाता है उसे ही नए प्रतीकों में सहस्रधा विभक्त या सहस्र बाहु और चतुर्भुज कहा गया है। ऊपर चतुर्धा मूर्ति की विस्तृत व्याख्या की गई है। शान्ति पर्व में जिसे एका मूर्तिरियं पूर्वं जाता भूयश्चतुर्विधा—कहा है उसी के विविध प्रतीकों का उल्लेख कालिदास ने इस प्रकार किया है—

चतुर्वर्गफलं ज्ञानं कालावस्थाश्चतुर्युगाः ।
चतुर्वर्णमयो लोकस्त्वत्तः सर्वं चतुर्मुखात् ॥

चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष), चतुर्युग (कृत, त्रेता, द्वापर, कलि), चतुर्वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) इस प्रकार अधिदैव और अधिभूत के धरातल पर उसी चतुर्व्यूहात्मक परमात्म तत्त्व की अभिव्यक्ति हो रही है। धर्म और दर्शन के इन प्रतीकों की भाषा उस युग में सन्देह से परे थी। इन्हें ही चतुर्मुखी मूर्तियों में ढालकर लोक में अर्चा का नया प्रकार प्रचलित हुआ। विष्णु, शिव, ब्रह्मा तीनों की ही चतुर्मुखी मूर्तियाँ पाई गई हैं। विष्णु के मुखों के नाम नृसिंह, वराह, कपिल और वैकुंठ; शिव के सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष और ईशान; एवं ब्रह्मा के चार मुख चार वेद ही थे। ये नाम और इनके हेतु पुराणों में विजड़ित नहीं हुए थे। उनके वर्णनों में विविध कल्पना का पर्याप्त लोच पाया जाता है।

जैमिनि का दूसरा प्रश्न—द्रौपदी के पाँच पति

जैमिनि का दूसरा संशय यह था कि अकेली द्रौपदी पाँच पाण्डवों की पत्नी कैसे हुई ? इसके उत्तर में धर्मपक्षियों ने एक उपाख्यान सुनाया जो महाभारत आदि पर्व के पंचेन्द्र उपाख्यान से मिलता है। यहाँ कहा है कि त्वष्टा के पुत्र

---

1 — विष्णोश्चराचरगुरोरनन्तस्य महात्मनः ॥
प्रादुर्भावाः पुराणेषु कथ्यन्ते शार्ङ्गधन्विनः ।
अनन्तस्याप्रमेयस्य शंखचक्रगदाभृतः ॥
एतस्य परमं रूपं यश्चिन्तयन्ति मानवः ।
स सुखी स च संसारात् समुत्तीर्णोऽचिराद्भवेत् ॥
सदैव वैष्णवानाञ्च भक्त्याहं सुलभोऽस्मि भोः ।
इत्येवं यस्य वै वाचस्तं कथं नाश्रयेज्जनः ॥
अधर्मस्य विनाशाय धर्माचारार्थमेव च ।
अनादिनिधनो देवः करोति स्थितिपालनम् ॥ (१९।३२-३६)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

त्रिशिरा विश्वरूप का जब इन्द्र ने वध कर डाला तो इन्द्र को ब्रह्महत्या लगी और इन्द्र के तेज की हानि हो गई, तथा वह ऐन्द्र तेज धर्म में प्रविष्ट हो गया। त्वष्टा भी चुप नहीं बैठे, उन्होंने अपनी जटा का एक बाल नोचकर उससे वृत्त नाम का नया असुर उत्पन्न किया। अग्नि में आहुति देते हुए उन्होंने इच्छा की कि वह पुत्र इन्द्रशत्रु अर्थात् इन्द्र का मारने वाला हो, पर उच्चारण में स्वर के दोष से उनकी यह इच्छा पूरी न हो सकी, और इन्द्र जिसका शत्रु हो ऐसा परिणाम अन्त में हो गया। फिर भी उस असुर को प्रबल देखकर इन्द्र ने सप्तर्षियों को उसके पास संधि के लिये भेजा। वृत्र ने बात मान ली, पर जो शर्तनामा तय हुआ, इन्द्र ने उसे तोड़कर (समयस्थितिमुल्लंघ्य, ५।१०) उसे मार डाला। इससे इन्द्र का बल फिर घट गया और वह वायु के पास चला गया। इसीलिये सर्वव्यापी वायु बल का अधिदेवता है। फिर जब इन्द्र ने गौतम का रूप रखकर अहिल्या का धर्षण किया तब इन्द्र का रूपलावण्य भी उसे छोड़कर अश्विनीकुमारों के पास चला गया। इन्द्र को तेज, बल और रूप से हीन देखकर उसे जीतने की इच्छा से असुर घर-घर में उत्पन्न हो गए। तब पृथिवी ने पाप के भार से पीड़ित हो मेरु पर्वत पर देवों के पास गुहार की और कहा—'आप लोगों ने जिन बली असुरों का वध किया वे सब मनुष्य रूप में राजकुलों में उत्पन्न हो गए हैं। उनकी शान्ति का उपाय कीजिए (५।१८—१९)। यह उपाख्यान उस युग का है जब पाण्डवों को धर्म और कौरवोंको अधर्म या आसुरी शक्ति का प्रतीक मान लिया गया था। गुप्तयुग में जो दुष्ट विक्रान्त राजा थे जिनका उल्लेख गुप्त सम्राटों के शिलालेखों में आता है उन्हें ही यहाँ असुरों का प्रतीक कहा है। देव और असुर ज्योति और तम, अमृत और मृत्यु, सत्य और अनृत के वैदिक प्रतीक थे उन्हें ही नए युग में धर्म और अधर्म का प्रतीक कहा गया। मार्कण्डेय पुराण में आसुरी स्वभाव या राक्षसपन की यह नई व्याख्या एक राक्षस के मुख से ही स्पष्ट कहलायी गई है—नर-भक्षण करने के कारण हम राक्षस नहीं, हम मनुष्य के सुकृत और पुण्य को खा लेते हैं, यही हमारा राक्षसपना है। पुरुषों और स्त्रियों का जो स्वभाव या चरित्र है उसको लुप्त कर देना ही हमारा राक्षसपन है। जो हमारा अपमान करता है उसके अच्छे स्वभाव को और जो सम्मान करता है उसके बुरे स्वभाव को हम खा लेते हैं। हम जन्तु की देह का भक्षण नहीं करते। हम जिसके क्षमा गुण को हर लेते हैं वह क्रोध से स्वयं असुर बन जाता है और जिसके दुष्ट गुणों को हर लेते हैं वही गुणवान् बन जाता है।[1]

१—न वयं मानुषाहारा अन्ये ते नृप राक्षसाः।
सुकृतस्य फलं यत्तु तदश्नीमो वयं नृप ! ॥
स्वभावश्च मनुष्याणां योषिताञ्च विमानिताः।
मानिताश्च समश्नीमो न वयं जन्तु खादकाः॥
यदस्माभिर्नृणां क्षान्तिर्भुक्ता क्रुध्यन्ति ते नराः।
भुक्ते दुष्टे स्वभावे च गुणवन्तो भवन्ति च॥ (७०।१६—१८)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पृथिवी का वचन सुनकर देवों ने प्रजाओं के उपकार और भूमि के भारहरण के लिये पृथिवी पर अवतार लिया। इन्द्र का जो तेज धर्म में मिल गया था वह युधिष्ठिर के रूप में कुन्ती में उत्पन्न हुआ; जो बल वायु में गया था उससे भीम का जन्म हुआ; जो आधा बल स्वयं इन्द्र के पास रह गया, उससे अर्जुन का जन्म हुआ; एवं इद्रका जो रूप अश्विनिकुमारों के पास चला गया था उससे माद्री में नकुल सहदेव का जन्म हुआ। इस प्रकार एक ही भगवान् इन्द्र ने पांच इन्द्रों के रूप में जन्म लिया। इन्द्र की ही पत्नी इन्द्राणी यज्ञीय अग्नि से महाभागा द्रौपदी के रूप में उत्पन्न हुई। अतएव द्रौपदी को एक इन्द्र की ही पत्नी मानना चाहिए और किसी की नहीं।

द्रौपदी के पांच पतियों के प्रश्न को लेकर स्वयं महाभारत में भी काफी उधेड़ बुन की गई है। वहाँ राजा द्रुपद अपनी पुत्री के विषय में चिन्तित हैं कि वह किसकी पत्नी बनेगी। युधिष्ठिर ने कहा—'यद्यपि अर्जुन ने इसे जीता है पर यह रत्न है और हमारा नियम है कि सबलोग रत्न का भोग करें।' द्रुपद ने फिर अपनी अधीरता प्रकट की—'एक पुरुष की बहुत सी स्त्रियां तो विहित हैं, पर एक पत्नी के लिये बहुत से पुरुषों का विधान कभी नहीं सुना। तुम धर्मात्मा होकर लोक और धर्म विरुद्ध क्यों करते हो?' उत्तर में युधिष्ठिर ने यही कहा—'हे महाराज! धर्म सूक्ष्म है, इसकी ठीक पहचान हमें नहीं। पहले लोगों ने जो मार्ग पकड़ा उसी पर हम भी चलते हैं। मैं झूठ नहीं कहता और न अधर्म में मेरी रुचि है। मां ने ऐसा ही कहा है और यही मेरे मन में है (आदि पर्व १८७।२१-२९)।' द्रुपद का इससे भी मन नहीं भरा और वे युधिष्ठिर से यह कह कर चले गए कि तुम, कुन्ती और मेरा पुत्र धृष्टद्युम्न आपस में तय करके जो कहोगे वैसा कल करूँगा।

इस जटिल प्रश्न के समाधान के लिये व्यास, द्रुपद, धृष्टद्युम्न, युधिष्ठिर और कुन्ती की पंचायत बैठती है। व्यास ने सरपंच की हैसियत से कहा—'यह लोक और वेद दोनों के विरुद्ध है। इस विषय में जिसका जो मत हो वह उसे कहे।' स्वभावतः सबसे पहले द्रुपद ही बोले—'मेरा मत है कि यह अधर्म है, लोक और वेद दोनों के प्रतिकूल है, बहुत पतियों के लिये एक पत्नी कभी नहीं होती। पूर्वजों ने कभी इस तरह के धर्म का आचरण नहीं किया। इसलिये मैं ऐसा न होने दूंगा।' इसी तार को पकड़ते हुए धृष्टद्युम्न ने कहा—'यह सदाचार नहीं कि छोटे भाई की पत्नी बड़े की भी पत्नी बने, जिस सूक्ष्म धर्म की बात आप कहते हैं उसे हम नहीं समझते।' यों दो ओर से चांपे जाने पर युधिष्ठिर को कोई नई बात न फुरी तो उन्होंने कहा'—पुराण की कथा में सुनते हैं कि जटिला गौतमी ने सप्त ऋषियों के साथ निवास किया। बड़ों का कहना ही धर्म है और मां से बढ़ कर गुरु कौन है? वह कह ही चुकी है कि भिक्षा की भांति इसे बांटकर भोगो। मैं तो इसे ही धर्म मानता हूँ।' कुन्ती के लिये अलग रास्ता न था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वह बोली—'जैसा युधिष्ठिर कहते हैं, वही ठीक है। मैं झूठ से बहुत डरती झूठ से मुझे बचाओ।'

इस प्रकार बात की उलझन देखकर व्यास जी चतुर पंच की भांति ताड़ कि एक पक्ष में निर्णय देने से बात बढ़ेगी, अतएव अकेले में द्रुपद को ही समझ ठीक होगा। उन्होंने कुन्ती की ओर झुकते हुए कहा—'भद्रे, तुम अनृ अवश्य छूटोगी, पर मैं इस सनातन धर्म को सबके सामने नहीं कह सकता। से अकेले में कहूँगा।' यो कह वे द्रुपद को भीतर राजमहल में ले गए और उन्होंने एक पंचेन्द्राख्यान इस प्रकार सुनाया—"एक बार नैमिषारण्य में यज्ञ कर रहे थे। उसी में वैवस्वत यम ने भी दीक्षा ली थी। उस समय प्रजाओं में से किसी को भी मारना बंद कर दिया। इससे मनुष्य बहुत बढ़ इन्द्र आदि देवताओं ने जाकर ब्रह्मा से कहा—'हमें मनुष्यों से डर उत्पन्न हो है, आप बचाइए।' ब्रह्मा ने कहा—'मनुष्यों से कैसा डर ? वे मरते हैं, तुम हो।' देवों ने कहा—'मरनेवाले अमर हो गए। हममें उनमें भेद नहीं रह गया ब्रह्मा ने कहा—'इस समय यम अपना काम बंद करके यज्ञ में बैठे हैं। जैसे वे उठेंगे इनका अन्तकाल आ जायगा।' ब्रह्मा की बात सुनकर देवता वहीं में पहुँचे। वहाँ उन्होंने गंगा में एक सोने का फूल देखा। उसे देखकर वे वि हुए। इन्द्र उसका कारण ढूँढ़ने लगे तो उन्होंने एक स्त्री को देखा जो गंगा जल भरते हुए रो रही थी उसी के आँसुओं से वह कमल बना था। यह आ देखकर इन्द्र ने उसका परिचय पूछा। स्त्री ने कहा—'तुम मेरे पीछे आओ मेरे रोने का कारण ज्ञात होगा।' इन्द्र उसके पीछे-पीछे गए तो उन्होंने हिमा के शिखर पर युवती के साथ बैठे हुए और पासा खेलते एक तरुण को दे इन्द्र ने क्रुद्ध होकर कहा—'मैं देवराज हूँ। ये भुवन मेरे वश में है।' इन्द्र कुपित देखकर उस युवक ने हँसकर उसकी ओर देखा। इन्द्र उससे विजड़ित गए। जब वह खेल चुका तो उसने रोती हुई स्त्री से कहा—'इसे निकट में मेरा स्थान है वहाँ ले जाओ। फिर यह अभिमान न करे।' उस स्त्री के मात्र से इन्द्र शिथिल अंगों से पृथिवी पर गिर पड़े। तब उग्रतेज उस पुरु इन्द्र से कहा—'तुम बड़े बली हो। सामने के शिखर को हटाकर पर्वत के मध्य में जाओ। वहाँ तुम अपने समान चार व्यक्ति और देखोगे।' ऐसा ही हु अपने समान उन चारों को देखकर इन्द्र दुखी हुए कि कहीं मैं भी इन्हीं के स इस पहाड़ की खोह में बंद न हो जाऊँ। तब गिरीशदेव भगवान् शिव ने क्रुद्ध हो इन्द्र से कहा—'तुम भी इस गुफा में जाओ क्योंकि तुमने मूर्खतावश मेरी अवहे की है।' यह सुनकर इन्द्र कांपने लगे और उन्होंने उग्र पुरुष से कहा—'भग आज आप मुझे छोड़ दें।' उग्रधन्वा शिवने हँसकर कहा—'तुम्हारे यहाँ से नहीं बच सकते। तुम इसी गुफा में इनके साथ रहो। तुम सब छुटकारा तब होगा जब मानुषी योनि में जन्म लोगे। वहां अनेक पराक्रम फिर इन्द्रलोक में लौटोगे।' यह सुनकर पहले के चार इन्द्रों ने कहा—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देवलोक से मनुष्य लोक में जहां हमारे लिये मोक्ष है जन्म लेंगे, किन्तु धर्म, वायु, इन्द्र और अश्विनी कुमार ये मातृगर्भ में हमारा आधान करें।' इन्द्र ने अपने वीर्य से उनके जैसे पांचवें व्यक्ति को पुत्र रूप में उत्पन्न करना स्वीकार कर लिया। शिवने उन सबकी इच्छा स्वीकार की और उस सुन्दरी स्त्री को भी मनुष्य लोक में जन्म लेने को कहा। फिर शिव उन सबको साथ लेकर नारायण के पास गए। नारायण ने भी वह विधान स्वीकार किया और अपना एक काला और एक शुक्ल केश उखाड़कर फेंक दिया। एक से रोहिणी में बलदेव और दूसरे से देवकी में कृष्ण उत्पन्न हुए। उस पर्वत की गुफा में जो मुंदे हुए इन्द्र थे वे ही पांच पाण्डव हुए हैं। यह द्रौपदी लक्ष्मी का अवतार है। उसके लिये इनकी पत्नी होना पहले से नियत है। हे द्रुपद, मैं तुम्हें दिव्य चक्षु देता हूं। इन पाण्डवों के पूर्व रूप को तुम अपने नेत्रों से स्वयं देख लो।' ऐसा होने पर द्रुपद ने वह महान् आश्चर्य स्वयं देखा और व्यास जी के पैर पकड़कर कहा—'हे महर्षि, जो दैवका विधान है उसे नहीं टाला जा सकता। भाग्य की लगाई गई गाँठ कौन खोल सकता है? यहां अपने किए कुछ नहीं होता'।[१] पाठक देखेंगे कि महाभारत और मार्कण्डेय पुराण के पंचेन्द्र उपाख्यान भिन्न भिन्न हैं। महाभारत की कहानी ऊँचे धरातल पर और भारी भरकम है। उसका वातावरण हिमालय प्रदेश की लोक वार्ता से ओत प्रोत है। संभव है ज्योंसार बावर प्रवेश के लाखा मण्डल क्षेत्र में जहां एक पत्नी के साथ भाइयों के बहुपतित्व की प्रथा आज भी प्रचलित है यह लोक कहानी सुरक्षित हो। वस्तुतः इस पंचेन्द्रोपाख्यान में कई युगों के तार एक साथ बल दिए गए हैं। पंचेन्द्र शब्द का उल्लेख महाभारत में अन्यत्र भी आया है (उद्योग० ३३।१०३, पाण्डोः पुत्रा पंच पंचेन्द्र कल्पाः)। पतञ्जलि के महाभाष्य में भी पंचेन्द्र और दशेन्द्र शब्द आए हैं (१।१।५८)।[२] पंचेन्द्र कल्पना का मूल स्रोत वैदिक था। शतपथ ब्राह्मण में कहा है[३] कि शरीरस्थ पांच इन्द्रियों के

१—न वै शक्यं विहितस्यापयातुम्
तदेवेदमुपपन्नं विधानम् ॥
दिष्टस्य ग्रन्थिरनिवर्तनीयः
स्वकर्मणा विहितं नेह किंचित् ॥ (आदिपर्व १९०।१-२)

आदि पर्व के इस पंचेन्द्र उपाख्यान में एक छोटी कहानी व्यास जी के मुख से और जुड़वा दी गई है। किसी ऋषिकन्याने पति के लिये शिव का तप किया और पांच बार 'पतिं देहि' यह वरदान मांगा। वही कन्या द्रौपदी हुई। यह किसी कथक्कड़ ने भारी भरकम पंचेन्द्रोपाख्यान की तराजू में एक हल्का भोंडा पसंगा बाँध दिया है।

२—भाष्य में इसका विग्रह इस प्रकार है—पंच इन्द्राण्यो देवता अस्येति पञ्चेन्द्रः। दशेन्द्रः।

३—स योऽयं मध्ये प्राणः एष एवेन्द्रः।
तान्येष प्राणान् मध्यत इन्द्रियेणैन्द्ध
यदैन्द्ध तस्मादिन्धः। इन्धो ह वै तमिन्द्र
इत्याचक्षते परोक्षम्। (शतपथ ६।१।१।२)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संचालक पांच प्राण हैं। प्रत्येक प्राण की संज्ञा इन्द्र है। इन्द्र के ही कार इन्द्रियों की यह संज्ञा पड़ी है। इन पांचों के पीछे एक मध्य प्राण है जो सबको प्रदीप्त रखता है। ज्ञात होता है यही मध्य या मुख्य प्राण महेन्द्र कहलाया गोभिल गृहसूत्र में दश देवताओं की सूची के अन्तर्गत महेन्द्र और इन्द्र अलग अलग गिनाया है (गोभिल गृहसूत्र ४।७।२६-३३)। किन्तु ऋग्वे सामवेद और अथर्ववेद में महेन्द्र शब्द नहीं है। यजुर्वेद और उसकी संहिता एवं ब्राह्मणों में यह शब्द आया है। इसका अध्यात्म संकेत स्पष्ट था। शरीर एक ही क्रियाशक्ति पांच प्राणों के साथ सहयुक्त होकर कार्य करती है। इस बात को कई प्रकार के रूपक या प्रतीक भाषा में घटाया गया। ज्ञात हो है साहित्य, कला और लोकवार्ता तीनों में पंचेन्द्र की इस कल्पना को कुषाण गुप्त काल की संस्कृति में स्वीकार किया गया। मथुरा की कुषाण-कालीन कला पंचेन्द्र मूर्ति प्राप्त हुई है जिसमें बीच में एक मूर्ति है और शेष मूर्तियां दोनों पार्श्व में मध्य मूर्ति से निकलती हुई दिखाई गई हैं।

यहाँ यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि पंचेन्द्र उपाख्यान सुनाने से जैमिनि के मूल प्रश्न का किस तरह समाधान हुआ। इसका उत्तर यही है कि भारतीय प्रतीकवाद की दृष्टि से इसका पर्याप्त समाधान उपाख्यान द्वारा क दिया गया। जैमिनि को जो शंका हुई थी वह मानवी धरातल पर ठी थी। एक स्त्री के पांच पति असंगत हैं। किन्तु एक प्राणशक्ति पांच इन्द्रियानु मानसिक रूपों के साथ सहयुक्त होती है, अथवा एक मूल वाग्देवी या प्रकृ पंचभूतों या स्वयंभू परमेष्ठी, सूर्य चन्द्रमा, पृथिवी इन पांच पिण्डों की सहगामि बनती है, इस धरातल पर सोचने लगें तो कुछ भी विप्रतिपत्ति या शंका नह रह जाती। इसी दृष्टि से इन उपाख्यानों का निर्माण किया गया था। 'इतिहा पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्'—यह वचन पुराणकारों के कर्त्तव्य का स्पष्ट विधा करता है। उन्हें तो मुख्यतः वेद अर्थात् अध्यात्मिक जगत् के तत्त्वों को उपाख्या के रूप में ढालना था। इसीलिये एक पंचेन्द्र प्रतीक को कई उपाख्यानों द्वा कहने में उन्हें विरोध नहीं जान पड़ा। अहल्या, च्यवन आदि जैसे सैक उपाख्यानों में यही तथ्य लागू होता है। पुराणों के इस दृष्टिकोण को किसी तर आँखों से ओझल नहीं किया जा सकता। यही तो पुराणों के विचारों की तरंगित ग है। वहां आख्यान का रचयिता किसी सूक्ष्म शक्ति को स्थूल सांचे में व्यक्त कर चाहता है, लेकिन कोई भी स्थूल वस्तु उस सूक्ष्म शक्ति को केवल उसी सी या सांचे में विजड़ित नहीं कर सकती। पौराणिक कथाकार जब अध्यात्मि दृष्टि से सोचने लगते हैं तो उस धरातल पर विरचित प्रतीकात्मक लीलाओं में उन लिये आपत्ति या विरोध रह ही नहीं जाता। अध्यात्म या मन के धरातल पर त एक मन पांच इन्द्रियों से रमता ही है, अथवा यों कह लें कि एक ही मानसी वृ पंचेन्द्रियों के साथ रमण करती ही है। इस कथानक में न पांच पाण्डव स्थू पाण्डु के पुत्र हैं और न द्रौपदी द्रुपद से उत्पन्न शरीरिणी पुत्री है। यहां तो पां

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पाण्डव धर्म, वायु, इन्द्र, अश्विनिकुमार इन देवों से समुत्पन्न हैं और याज्ञसेनी द्रौपदी यज्ञ की अग्नि से प्रादुर्भूत हुई है। महाभारत में स्पष्ट कहा गया है—'यह दिव्यरूपा द्रौपदी लक्ष्मी का अवतार है, यह सब दैवी नियमों की प्रक्रिया है, अन्यथा कहीं मानवी स्त्री यज्ञाग्नि में भूतल से जन्म ले सकती है ?'[1] और भी दीप्ततर शब्दों में इसी तथ्य को उपाख्यान के अन्त में दोहराया है—'यह द्रौपदी देवों से संयुक्त देवी है। यह एक अपने कर्म द्वारा पांचों के साथ समन्वित हुई है। स्वयं भगवान् स्वयंभू से इस देवपत्नी की सृष्टि की गई है।'[1] महाभारत में जिसे दैवयोग कहा है उसका अभिप्राय क्या है ? वेदों में जिसे देव कहा है, वह क्या पदार्थ है ? यह प्रश्न भारतीय संस्कृति को समझने की कुञ्जी है। 'प्राणा वै देवाः' यह मूल परिभाषा है। प्राण-तत्त्व ही देव-तत्त्व है—प्राणा देवाः, (शतपथ ३।६।१।१५)। प्राणों के अतिरिक्त जो मनस्तत्त्व है वह भी देव है—मनो देवः (गोपथ पूर्व भाग २।१०)

यह तथ्य नितान्त सरल और सुबोध है। सृष्टि के सब पदार्थ एवं चराचर प्राणी मन, प्राण और वाक् (पंच महाभूत की वैदिक संज्ञा वाक् है) इन तीन वस्तुओं के एकत्र सम्मिलन से बने हैं। मन, प्राण, वाक् को ही ज्ञान, अर्थ और क्रिया कहते हैं। इनमें मन और प्राण ये दोनों देवतत्त्व हैं; दोनों ही सूक्ष्म और अव्यक्त हैं। दोनों की अभिव्यक्ति पंचभूतात्मक स्थूल वाक् के द्वारा प्रत्यक्ष अनुभव में आती है। जहाँ जहाँ देवतत्त्व का वर्णन है वहाँ सूक्ष्म शक्ति का ही वर्णन जानना चाहिए। शक्ति का ही वैदिक पर्याय प्राण है। शक्ति और भूत यही सृष्टि का रूप है। शक्ति ही देवी है; प्राण ही देव हैं। दोनों का एक ही तात्पर्य है। विश्व का यह दुर्धर्ष सत्य है कि प्राण के बिना भूत की न सृष्टि हो सकती है न स्थिति। कहने के लिये देवता एक, दो, तीन, आठ, ग्यारह, तेतीस, तीन सौ, तीन हजार या अनन्त हैं; पर मूल देवतत्त्व केवल एक है। उसे ही अग्नि कहा गया—

अग्निर्वैसर्वा देवताः (शतपथ १।२।६।८,३।१।१, ऐत्तरेय १।१, ताण्ड्य ९।४५, षड्विंश ३।७, गोपथ उत्तर भाग १।१८)।

लक्ष्मीश्चैषां पूर्वमेवोपदिष्टा ।
भार्या यैषा द्रौपदी दिव्यरूपा ।
कथं हि स्त्री कर्मणोऽन्ते महीतलात्
समुत्तिष्ठेदन्यतो दैवयोगात् ॥
(आदि पर्व १८९।३३-३४)

१—सैषा देवी रुचिरा देवजुष्टा
पंचानामेका स्वकृतेन कर्मणा ।
सृष्टा स्वयं देवपत्नी स्वयंभुवा
श्रुत्वा राजन् द्रुपदेष्टं कुरुष्व ॥
(आदिपर्व १८९।४९)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मूलभूत वैदिक दर्शन का जैसा दृष्टिकोण था, यह सम्पूर्ण विश्व सदसद् भावों से अतीत एक परात्पर ब्रह्म की ही अभिव्यक्ति है। वही ब्रह्म आत्मा है। जितने देव हैं वे सब उसी आत्मा से जन्मे हैं और प्राण के विविध कर्मों से विविध रूपों में उनकी अभिव्यक्ति होती है। भागवतों ने सृष्टि के इस तत्त्व को सर्वांश में स्वीकृत किया, पर केवल उसे नई परिभाषाओं में प्रकट किया। उन परिभाषाओं की बार बार स्फुट व्याख्या करने से भी वे नहीं चूके जैसा कि पुराणों में प्रायः मिलता है। अव्यक्त आत्म तत्त्व ही वासुदेव विष्णु है। वही तीन देवों के रूप में अथवा अनेक अंशात्मक देवों के रूप में अभिव्यक्त होता है। जीव, मन, प्राण, इन्द्रियां ये उसी के उत्तरोत्तर स्थूल रूप हैं।

बलदेव की तीर्थयात्रा

जैमिनि का तीसरा प्रश्न यह था कि बलदेव को ब्रह्महत्या कैसे लगी और उन्होंने तीर्थयात्रा द्वारा उसका प्रतीकार कैसे किया ? इस प्रश्न का धरातल सामान्य था और इसके निवारण के लिये धर्मपद्धियों ने बलराम की मनोवृत्ति का सूचक एक उपाख्यान सुना दिया (अध्याय ६) जो इस प्रकार है—जब बलराम ने देखा कि कृष्ण के मन में अर्जुन के प्रति विशेष प्रीति है तो उन्हें सोचना पड़ा कि अब क्या करना अच्छा है। कृष्ण के विना मैं दुर्योधन का पक्ष ले नहीं सकता और न दुर्योधन को छोड़कर पाण्डवों की ही ओर जा सकता हूँ। मेरे लिये यही उचित है कि अर्जुन और दुर्योधन दोनों को छोड़कर तीर्थयात्रा पर निकल जाऊँ। अपने चरित्र की सच्चाई से उन्होंने इस विषय में कृष्ण से और अर्जुन और दुर्योधन से भी सलाह कर ली तथा द्वारिका की ओर चले गए। यह सोच कर कि अब कल तो तीर्थयात्रा के लिये जाना ही है लाओ आज खुलकर अपनी लपक पूरी कर लें, उन्होंने जी भरकर पान किया और जब मस्त हो गए तो रेवती के साथ विहार के लिये रैवतक पर्वत की तलहटी में बने हुए रैवत उद्यान में चले गए। वहाँ सूत जी पुराणों की कथा सुना रहे थे। श्रोताओं ने जब नशे में चूर बलराम को देखा तो उनकी उस धुत्त अवस्था से घबरा कर बेचारे इधर उधर हटने लगे। बलराम ने आव देखा न ताव, सूत जी पर अपना हल चला ही दिया और सूत जी बेचारे वहीं ढेर हो गए। इस प्रकार खरमण्डल मचने पर श्रोता लोग जान लेकर भागे। तबतक बलदेव जी का नशा उतर चुका था। उन्होंने सोचा—'हाय मैंने यह क्या कर डाला ! मुझसे बड़ा पाप हो गया ! मैं तो ब्रह्महत्यारा बन गया ! धिक्कार है मेरे क्रोध को, मद्यपान को, अभिमान को और ढीठपने को ! अब इस पाप से बचने के लिये मैं बारह वर्ष का व्रत करूँगा और अपने इस निन्दित कर्म को कहता हुआ तीर्थों में घूमूंगा। तभी इसका प्रत्यश्चित्त होगा। इसी प्रसंग में मैं सरस्वती नदी के स्रोत की ओर जाकर उसकी प्रतिलोम यात्रा करूंगा।' यहाँ यह उल्लेखनीय है कि रैवतोद्यान का वर्णन सोलह श्लोकों में वर्णक के ढंग पर किया गया है। भारतीय साहित्य में वर्णकों की परम्परा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लगभग गुप्तकाल से शुरू हो गई। राजा, सभा, नायक, नायिका, सूर्योदय, चन्द्रोदय, वसन्त, वर्षा, उद्यानक्रीडा, सलिलक्रीडा आदि का वर्णन कवि और कथाकार दोनों को करना पड़ता था। उसके लिये जमे जमाए आदर्श वर्णन तैयार कर लिए गए। उन्हीं का उपयोग कर लिया जाता था। इससे साहित्य में घिसी-पिटी रूढ़ियों का चलन अधिक हो गया। दण्डी ने महाकाव्य की जो परिभाषा दी है उससे तो काव्य का स्वरूप गढ़े गढ़ाए वर्णनों का एक पिटारा ही बन जाता रहा होगा। प्रायः सामान्य कवि इस दलदल में फँस जाते थे। कुछ प्रतिभाशाली कवि ही वर्णनों की लीक से अपने को मुक्त करके नए मौलिक अभिप्रायों की सृष्टि कर पाते थे। कालिदास जैसे महाकवि ने वर्णकों की केवल छाया ही ली, उनके कारण काव्य को किसी प्रकार शिथिल नहीं होने दिया। बाण में वर्णकों की छाप स्पष्ट है, फिर भी काव्य का रस अक्षुण्ण है। वर्णकों का सबसे अधिक लाभ पुराणकारों ने उठाया, क्योंकि वर्णक कथक्कड़ों के उपयोग के लिये ही गढ़े गए थे। बहुत स्थलों पर जहां ये वर्णक आते हैं लगभग यह निश्चय कहा जा सकता है कि वे अंश बाद में जोड़े गए हैं। उद्यानों के वर्णन में वृक्ष, पक्षी, सरोवर में खिले हुए पुष्प इनकी बंधी हुई सूचियां पाई जाती हैं। रैवतोद्यान के इस वर्णन में ४२ वृक्ष, १७ पक्षी और कुछ पुष्पों के नाम आए हैं। न केवल पुराण बल्कि महाभारत के कलेवर में भी इस प्रकार के वर्णक घुलमिल गए हैं, जिसका एक चोखा उदाहरण आरण्यक पर्व में गन्धमादन वन का वर्णन है (१५५।३६-६२)।

जैमिनि का चौथा प्रश्न

जैमिनि का चौथा प्रश्न द्रौपदी के पाँच पुत्रों की अकाल मृत्यु के विषय में था। उत्तर में धर्मपक्षियों ने विश्वामित्र के आख्यान का वर्णन करते हुए कहा कि जब विश्वामित्र अपना उग्र रूप दिखाकर रानी शैव्या को दण्ड प्रहार करते हुए ले जाने लगे तो पाँच देवताओं को दया आई और उन्होंने विश्वामित्र को धिक्कारते हुए कहा—'अरे पापी तुम्हारी क्या गति होगी? ऐसे धर्मात्मा राजा को तुमने राज्य से खो दिया; अब किसके श्रद्धापूर्ण यज्ञों में जाकर हम सोमपान करेंगे।' विश्वामित्र उनकी बात सुनकर आग बबूला हो गए और उन्हें शाप दे डाला कि तुम मनुष्य योनि में जन्म लोगे। जब उन्होंने बहुत मनाया तो कहा कि तुम बिना गृहस्थ के प्रपंच में पड़े ही और काम, क्रोध से अछूते रहकर जल्द ही मनुष्य योनि से छूट जाओगे। वे ही पंचदेवता अपने अपने अंशों से द्रौपदी के पाँच पुत्रों के रूप में जन्मे। जन्मान्तर हेतु की ऐसी व्याख्या एकदम भोली-भाली है। ज्ञात होता है कि कहानीकार आख्यानशैली की मृत्तिका को किसी भी प्रकार के साँचे में ढालकर किसी समस्या का समाधान चटपट प्रस्तुत कर सकता था। जैमिनि के प्रश्न के व्याज से यहाँ मुख्य लाभ सत्यवादी हरिश्चन्द्र की कथा है।

मार्कण्डेय पुराण के आठवें अध्याय के २७० श्लोकों में हरिश्चन्द्र उपाख्यान भारतीय साहित्य की अद्भुत कृति है। कथा का धरातल अत्यन्त उदात्त है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और इसके द्वारा मानव के मन की दृढ़शक्ति का एक नया परिचय दिया गया है। इस आख्यान पर समीक्षात्मक ढंग से विचार किया जाय तो कई उल्लेखनीय तथ्य सामने आते हैं। महाभारत सभापर्व में हरिश्चन्द्र का एक लघु चित्र है। उसके अनुसार हरिश्चन्द्र सप्तद्वीपा वसुमती के सम्राट् थे। उन्होंने राजसूय महायज्ञ पूरा किया जिसके पुण्य से वे इन्द्र की सभा में शाश्वत पद के अधिकारी हुए (सभापर्व ११।४८-६१)। गुप्तकालीन भागवत धर्म के आदर्शों के अनुसार इन्द्रपद की प्राप्ति के लिये यह पर्याप्त कारण न था। उनके लेखे मानव के चरित्र गुण का ठोस आधार ही स्वर्ग या इन्द्रपद प्राप्त करा सकता है। अतएव उन्होंने हरिश्चन्द्र के विषय में इस नई कथा का निर्माण किया। हरिश्चन्द्र की यह कथा देवीभागवत (स्कन्ध ७, अ० १४-२७) में भी आई है। वहाँ दो हरिश्चन्द्र माने हैं—एक मिथ्यावादी हरिश्चन्द्र (देवीभागवत ७।१७।५५) और दूसरे सत्यवादी हरिश्चन्द्र (७।१७।५१)। मिथ्यावादी हरिश्चन्द्र की कथा वैदिक काल से चली आती थी जो ऐतरेय ब्राह्मण में विस्तार से दी हुई है। मार्कण्डेय पुराण में उसे छोड़ दिया है, किन्तु देवीभागवत के लेखक ने हरिश्चन्द्र के वैदिक आख्यान को रोचक ढंग से कहा है। पर उतने से उसका उद्देश्य पूरा नहीं हुआ। अतएव उत्तरार्ध में सत्य की कसौटी पर पूरे उतरनेवाले हरिश्चन्द्र की कथा दी गई है। मार्कण्डेय पुराण में कथा का जो रूप है वही शब्दशः कुछ थोड़े हेर-फेर से देवीभागवत में लिया गया है, जैसा कि पुराणों का उपबृंहण करते समय होता था। कोई प्रतिभाशाली पौराणिक नए उपाख्यान को काव्यबद्ध कर देता और वहीं से वह आवश्यकता और रुचि के अनुसार अन्यत्र ले लिया जाता था। ऐसा ही इसके विषय में भी हुआ होगा। स्कन्दपुराण के नागरखंड में भी यह कथा आई है।

हरिश्चन्द्र के वैदिक आख्यान और नए वैदिक आख्यान में आकाश पाताल का अन्तर है। हरिश्चन्द्र की वैदिक कहानी शुनःशेप की कथा के साथ जुड़ी हुई थी। संक्षेप में उसका ठाठ इस प्रकार था—

राजा हरिश्चन्द्र के कोई पुत्र न था। उन्होंने वरुण की आराधना की और यह संकल्प किया कि मेरे पुत्र होगा तो उसे देव को समर्पित करूंगा। वरुण प्रसन्न हुए और राजा के घर पुत्र का जन्म हुआ। वरुण उसे लेने आए। हरिश्चन्द्र ने कहा—'अभी तो इसका नामकरण भी नही हुआ। नाम के विना पुरुष की सत्ता नहीं।' वरुण लौट गए। जब जातकर्म संस्कार हो गया तो वरुण ने फिर आकर माँगा। हरिश्चन्द्र ने कहा—'अभी तो इसके दूध के दांत भी नहीं गिरे। इस आयु में वालक केवल पोष्य होता है, उससे कोई काम नहीं सध सकता।' वरुण लौट गए। जब वालक के नए दांत निकल आए तो वरुण ने फिर आकर मांगा। हरिश्चन्द्र ने कहा—'यह क्षत्रिय कुमार है, जब कवच धारण करेगा तब कुछ काम आ सकेगा।' वरुण लौट गए। जब रोहित अठारह वर्ष का कवचधर कुमार हो गया तो वरुण फिर आए। हरिश्चन्द्र ने आगे बचाव न देखकर दूसरे दिन आने को कहा। वरुण लौट गए। राजा ने सलाह करके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रात में अपने पुत्र को कहीं भगा दिया। अगले दिन वरुण ने आकर मांगा तो राजा ने कहा—'वह तो रात में कहीं चला गया।' वरुण लौट गए। किन्तु वरुण के दुर्धर्ष नियमों ने अपना प्रभाव दिखलाया और हरिश्चन्द्र जलोदर रोग से पीड़ित हो गए। तब उन्होंने अपने पुरोहित वसिष्ठ से परामर्श किया। वसिष्ठ ने कहा—'जब अपना पुत्र नहीं तो किसी और का पुत्र मोल लेकर यज्ञ करो।' हरिश्चन्द्र ने ऐसा ही किया और अजीगर्त के पुत्र शुनःशेप को लेकर वरुण के निमित्त यज्ञ के यूप में बांध दिया। इस प्रकार मृत्यु को समीप जानकर शुनःशेप ने बड़े करुण शब्दों में भगवान् वरुण की प्रार्थना की। शुनःशेप का वह स्तोत्र अत्यन्त हृदयद्रावक है। उसमें वरुण के उत्तम, मध्यम और अधम पाशों से छूटने के लिये भावपूर्ण प्रार्थना की गई है (ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त २४-२५)। कहा जाता है कि शुनःशेप बन्धन से मुक्त हो गया और विश्वामित्र ने उसे अपने पुत्र रूप में स्वीकार किया। यह समाचार जानकर रोहित भी घर लौट आया। उसे पाकर हरिश्चन्द्र अति प्रसन्न हुए और उन्होंने वशिष्ठ को होता बनाकर पुराने नरमेध यज्ञ के स्थान पर श्रेष्ठ राजसूय यज्ञ पूरा किया और उसके पुण्य से इन्द्रपद प्राप्त किया।

देवी भागवत के अनुसार इस वैदिक उपाख्यान के हरिश्चन्द्र मिथ्यावादी थे जिन्होंने वरुण से प्रतिज्ञा करके वंचकता का व्यवहार किया। हरिश्चन्द्र के प्राचीन उपाख्यान का यह स्वरूप भागवतों को मनःपूत नहीं हुआ। उन्होंने सत्यवादी हरिश्चन्द्र की एक उदात्त कल्पना की। उनका कहना था कि यज्ञ-यागादि की अपेक्षा सत्य का परिपालन कहीं बड़ा धर्म है। जो सत्य से बहिष्कृत है वह श्मशान के समान छोड़ देने योग्य है। पुरुष के लिये इससे बढ़कर कोई धर्म नहीं जैसा अपने सत्य का पालन। अग्निहोत्र, अध्ययन, दान और अन्य सब क्रियाएँ उसके लिये विफल हो जाती हैं जिसकी वाक् सत्य नहीं उतरती। धर्म-शास्त्रों में सत्य को ही पार उतरने वाला परम सेतु कहा है। अनृत पतन का मुख्य कारण है। सौ अश्वमेध और राजसूय भी जिसने किए हों वह भी यदि एक बार असत्य बोलता है तो स्वर्ग से भ्रष्ट हो जाता है[1]। सत्य की महिमा का बखान करते हुए आगे और भी कहा है—

१—त्यज चिंतां महाराज स्वसत्यमनुपालय। श्मशानवद्वर्जनीयो नरः सत्यबहिष्कृतः॥
नातः परतरं धर्मं वदन्ति पुरुषस्य तु। यादृशं पुरुषव्याघ्र स्वसत्यपरिपालनम्॥
अग्निहोत्रमधीतं वा दानाद्याश्चाखिलाः क्रियाः।
भजन्ते तस्य वैफल्यं यस्य वाक्यमकारणम्॥
सत्यमत्यन्त मुदितं धर्मशास्त्रेषु धीमताम्।
तारणायानृतं तद्वत् पातनायाकृतात्मनाम्॥
सप्ताश्वमेधानाहृत्य राजसूयञ्च पार्थिवः।
कृतिर्नाम च्युतः स्वर्गादसत्यवचनात् सकृत्॥ (८।१७-२१)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सत्येनार्कः प्रतपति सत्ये तिष्ठति मेदिनी ।
सत्यश्चोक्तं परमधर्मः स्वर्गःसत्ये प्रतिष्ठितः ॥
अश्वमेधसहस्रञ्च सत्यञ्च तुलया धृतम् ।
अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते ॥

(८।४१-४२)

सत्य के बल से सूर्य तपता है। सत्य के बल से पृथिवी ठहरी है। सत्य ही परम धर्म कहा गया है। स्वर्ग भी सत्य के अधीन है। सहस्र अश्वमेध और सत्य को एक साथ तोला गया तो सत्य ही भारी निकला। ये श्लोक 'सत्येनोत्तभिताभूमिः सत्येनोत्तभिता द्यौः' इस वैदिक मन्त्र के अर्थ का अनुगमन करते हैं। 'स्वर्गः सत्यवचने' इस प्राचीन सूत्र की ही छाया यहाँ पाई जाती है। इन्द्र पद की प्राप्ति के लिये सहस्र अश्वमेधों की अपेक्षा सत्य का पल्ला भारी है—यह दृष्टिकोण नीतिप्रधान धर्ममय जीवन की विशेषता बताता है। सत्यवादी हरिश्चन्द्र के नए उपाख्यान का लक्ष्य यही है। स्वर्णयुग में चरित्र सम्बन्धी गुणों पर विशेष बल दिया जाने लगा था। 'ज्ञाने मौनं क्षमा शक्तौ त्यागे श्लाघा-विपर्ययः। गुणा गुणानुबन्धित्वात् तस्य सप्रसवा इव'—इत्यादि वाक्यों में कालिदास ने उस युग की गुणविषयक भावना को प्रकट किया है।

सत्यवादी हरिश्चन्द्र का यह उपाख्यान एक दूसरी दृष्टि से भी ध्यान देने योग्य है। कथा के दो भाग हैं। पूर्व भाग में हरिश्चन्द्र के दान की महिमा है। वह पहले अपना चक्रवर्ती राज्य दे डालता है, फिर अपने आपको एवं स्त्री और पुत्र को बेच कर विश्वामित्र को कही हुई दक्षिणा चुकाता है। यह त्याग बहुत भारी था किन्तु उसकी परीक्षा इससे पूरी नहीं हुई। बाहरी वस्तुएं दे देने मात्र से हरिश्चन्द्र को सतोगति प्राप्त नहीं हुई, क्योंकि ऐसा करना अपेक्षाकृत सरल है। हरिश्चन्द्र की परख क्षमा या तितिक्षा की कसौटी पर जब पूरी उतरती है तभी वह सद्‌गति का अधिकारी माना जाता है। कथा का यह दूसरा भाग अत्यन्त द्रावक है। इसमें मानव के चरित्र की उच्चता की पराकाष्ठा चित्रित की गई है। धर्म की यह निधि कहीं बाहर से नहीं आती, अपने भीतर से ही उत्पन्न होती है। इस प्रकार का विश्वास गुप्तकालीन भारतीय मानव की नूतन उपलब्धि थी। उसकी उमंग से उसने पृथिवी और आकाश के समस्त वरदानों को जीवन में सिद्ध कर लेने का संकल्प लिया। इसी की व्याख्या करते हुए ब्रह्मपुराण में कहा है कि पृथिवी में भारत के समान दूसरा देश नहीं है। यहां सब पुण्यों के फल साक्षात् देखने को मिलते हैं। स्वर्ग के देवता यहां जन्म लेना चाहते हैं। यहां के मनुष्य जो कर सकते हैं वह देवों और असुरों के लिये भी असंभव है।

क्षमा धर्म में हरिश्चन्द्र की परीक्षा की एक धार्मिक पृष्ठभूमि भी थी। बौद्धों में क्षान्ति वादी जातक प्रसिद्ध है (पाली जातक संख्या ३१३)। उसमें बुद्ध की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

क्षान्ति या क्षमा धर्म की पराकाष्ठा दिखाई गई है। वह कहानी भी काशी में ही घटित हुई थी। किसी जन्म में बोधिसत्त्व काशी के एक धनी घराने में उत्पन्न हुए। पिता की मृत्यु के बाद अपनी संपत्ति दान में देकर हिमालय में तप करने के लिये चले गए। वहां से लौटने पर वे काशीराज के बाहरी उद्यान में आकर ठहरे। एक दिन राजा अपनी स्त्रियों के साथ उद्यान विहार के लिये आए। उनमें से कुछ स्त्रियों ने उद्यान में घूमते हुए बोधिसत्त्व को देखा। बोधिसत्त्व ने उन्हें क्षमाधर्म का उपदेश दिया। कुछ देर में राजा भी वहां आ गए। उन्हें जब मालूम हुआ कि बोधिसत्त्व ने क्षमाधर्म का व्याख्यान किया है तो राजा ने आदेश किया कि बोधिसत्त्व की ही पहले परीक्षा ली जाय। कई प्रकार के अपमान और यातना से भी मुनि विचलित न हुए तो राजा ने क्रुद्ध हो कर उनके हाथ पैर काटने का हुक्म दे दिया। फिर भी बोधिसत्त्व क्षान्तिधर्म में अडिग बने रहे। गुप्त-युग में इस जातक कथा का बहुत प्रचार था। सारनाथ में एक विशाल द्वारतोरण पर क्षान्तिवादी जातक की कथा अंकित पाई गई है जो गुप्तकला का श्रेष्ठ उदाहरण है। आर्यशूर ने अपनी जातक-माला पुस्तक में जिन चौंतीस जातकों को चुना था उनमें क्षान्तिवादी भी एक है। बौद्धों के क्षान्तिवादी जातक का ओजस्वी उत्तर सत्यवादी हरिश्चन्द्र की कथा है। जैसा इसके अन्त में कहा गया है—

अहो तितिक्षामाहात्म्यं अहो दानफलं महत्।
यदागतो हरिश्चन्द्रः पुरीं चेन्द्रत्वमाप्तवान्॥

(८।२६८)

अर्थात् हरिश्चन्द्र का उपाख्यान महत् दान का आश्चर्यजनक दृष्टान्त है और उससे भी अधिक तितिक्षा या क्षमाधर्म के महान् आध्यात्मिक गुण का उदाहरण है।

कथा के अन्त में उसके प्रतिभाशाली लेखक ने एक मोड़ ऐसा दिया है जो उसके धरातल को क्षान्तिवादी जातक से भी ऊपर उठा ले जाता है। कथा का पूरा ठाठ ही हृदय को पिघला देनेवाला है। संक्षेप में वह इस प्रकार है—

त्रेता युग में हरिश्चन्द्र राजर्षि हुए। उनके राज्य में सब सुखी थे। एक बार मृगयाप्रसंग से जंगल में घूमते हुए उन्होंने एक स्त्री का रुदन सुना और पास जाकर कारण पूछा। वह स्त्री उन विद्याओं की प्रतीक थी जिन्हें विश्वामित्र विपरीत कर्मों के लिये सिद्ध करना चाहते थे। राजा ने उसे अभय दान दिया तो विश्वामित्र ने उन्हें ललकारा। राजा ने कहा—'दान, शरणागत की रक्षा, शत्रुओं से युद्ध, ये तीन हमारे स्वाभाविक कर्म हैं।' विश्वामित्र ने कहा—'यदि तुम ऐसे ही दानी हो तो मुझे राजसूय यज्ञ की इष्ट दक्षिणा दो।' राजा ने स्वीकार किया। विश्वामित्र ने कहा—'पर्वत, ग्राम, पत्तनों से युक्त समुद्रान्त पृथिवी, रथ, हाथी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

घोड़ों से भरा राज्य, कोष्ठागार, कोष और जो भी तुम्हारे पास है सब मुझे दो, केवल तुम्हारा शरीर, स्त्री और पुत्र इसके बाहर हैं।' राजा ने यह सब कुछ दिया। तब विश्वामित्र ने कहा—'अब हमारे राज्य से बाहर चले जाओ।' राजा स्त्री और पुत्र को लेकर जाने लगे तो विश्वामित्र ने टोका—'राजसूय की दक्षिणा दिए बिना कहाँ जाते हो?' राजा ने कहा—'महाराज सब दे चुका अब केवल तीन शरीर बचे हैं।' विश्वामित्र ने कहा—'राजसूय की दक्षिणा का नियम है कि जबतक लेनेवाले को सन्तोष न हो तबतक देते ही जाना चाहिए।' हरिश्चन्द्र ने कहा—'भगवन्, इस समय नहीं है आगे एक मास में दूँगा।' तब राजा स्त्री पुत्र के साथ लेकर दिव्य वाराणसी पुरी में आए क्योंकि वह मनुष्यभोग्य नहीं शिव की सम्पत्ति है। पुरी में प्रवेश करते ही सामने विश्वामित्र दिखाई पड़े और उन्होंने टोका—'महीना पूरा हुआ, दक्षिणा लाओ।' राजा ने कहा—'कृपया ठहरिए अभी आधा दिन शेष है।' यह सुन विश्वामित्र चले गए और हरिश्चन्द्र उपाय सोचने लगे। उनको चिन्तामग्न देख रानी ने कहा—'महाराज, आप से सन्तति लाभ कर मेरा जन्म सफल हुआ। अब मुझे बेच कर दक्षिणा पूरी कीजिए।' यह सुनते ही राजा मूर्छित हो पृथिवी पर गिर पड़े। रानी अत्यन्त दुःखित हो सकरुण विलाप करती हुई राजा को जगाने लगी। तभी विश्वामित्र फिर आ पहुँचे और राजा के ऊपर पानी छिड़क कर कहने लगे—'उठो, उठो, दक्षिणा दो। जानते नहीं ऋणकर्त्ता का दुःख छिन छिन बढ़ता है।' राजा को चेतना हुई पर विश्वामित्र को देख कर फिर मूर्छा आ गई। ऋषि ने क्रोधाविष्ट हो कर कहा—"अरे धर्म का विचार हो तो चटपट दक्षिणा दो। तुमने बहुत से यज्ञ किए हैं तो उनसे क्या? यज्ञों से सत्य कहीं भारी है। या अब शान्ति से काम न चलेगा! यदि आज सूर्यास्त से पहले पूरी दक्षिणा न दोगे तो शाप दे डालूंगा।" यह कह मुनि चले गए और राजा भय से कांपने लगे। तब रानी ने कहा—'आप मेरा वचन मानें।' रानी के बार बार कहने पर राजा ने कहा—'यदि वाणी से ऐसा निष्ठुर दुर्वचन निकल पाएगा तो यही सही।' तब उनका गला रुंध गया और रोते हुए कहने लगे—'हे पुरवासियो, मेरी बात सुनो। यह न पूछना मैं कौन हूं। कोई पापी निष्ठुर राक्षस अपने प्राण न त्याग कर अपनी पत्नी को बेचना चाहता है। यदि किसी को दासी चाहिए तो शीघ्रता से कहे, जब तक मुझे अपने आपे का होश है।'

भीड़ में से किसी बूढ़े ब्राह्मण ने आगे बढ़ कर कहा—'मुझे वह दासी सौंपिए। मैं अनुरूप धन दे कर उसे मोल लूंगा।' यह सुनते ही हरिश्चन्द्र का मन विदीर्ण हो गया। तब उस ब्राह्मण ने राजा के वल्कल के पल्लव में बहुत सा स्वर्ण बांध दिया और केश पकड़ कर रानी को ले चलने लगा। मां की यह दशा देख कर बालक उसका वस्त्र पकड़ कर रोने लगा। रानी ने उस वृद्ध से कहा—'आर्य, मुझे कुछ देर छोड़ दें तो इस बालक को देख लूं, फिर इसका दर्शन दुर्लभ हो जायगा।' यों कह बच्चे से बोली—'हे वत्स, तेरी मां अब दासी हो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गई। अब तेरे छूने योग्य न रही। "बालक सहसा रोता हुआ 'मां-मां' कहते हुए उसकी ओर बढ़ा। वृद्ध ने यह देख कर उसे लात मार कर अलग कर दिया और रानी को खींचने लगा।

रानी ने कहा—'नाथ, मेरे ऊपर कृपा कर के इस बालक को भी मोल ले लें। इसके बिना मैं आपका पूरा काम न कर पाऊंगी। मुझ मन्दभागिनी पर कृपा करके गाय के बच्चे की तरह इस बच्चे से मेरा संयोग करा दें।' वृद्ध ने कहा—'यह धन लो और बच्चे को भी मुझे दे दो।' यह कह उसने उसके निमित्त का द्रव्य भी राजा के उत्तरीय में बांध दिया और माता और पुत्र दोनों को साथ ले चला। राजा अनेक प्रकार से विलाप करने लगे—'हे प्रिये, हे पुत्र, मुझ अनाथ दुर्विनीत के कारण तुम इस अवस्था को प्राप्त हुए।' वह ब्राह्मण उन्हें ले कर चला गया और विश्वामित्र आ उपस्थित हुए। राजा ने वह सब धन मुनि को दे दिया। पर उसे थोड़ा समझ कर मुनि ने कहा—'बस इतनी ही दक्षिणा मेरे लिये पर्याप्त समझते हो? तो तुम मेरे भी तप का बल देखो।' राजा ने डरते हुए कहा—'भगवन्, और भी दूंगा। कुछ काल ठहरें। अभी पत्नी और पुत्र को बेच चुका हूँ और अभी नहीं है।' विश्वामित्र ने कहा—'दिन का चौथाई भाग शेष है। उतनी प्रतीक्षा और करूंगा। उसके बाद फिर न कहना।' यों कह और मिला हुआ धन बटोर मुनि चले गए।

तब भय और शोक से अभिभूत हो कर राजा ने अपना कर्तव्य निश्चित किया और यह पुकार की—'जो धन से क्रय करके मुझे अपना सेवक बनाना चाहे वह सूर्य रहते कहे।' तब एक चांडाल अत्यन्त कुरूप और विकृत वेश वाला वहां आ कर कहने लगा—'मैं तुम्हें लूंगा। शीघ्र अपना वेतन बताओ।' राजा ने उसका डरावना वेश देख कर परिचय पूछा तो उसने कहा 'मैं प्रवीर नाम का चांडाल हूं जो मृत कम्बल वसूल करता हूं।' यह सुन कर हरिश्चन्द्र ठिठक गए। पर तभी विश्वामित्र पहुंच कर कहने लगे—'यह चांडाल है तो क्या, धन तो बहुत देगा। मेरी पूरी यज्ञ-दक्षिणा क्यों नहीं देते।' राजा ने कोई चारा न देख अपने को चांडाल के समर्पित कर दिया। विश्वामित्र धन ले कर चले गए और चांडाल राजा को बाँध कर अपने यहाँ ले गया। वह मृतक वस्त्र का अपहरण करने वाला (मृतचेलापहारक) था। हरिश्चन्द्र को वही काम सौंप कर वाराणसी के दक्षिण में स्थित श्मशान (शवमन्दिर) में भेजते हुए बोला—"यहां मृतकचेल की प्राप्ति से जो आय हो उसमें छठा भाग राजा का है। तीन भाग मेरे होंगे और दो भाग तुम्हारा वेतन होगा।[1]

१—इदं राज्ञेऽपि देयं च षड्भागन्तु शवं प्रति।
त्रयस्तु मम भागाः स्युर्द्वौ भागौ तव वेतनम्॥

(८१७०५)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्मशान का दृश्य बड़ा भयंकर था। फिर भी राजा किसी प्रकार दुःख और शोक में निमग्न हो कर वहां रहने लगे। हाथ में लकुटी लिए मलिन गंध प्रदेश में बाल बढ़ाए हुए श्मशान में इधर उधर दौड़कर सोचते थे—'इस शव से यह आय होगी। इसमें इतना राजा का, इतना मुख्य चांडाल का और इतना मेरा होगा।' जीते जी ही वे मानों दूसरी योनि को प्राप्त हो गए। रात और दिन हा-हा करते बीतता था। यों जब बारह मास बीतने पर आए तो एक दिन थककर स्वप्न में क्या देखते हैं कि उन्होंने पुक्कसी के गर्भ से जन्म लिया है। वहां भी उन्हें वही चिन्ता व्याप रही थी कि यहां से छुटकारा पाते ही दान धर्म में लगूंगा। जब सात वर्ष के हुए तो एक दिन श्मशान में किसी गुणी ब्राह्मण का शव आया किन्तु उसके बन्धुओं के पास धन नहीं था। इसने श्मशान मूल्य देने के लिये छेका। तब वे ब्राह्मण कहने लगे—'पहले एक राजा हरिश्चन्द्र था। विश्वामित्र ने उसे ब्राह्मण का धन न देने के कारण चांडाल बना डाला। आज भी वह अपनी वृत्ति नहीं छोड़ता।' इतने पर भी जब हरिश्चन्द्र ने अपनी मांग न छोड़ी तो उन्होंने उसे घोर नरक में जाने का शाप दिया। राजा ने देखा कि घोर यमदूत उसे बांधकर ले गए और वहां नरक की नाना यातनाएँ देने लगे। वहां जब उसे सौ वर्ष व्यतीत हो गए तब उसने इस लोक में नाना पशुयोनियों में जन्म लिया और सहस्रों वर्ष तक उनमें घूमता रहा। तब उसने देखा कि वह एक राजकुल में उत्पन्न हुआ, पर वहाँ द्यूत में अपना सारा राज्य खोकर वह अकेला वन में चला गया। वहां जैसे सिंह ने उसे खा लिया। तब उसने अपनी स्त्री और पुत्र को विलाप करते हुए सुना। फिर वह क्या देखता है कि उसकी रानी आकाश में उसकी पुकार कर रही है—'ऐ हरिश्चन्द्र, यहां आओ। धन के लिये विश्वामित्र ने यमराज से तुम्हारी शिकायत की है।' राजा के मन में वहां भी कोई विकार न हुआ। बारह वर्ष बीतने पर यमराज ने उससे कहा—'विश्वामित्र का यह कोप अभी टला नहीं है। उस कोप से तुम्हारे पुत्र की भी मृत्यु होगी। जाओ मृत्युलोक में अपने बचे हुए दुःख का भोग करो। तभी तुम्हारा कल्याण होगा।' तब यमदूतों ने उसे नीचे गिरा दिया और उसकी नींद खुल गई। वह सोचने लगा—'स्वप्न में मैंने महान् दुःख देखा है जिसका अन्त नहीं। पर संभवतः मेरे बारह वर्ष बीत चुके होंगे।' यह सोचकर उसने पुक्कसों से पूछा। उन्होंने कहा—'अभी बारह वर्ष नहीं हुए।' तब वह दुखी होकर देवों की शरण में गया—'मैं महिमाशाली धर्म को प्रणाम करता हूं। मैं सबके विधाता वासुदेव भगवान् को प्रणाम करता हूं। वे ही शुद्ध, पुराण, अव्यय और परावर पुरुष हैं।' एक बार उसके मन में यह प्रकाश दिखाई पड़ा, पर शीघ्र ही स्मृति खोकर वह उसी शवकार्य में लग गया।

तब साँप से डसे हुए बालक को लेकर उसकी रानी आई और विलाप करने लगी। दोनों ने एक दूसरे को देखा पर पहचाना नहीं। राजा ने बालक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के शरीर में राजचिह्न देखकर सोचा—'आह, यह किसी राजा का पुत्र गत हुआ है!' माँ की गोद में उस बच्चे को देखकर उसे अपने पुत्र की स्मृति आ गई। वह सोचने लगा—'मेरा पुत्र भी इतना ही बड़ा हुआ होगा यदि यमराज ने उसे अब तक उठा न लिया होगा।' तब रानी विलाप करने लगी—'हा वत्स, किस पापी की कुदृष्टि से हम पर यह घोर दुःख टूटा है जिसका अन्त ही नहीं होता! हा नाथ, इस दुःख में भी मुझे ढाढस न देकर आप कहाँ छिपे हैं। राज्यनाश, मित्रत्याग, स्त्री पुत्र विक्रय, कौन सा दुःख दुर्दैव ने हरिश्चन्द्र को नहीं दिया।' उसके मुँह से अपना नाम सुनकर राजा तो जैसे आकाश से गिरा। उसने रानी को पहचान लिया—हा यह तो शैव्या है और यही वह मेरा बालक है। वह दुःख से दग्ध होकर मूर्च्छित हो गया। रानी भी निश्चेष्ट होकर पृथिवी में गिर पड़ी। होश आने पर दोनों बहुभांति विलाप करने लगे। बहुत प्रकार से एक दूसरे के प्रति अपना दुःख प्रकट करके राजा ने कहा—'अब मुझ मन्दभागी के जीवित रहने से क्या लाभ? पर यह शरीर भी मेरा नहीं है। यदि चाण्डालराज की आज्ञा के विना अग्नि में प्रवेश करूँ तो मुझे एक जन्म में और इसकी दासता करनी होगी। मैं पराधीन होकर प्राणों को कैसे त्याग करूँ।' पुनः वह सोचने लगा—'इस घोर दुःख से अधिक नरक की भी व्यथा क्या होगी? क्यों न मैं पुत्र की चिता में ही अपने को जला दूँ।' यों सोच रानी से कहने लगा—'हे देवि, मेरे कुकृत्य को क्षमा करना। तुम फिर उसी ब्राह्मण के घर चली जाना। यदि मैंने यज्ञ, दान आदि किए हों तो फिर दूसरे जन्म में भी तुमसे मेरा मिलन हो। यदि मैंने हँसी या एकान्त में कुछ बुरा-भला कहा हो तो क्षमा मागता हूँ, मुझे क्षमा करना। अपने को राजपत्नी मानकर उस वृद्ध विप्र की अवज्ञा मत करना।' रानी ने कहा—'मैं भी आपके साथ ही इस प्रज्वलित अग्नि में प्रवेश करूँगी।'

तब राजा ने चिता बनाई और पुत्र को उस पर रखकर पत्नी के सहित हाथ जोड़कर भगवान् वासुदेव नारायण हरि का ध्यान करने लगे—'जो परमात्मा हृदय की गुफा में भी सन्निहित हैं वे ही अनादि अनन्त ब्रह्म हैं। वे ही पीताम्बर-धारी कृष्ण हैं।' राजा ने जब इस प्रकार देव की शक्ति का ध्यान किया तो इन्द्रादि सब देव साक्षात् भगवान् धर्म को आगे कर वहाँ भागते हुए आए और बोले—'हे राजन्, ये साक्षात् स्वयं भगवान् पितामह धर्म हैं। ये साधु विश्वदेव, मरुत्, लोकपाल, नाग, सिद्ध, गन्धर्व, रुद्र हैं और ये विश्वामित्र हैं जो तीनोंलोकों में कभी किसी के मित्र नहीं बन सके। वह अब तुमसे मैत्री चाहते हैं।[1]' तब धर्म ने कहा—'हे राजन्, मैं साक्षात् धर्म तुम्हारे सामने

१—विश्वत्रयेण यो मित्रं कर्त्तु न शकितः पुरा।
विश्वामित्रस्तु ते मैत्रीं चेष्ट्वाहर्तुमिच्छति॥
(८।२३४-२३५)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उपस्थित हुआ हूँ। तुम अग्निप्रवेश का साहस मत करो। तुमने अपनी तितिक्षा, दान, सत्य आदि स्वगुणों से मुझे प्रसन्न किया है।' तब इन्द्र ने कहा—'महाभाग हरिश्चन्द्र, तुमने पत्नी और पुत्र के साथ शाश्वत लोकों को जीत लिया है। अब स्वर्ग में चलो।' यह कह उसने अमृत बरसाया और रोहिताश्व जीवित हो उठा। इन्द्र ने राजा से स्वर्ग में चलने का पुनः आग्रह किया। हरिश्चन्द्र ने कहा—'देवराज, अपने स्वामी से उऋण हुए बिना मैं स्वर्ग नहीं जाऊँगा।' यह सुनकर धर्म ने कहा—'मैंने ही चाण्डाल का रूप धारण करके तुम्हारे साथ वह चपल व्यवहार किया था।' इन्द्र ने राजा से फिर स्वर्ग में चलने का आग्रह किया। हरिश्चन्द्र ने उत्तर में कहा—'देवराज, आपकी मुझ पर कृपा है, पर मैं जो कहता हूँ कृपया उसे सुनें। अयोध्यापुरी के लोग मेरे शोक में निमग्न हैं, उन्हें छोड़कर स्वर्ग कैसे जाऊँ? यदि मैं उन्हें साथ ले जा सकूँ तभी स्वर्ग चल सकता हूँ।' इन्द्र ने कहा—'तुम्हारे और उनके पुण्य पाप भिन्न हैं। स्वर्ग समूह में भोगने की वस्तु नहीं है।'

इन्द्र का वचन सुनकर हरिश्चन्द्र ने जो उत्तर दिया वह इस कथा को और भी ऊंचे धरातल पर उठा ले जाता है—'हे इन्द्र, राजा राज्य का जो भोग करता है, जो महायज्ञों से यजन करता है और जो लोकहित के कर्म करता है, उनमें उसके कुटुम्बियों के पुण्य पाप का प्रभाव रहता है। मैं भी उन्हीं के प्रभाव से यह सब कर सका। अतएव अपने लिए स्वर्ग की इच्छा से उन उपकार करने वालों को नहीं छोड़ सकता। मैं चाहता हूँ कि जो मेरे दान, यज्ञ का पुण्य हो समान रूप से सब में बँट जाय। बहुत काल तक उपभोग करने के लिए जो मेरे कर्मों का फल है वह उन सबके साथ बँट कर केवल एक दिन में ही पूरा हो जाय—यही मुझ पर आपकी कृपा होगी[1]।' यह सुनकर देवराज इन्द्र ने कहा—'ऐसा ही होगा।' धर्मराज और विश्वामित्र भी अत्यन्त प्रसन्न हुए। तब इन्द्र ने अयोध्यावासियों से कहा—'स्वर्ग का एक कोना आज पृथिवी को छू रहा है। आप भी स्वर्ग चलें।' तब विश्वामित्र ने प्रसन्न होकर अयोध्या में रोहिताश्व का राज्याभिषेक किया। हरिश्चन्द्र की उस ऋद्धि को देखकर असुरों के आचार्य

१—शक्र भुङ्क्ते नृपो राज्यं प्रभावेण कुटुम्बिनाम्।
यजते च महायज्ञैः कर्म पौर्त्तं करोति च॥
तच्च तेषां प्रभावेण मया सर्वमनुष्ठितम्।
उपकर्तॄन् न सन्त्यक्ष्ये तानहं स्वर्गलिप्सया॥
तस्माद्यन्मम देवेश किञ्चिदस्ति सुचेष्टितम्।
दत्तमिष्टमथो जप्तं सामान्यं तैस्तदस्तु नः॥
बहुकालोपभोग्यं हि फलं यन्मम कर्मणः।
तदस्तु दिनमप्येकं तैः समं त्वत्प्रसादतः॥
(८।२५४—२५७)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एवं सब शास्त्रों के अर्थ जानने वाले उशना ने यह गाथा पढ़ी—'हरिश्चन्द्र के समान न कोई राजा हुआ और न होगा (८।२६६)।'

कथा में जिस इन्द्रपद प्राप्ति को इतना गौरव दिया गया है उसका अभिप्राय भी गुप्त युग की परिभाषा में स्पष्ट था, जैसा कालिदास ने लिखा है—

ऋद्धं हि राज्यं पदमैन्द्रमाहुः (रघुवंश २।५०)।

सब प्रकार से समृद्ध राज्य ही पृथ्वी पर इन्द्र का स्थान है।

आडी—बक युद्ध (अध्याय ९)

हरिश्चन्द्र की कथा का एक पुछल्ला इस अध्याय में पड़ा रह गया है। वसिष्ठ ने जब अपने शिष्य राजा की यह दुर्दशा सुनी तो क्रोध में भरकर उन्होंने विश्वामित्र को शाप दिया कि तुम बगुले बन जाओ। विश्वामित्र भी चुप न रहे और बदले में वसिष्ठ को आडी नामक जलपत्ती बना डाला।[1] दोनों में घोर युद्ध हुआ। सब लोग हा-हा करने लगे। तब ब्रह्मा ने बीच में पड़कर उनके कुटिल भाव को हटाकर मेल कराने का प्रयत्न किया – "हे वसिष्ठ तुम, और हे विश्वामित्र तुम, अपने इस तामस-भाव को छोड़ो। हरिश्चन्द्र तो अब स्वर्ग में चले गए, तुम क्यों क्रोध के वश में होकर अपने तप का नाश करते हो? ब्रह्मा की बात सुनकर दोनों लज्जित हो गए और परस्पर गले मिलकर एक दूसरे से क्षमा मांगने लगे।

आडी—बक युद्ध का यह उल्लेख देवी भागवत में भी आया है (६।१८।३०-३४)। कथा के इस मोड़ का संकेत स्पष्ट है। वसिष्ठ और विश्वामित्र की आपसी कलह अनेक रूपों में वर्णित हुई है। मनुष्य देह में जब वे न निपट सके तब तिर्यक् योनि में उन्होंने उस साध को पूरा किया। अन्त में ब्रह्मा के बीच-बचाव से दोनों का मेल हुआ।

जन्म, मृत्यु और कर्म के विषय में जैमिनि के प्रश्न (अध्याय १०–१५)।

हरिश्चन्द्र की कथा में पहले एक हलका सा संकेत आया है कि उन्हें स्वप्न में नरक लोक की यातना सहनी पड़ी। सम्भवतः उसी सूत्र को पकड़ कर जैमिनि

१—आडी और वक दोनों एक ही जाति या आडी वंश के तुल्य बल वाले पक्षी हैं। आडी (सं० आटि) को हिन्दी में कालाबूज़ा और अंग्रेज़ी में Black Ibis कहते हैं। वक सफ़ेद बूज़ा या मुंडा बगुला (श्वेत आटि, श्वेत वक; अं० White Ibis) है। इस वैज्ञानिक सूचना के लिये मैं श्री करुणाशंकर दुबे, नागपुर का अनुगृहीत हूँ (और भी देखिए, श्री रघुवीर और करुणाशंकर दुबे, इंडियन साइंटिफिक नामनक्लेचर आफ बर्ड्स, पृ० ४२३, सं० २२०३ सफ़ेदबूज़ा, सं० २२०४ कालाबूज़ा)। पुराण में जो वक को रक्तोद्वृत्ताक्षि कहा है (९।१४) वह श्वेत आडी या White Ibis के लिये ठीक है क्योंकि इसकी पुतली लाल या ललछौंह बभ्रु वर्ण की होती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और धर्मपक्षियों के रूप में मृत्यु और उसके बाद होनेवाली गति एवं लोकों का वर्णन किया गया है। जैमिनि ने कहा—'प्राणियों का आविर्भाव, तिरोभाव, जन्म और वृद्धि कैसे होती है? मृत्यु के समय वह चिद्भाव कैसे वियुक्त हो जाता है? मृत होकर भी वह पाप पुण्य का भोग कैसे करता है?' प्रश्न सुनकर धर्मपक्षियों ने इस विषय की एक पुरानी कथा सुनाई जिस प्रकार किसी भार्गव ब्राह्मण के धर्मात्मा पुत्र सुमति ने अपने पिता से इसी प्रश्न की व्याख्या की थी। पूछे हुए प्रश्न का किसी पुरानी कथा के व्याज से समाधान करने की शैली महाभारत में बहुत ही मँजे हुए रूप में पाई जाती है। अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्—इस भूमिका के साथ शान्ति और अनुशासन पर्वों में प्रश्न-समाधान की जो शैली पाई जाती है वह प्राचीन भारतीय वाङ्मय की अन्तरंग विशेषता थी। सारे जातक साहित्य का निर्माण उसी शैली की देन है। इस शैली की मुख्य बात यह थी कि वर्तमान काल के किन्हीं दो व्यक्तियों में कोई प्रश्न या शङ्का उत्पन्न हो जाती थी। एक दूसरे से उसका समाधान पूछता था। दूसरा उसके उत्तर में अपनी ओर से कुछ न कहकर बीती घटना सुनाकर समाधान प्रस्तुत करता था। उसे ही बौद्ध ग्रन्थों में 'अतीतवत्थु' कहा गया। महाभारत में इसे पुरातन इतिहास की संज्ञा दी गई है, जैसा कि अभी ऊपर उद्धृत वाक्य में आया है। पुराणकारों ने आख्यानशैली की उस साहित्यिक परम्परा को सुरक्षित रक्खा।

ब्राह्मणकुमार सुमति जन्म से ही चपलतारहित और बहुत कम बोलने वाला था। इसीसे उसका दूसरा नाम जड़ पड़ गया था। पिता ने उपनयन करके पुत्र से कहा—'हे सुमति, अब क्रम से वेद पढ़ो और भिक्षा के अन्न से भोजन करते हुए गुरुशुश्रूषा में निरत रहो। फिर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करके सन्तति उत्पन्न करना और यज्ञ कराना। पुनः बनवास लेना और अन्त में परिग्रह रहित हो परिव्राजक बनना। यों तुम उस ब्रह्म को जानोगे जिसे पाकर पुनः शोक नहीं होता।' अपने स्वभाव के अनुसार पहले सुमति ने कुछ न कहा, पर पिता के बार बार आग्रह से उसने हंसते हुए उत्तर दिया—'तात, आपका जो आज उपदेश है वैसा मैं बहुत बार कर चुका हूँ। अनेक शास्त्र और विविध शिल्पों का मैंने अभ्यास किया था। अपने वे सैकड़ों जन्म मुझे याद आ रहे हैं। उनमें निर्वेद और परितोष, क्षय और उदय, वियोग और संयोग, सुख और दुःख के अनुभव मुझे हुए। बहुत सी माताएं, बहुत से पिता, बहुत से बन्धु बान्धव मुझे मिले। गर्भवास, बालपन, यौवन, बुढ़ापा, रोग, और पीड़ाओं का अनुभव भी अनेक योनियों में मैंने किया। कभी राजा बना, कभी भृत्य। कभी धनी हुआ, कभी दरिद्र। कभी मैंने दान दिया, कभी दान लिया। पिता, माता, भ्राता, कलत्र इनसे कितनी बार सुखी हुआ, कितनी बार दुःखी। इस प्रकार के संसारचक्र में घूम कर मैंने वह ज्ञान पाया जिससे मोक्ष मिलता है। उसके जान लेने पर ऋक्, यजु, साम का अध्ययन अब मुझे कुछ लाभप्रद नहीं जान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पड़ता। बोध उत्पन्न होने पर मेरे लिये वेदों का क्या प्रयोजन? अब मैं सबसे विशिष्ट विज्ञान पा कर तृप्त हूँ। मेरी आत्मा निष्काम हो चुकी है। दुःख, सुख, हर्ष और गुणों से अतीत जो ब्रह्म है वह परम पद अब मैं प्राप्त करूंगा। हर्ष, सुख, भय उद्वेग, क्रोध, अमर्ष, जरा, रोग—इन दुःखो से मैं पार हो चुका हूँ। अब किसलिये मैं त्रयी धर्म के पचड़े में पड़ूं?'[1] (१०१२-३१)।

पुराण के कलेवर में छिप कर बैठे हुए इस वेद विषयक डंक की पृष्ठभूमि उन धार्मिक विचारों से ली गई है जो चार आश्रमों वाले राज-मार्ग को छोड़कर सीधे संबोधि लाभ करके निर्वाण सुख प्राप्त करने के मार्ग में विश्वास करते थे। यहाँ प्रयुक्त बोध, दुःख, सन्तति, संसारचक्र, प्रबुद्धता आदि शब्द सहेतुक हैं।

पुत्र की बात सुनकर पिता को विस्मय हुआ और हर्ष भी। उसने पुत्र के अकस्मात् ज्ञान उत्पन्न होने और प्रबुद्धता का कारण पूछा। पुत्र ने इसके उत्तर में कहा—'मैं पूर्व जन्म में योगयुक्त विप्र था। मैंने अपनी आत्मा को परमात्मा में लगाया था। आत्मविद्या संबंधी विचारों में मुझे परा निष्ठा प्राप्त हुई। मृत्यु होने पर भी मेरी स्मृति लुप्त नहीं हुई और मुझे जाति स्मरण हो गया जो कि त्रयीधर्म के पीछे पड़े हुए लोगों को नहीं होता। मैं पूर्वाश्रम से सीधे ही निष्ठाधर्म को प्राप्त हो गया और एकान्तित्व को प्राप्त होकर आत्म मोक्ष के लिये यत्न करने लगा।'[2] इन श्लोकों के भाव बौद्ध धर्म की विचारधारा से लिए गए हैं। जिसे यहाँ एकान्तित्व कहा गया है उसे बौद्ध लोग एकयान कहते थे। यान-नानात्व और एकयान इन दोनों में झगड़ा था। बौद्ध लोग बुद्ध के धर्म को एकयान कहते थे और अपने से अतिरिक्त विचारों को नानायान कहते थे—

एकं हि यानं द्वितियं न विद्यते,
तृतियं हि नैवास्ति कदाचि लोके॥

१—विज्ञाते यत्र सर्व्वोऽयमृग्यजुः सामसंज्ञितः।
क्रियाकलापो विगुणो न सम्यक् प्रतिभाति मे॥ (१०।२७)
तस्मादुत्पन्नबोधस्य वेदैः किं मे प्रयोजनम्।
गुरुविज्ञानतृप्तस्य निरीहस्य सदात्मनः॥ (१०।२८)
तस्मात् यास्याम्यहं तात त्यक्त्वेमां दुःखसन्ततिम्।
त्रयीधर्ममधर्माढ्यं किं पापफल सन्निभम्॥ (१०।३१)

२—ज्ञान दान फलं ह्येतद् यज्जाति स्मरणं मम।
न ह्येतत् प्राप्यते तात त्रयी धर्माश्रितैर्नरैः॥
सोऽहं पूर्वाश्रमादेव निष्ठाधर्ममुपाश्रितः।
एकान्तित्वमुपागम्य यतिष्याम्यात्ममोक्षणे॥
(१०।४२—४३)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अन्यत्र उपायाः पुरुषोत्तमानां
यद्यान नानात्वुपदर्शयन्ति ॥

(सद्धर्मपुण्डरीक, २।५४)

अर्थात् लोक नायक बुद्ध का एक ही यान है, दूसरा या तीसरा नहीं है। जो नाना यान या अनेक मार्ग बताते हैं उनकी अलग-अलग रायें हैं।[1]

पुत्र का यह ज्ञान ध्यान सुनकर पिता ने वही प्रश्न पूछा जो जैमिनि ने धर्म-पक्षियों से पूछा था। उत्तर में पुत्र ने कहा—'हे तात, यह संसार चक्र अजर है, कभी बूढ़ा नहीं होता। इस काया में वायु प्रकुपित होकर अत्यन्त ऊष्मा उत्पन्न कर देती है। उससे मर्म स्थान विदीर्ण हो जाता है। जो आस्तिक और श्रद्धालु हैं, काम, क्रोध द्वेष आदि से रहित हैं, उनकी सुमृत्यु होती है। पर जो मृषावादी अज्ञान में लिप्त हैं उनकी मोह मृत्यु होती है। मृत्यु के समय यम के भीषण दूत दिखाई पड़ते हैं। जब प्राणी इस शरीर को छोड़ देता है तो उसे कर्म के अनुसार दूसरी देह मिलती है। वह माता-पिता से उत्पन्न स्थूल देह नहीं होती।' इसके बाद कहा गया है कि द्वादशाह होने तक उसे यमदूत धर्मराज की पुरी में ले जाते हैं और वहाँ उसे पापकर्मानुसार नरक की यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं। पर जो पुण्यात्मा हैं वे पुण्यगति प्राप्त करते हैं और विमान पर चढ़कर गन्धर्व और अप्सराओं से भरे स्वर्गलोक में जाते हैं। वहाँ वे पुण्यफल भोगकर महात्मा राजाओं या अन्य सच्चरित्र पुरुषों के कुल में जन्म लेते हैं।' यह वही तथ्य है जिसे गीता में कहा गया है। कालिदास ने मेघदूत में भी इस मान्यता का उल्लेख किया है।[2]

किस प्रकार प्राणी गर्भ में आता है? इस प्रश्न के उत्तर में आयुर्वेद संबंधी गर्भविज्ञान का कुछ परिचय देते हुए कहा है—जैसे ही प्राणी स्वर्ग या नरक से छूटता है भावी पिता अपना बीज माता के रज में निःसृत करता है। अपनी आन्तरिक शक्ति से माता-पिता के बीज मिल कर स्थिर बनते हैं और फिर क्रमशः

१—सद्धर्मपुण्डरीक में एक यान के विषय में और भी कई उल्लेख हैं—
एकस्य यानस्य अनन्त वर्णान् (२।४१)।
अनन्यथावादिन लोकनायकाः।
एकं इदं यान द्वितीय नास्ति ॥ (२।७०)।

२—स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणां गां गतानाम्।
शेषैः पुण्यैर्हृतमिव दिवः कान्ति मत्खण्डमेकम् ॥

(मेघदूत १।३०)

आरण्यक पर्व के व्रीहिद्रौणिक उपाख्यान में इसी बात को कहा गया है—
च्युतानां स्वर्गतो मुनिः। शुभाशुभयोगेन मनुष्येषूपजायते (२४७।३३)।
स्वर्गभाजश्च्यवन्तीह तस्मात्स्वर्गं न कामयेत्। (२४७।३९)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कलल, बुद्बुद और पेशी का रूप प्राप्त करते हैं। पेशी से फिर क्रमशः अंगों की समुत्पत्ति वैसे ही होती है जैसे अणु बीज से अंकुर फुटाव लेता है। अंगों से उपांग बनते हैं और अंगुली, नेत्र, नाक, मुंह, कान, नख, त्वचा, रोम, केश, घुटने आदि क्रमशः वृद्धि को प्राप्त होते हैं। अग्नि के कारण गर्भ में कठिनता आती है। गर्भस्थ शिशु की नाभि में आप्यायनी नाड़ी का एक सिरा आबद्ध रहता है। उसी का दूसरा सिरा माता के उदर में निबद्ध रहता है। उस के द्वारा उसे माता का खाया-पिया (भुक्त-पीत) प्राप्त होता है और उसका शरीर बढ़ता है। वहां उसे संसार के अनेक जन्मों की स्मृति आती है और वैराग्य उत्पन्न होता है कि इस बार छूट कर ऐसा उपाय करूंगा जिससे फिर गर्भ में न आना पड़े। नवें या दसवें मास में गर्भ में एक प्राजापत्य वायु चलती है जिसके धक्के से वह बाहर आता है। बाहर की हवा लगते ही उसे चेतना आती है। तभी से वैष्णवी माया उसे अपने पंजे में ले लेती है। फिर वह क्रमशः बाल, कौमार्य, यौवन, जरा और मरण प्राप्त करता हुआ पुनः-पुनः जन्म लेता है। यही संसार चक्र है जिसमें रहट की घड़िया के समान जन्तु को घूमना पड़ता है। गर्भवास, जन्म, बालभाव, वृद्धत्व, मरण सब में दुःख ही दुःख है। फिर यौवन में काम, क्रोध, ईर्ष्या के विकार भी दुःख से भरे हैं। यहां सुख कहां? इसलिये मोक्ष के लिये यत्न करना चाहिए। त्रिगुणात्मिका त्रयी विद्या के सेवन से क्या लाभ? (अध्याय ११)।

बारहवें अध्याय में पिता के पूछने पर पुत्र ने महारौरव तामस, निकृन्तन, अप्रतिष्ठ, असिपत्रवन और तप्तकुम्भ नरकों का वर्णन किया। इन नरकों की मान्यता पुरानी थी। पाणिनि के भी एक सूत्र में रौरव और महारौरव का उल्लेख आया है (६।२।३८)।

किन्तु भागवतों ने नरक और स्वर्ग की आध्यात्मिक व्याख्या की। नरक और स्वर्ग का निवास मानव के मन में ही है। यह संसार गुण-दोषों से भरा हुआ है। गुण स्वर्ग और दोष नरक के रूप हैं। मानव की चित्त-वृत्तियों में ही स्वर्ग और नरक विद्यमान हैं। न गुणों को बाहर से लाना पड़ता है, न दोषों को। चित्त की भूमि में ही सुख और दुःख की वृत्तियां जन्म लेती हैं। दुःख की वृत्तियां क्लिष्ट या क्लेश से भरी हुई होती हैं, सुख की अक्लिष्ट अर्थात् अनुकूल अनुभवों से युक्त होती हैं। सुख और दुःख, स्वर्ग और नरक मानव के शुभ अशुभ कर्मों के फल हैं। कर्म-फल के भोगों से भागकर नहीं बचा जा सकता। घर में या वन में जहां भी मानव है चित्त उसके साथ है। चित्त के प्रक्षालन से ही वृत्तियों को निर्मल बनाया जाता है। स्वर्ग और नरक की भूमिकाएँ मानव के मन में ही हैं। चित्त की वृत्तियां जब अन्तर्मुखी होती हैं उस स्थिति का नाम योग है। योग का अर्थ है जुड़ना। चित्त की वृत्तियां जब अपने स्वरूप से जुड़ जाती हैं, अर्थात् चारों ओर से सिमिट कर अपने ही केन्द्र में लीन हो जाती हैं वही स्वरूप में अवस्थान सच्चा योग है। योगश्चित्तवृत्ति निरोधः, तदा द्रष्टुः

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्वरूपेऽवस्थानम्—इन दो सूत्रों में पतञ्जलि ने मन की इसी स्थिति का उल्लेख कि है। मन यदि अन्तर्मुखी नहीं है, तो उसे बहिर्मुखी होना ही पड़ेगा। बहिर्मु का अर्थ है पांच इन्द्रियों के पीछे मन का अनुगामी होना। पांच विष में उनके रसों का उपभोग करना और पांच भूतों से बना हुआ जो स्थूल विश्व है इसी में मन का चिपके रहना—मन की इसी स्थितिको पतञ्जलि वृत्तिसारूप्यमितरत्र-इस सूत्र में कहा है। आत्मा द्रष्टा या साक्षी है। मन की वृत्ति या वर्तना या व्यवहार बाहरी पदार्थों के संग से होता है उसी की स्वरू अर्थात् उसी जैसापन साक्षी आत्मा को भी भुगतना पड़ता है। पदार्थों के से मन की वृत्तियों को दो ही प्रकार के अनुभव होते हैं, क्लिष्ट-अक्लिष्ट, सुखम दुःखमय, प्रतिकूल-अनुकूल। दुःखमयी वृत्तियों का अनुभव नरक का है, सुखमयी का स्वर्गभोग। इन दोनों से ऊपर उठना ही मोक्ष का आनन्द है

इस पृष्ठभूमि में स्वर्ग और नरक का विचार करते हुए भागवतों ने विषय को एक नए धरातल पर उठा दिया। मार्कण्डेय पुराण के बारहवें अध्याय छह प्रधान नरकों की व्याख्या इसी दृष्टिकोण से की गई है। शब्दों के झीने आव के पीछे झांककर देखने से इनके अर्थ स्पष्ट दिखाई पड़ने लगते हैं। काम, क्रोध, लो मोह, मद, अहंकार ये छह मानस विकार ही छह महाशत्रु या छह मुख्य नरक है

पहला नरक महारौरव है। रौरव का बृहद्रूप महारौरव कहा जाता है मार्कण्डेय ५०।३१ के अनुसार ब्रह्मा की मानसी सृष्टि में पिता रौरव और म वेदना से दुःख का जन्म हुआ। रुरु कृष्ण मृग का पर्याय है। वैदिक परिभ के अनुसार अग्नि ने कृष्ण मृग का रूप धारण करके देव या प्रकाश की शक्ति से अपने आपको छिपा लिया (अग्निर्ह मृगो भूत्वा देवेभ्यो निलिल्ये, शतपथ अग्नि का जो रौद्र या घोर रूप है वह कृष्ण है। उसे ही प्रतीक भाषा में कृष्ण कहा जाता है। अग्नि शक्ति का रूप है। जिसे सूक्ष्म होने के कारण स्थू भीतर ढूँढ़ना पड़ता है। मृग्य होने के कारण वह मृग है। इस प्रकार शक्ति के घोर रूप या तामस कृष्ण रूप का प्रतीक बन गया। उसी का भी भयंकर रूप महारौरव कहलाया। महारौरव की व्याख्या करते हुए कहा है कि वह तांबे की जैसी लाल-लाल जलती हुई भूमि का लोक है। निरन्तर करती हुई अग्नि उसे ताप से तपाया हुआ रखती है।[1] महारौरव क्रोध साक्षात् स्वरूप है। उससे जलाया जाता हुआ व्यक्ति हाय-हाय करता शान्ति नहीं पाता।[2]

१—तत्र ताम्रमयी भूमिरधस्तस्य हुताशनः।
तत्तापतप्ता सर्वांशाः प्रोद्यदिन्दुसमप्रभाः॥
विभात्यति महारौद्रा दर्शनस्पर्शनादिषु। (१२।४-५)

२—दह्यमानः पितर्मातर्भ्रातस्तातेति चाकुलः।
वदत्यसकृदुद्विग्नो न शान्तिमधिगच्छति॥ (१२।८)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दूसरे नरक का नाम तम है। वह अत्यन्त शीत, ठिठुरा हुआ, दारुण अन्धकार से भरा हुआ वातावरण है। वहां के प्राणी क्षुधा-तृष्णा से सताए हुए रहते हैं।[1] दारिद्र्य और अभाव यह इस नरक का पूरा रूप है। इसे ही लोभ कहते हैं। अभाव की स्थिति में मानव के उत्साह और आशाओं पर तुषारपात हो जाता है।

तीसरा नरक निकृन्तन नाम का है जिसमें मनुष्य जैसे कुम्हार के चाक पर चढाकर बराबर घुमाया जाता है। जैसे कुम्हार घूमते हुए चाक पर चढ़े हुए मिट्टी के पिण्डे में से बर्तनों के आकार रूप में आई हुई मिट्टी को छेने या डोरे से काट-काट कर अलग करता जाता है ऐसे अहंकार की चित्तवृत्ति मानव के लिये निकृन्तन की प्रक्रिया है। जब अहंकार होता है तो मन व्यक्तित्व की सारी शक्ति समेट कर उठता है किन्तु वह नाना खण्डों में छिन्न-भिन्न हो जाता है। व्यक्तित्व या मन के इन सैकड़ों खण्डों का ही नाम निकृन्तन नरक है। पुराण लेखक ने इस नरक का जो चित्र खींचा है वह अहंकारग्रस्त प्राणी का ही रूप है।[2] जिसके मन की विभिन्न वृत्तियाँ या शक्तियाँ एक सूत्र में पिरोई हुई हैं उसीका व्यक्तित्व संतुलित है। जहां मन उद्देश्यहीन टुकड़ों में बँटा रहता है वही काल-रूपी सूत्र से काटा हुआ निकृन्तन भाव या छिन्न-भिन्न रूप है। यही मन में अहंकार का प्रवेश है।

चौथा महादुःखदायी नरक अप्रतिष्ठ है जो मोह का रूप है। जिस प्रकार घटीयंत्र में लगे हुए पात्रों को चक्र के घूमने से घूमना पड़ता है और जल में डूबकर वे पात्र ऊपर आते हैं और रीते होकर फिर नीचे जाते हैं, ठीक वैसे ही मन में मोह की प्रक्रिया है। संसार के नाना पदार्थों और सम्बन्धों के साथ सम्पर्क होने से मन भरा रहता है, किन्तु घूमते हुए संसारचक्र के साथ जब उन उन वस्तुओं का उच्छेद होता है तो मन मोह के कारण आँसू बहाता है, पर वह चक्र रुकता नहीं। वह फिर घूमता है और मन मोह से भर जाता है।

१—क्षुत्तृष्णा प्रबलास्तत्र तथैवान्येऽप्युपद्रवाः।
हिमखण्डवहो वायुर्भिनत्त्यस्थीनि दारुणः॥
मज्जासृग्गलितं तस्मादश्नुवन्ति क्षुधान्विताः॥ (१२।१२।१३)

२—निकृन्तन इति ख्यातस्ततोऽन्यो नरकोत्तमः।
तस्मिन् कुलालचक्राणि भ्रामयन्त्यविरतं पितः॥
तेष्वारोप्य निकृत्यन्ते कालसूत्रेण मानवाः।
न चैषां जीवितभ्रंशो जायते द्विजसत्तम॥
छिन्नानि तेषां शतशः खण्डान्यैक्यं व्रजन्ति च। (१२।१५-१८)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यही मोह का स्वरूप है[१]। पुराण लेखक ने ठीक ही कहा है कि मोह के कारण जो आँसू गिरते हैं वे रक्त के ही रूप हैं। तात्पर्य यह है कि रक्त का सम्बन्ध हृदय से है और जबतक मोह के कारण हृदय पर चोट नहीं लगती तबतक मोहजनित दुःख के आँसू प्रकट नहीं होते। हृदय का रक्त ही आँसू बनकर बहता है। असह्य दुःख के अनुभव का साक्षात् रूप आँसू हैं।

पाँचवाँ नरक असिपत्र वन है। यह काम का प्रतीक है। सूर्य की किरणों से तपाए हुए प्राणी इस वन की ओर जाते हैं। वहाँ उन्हें एक रमणीय वन दिखाई देता है। किन्तु उस जङ्गल का प्रत्येक पत्ता तलवार का फल है जो बहुत चमचमाता हुआ और सुन्दर, पर तुरन्त काटने वाला है। ऐसी ही काम की वृत्तियाँ हैं। कामाग्नि से तप्त मनुष्य कामोपभोगों को रमणीय मानकर उनमें तृप्ति ढूँढ़ता है, किन्तु इस वन के जिस पत्ते का आलिंगन किया जाय वही छुरी या तलवार की तरह है। इस वन को स्निग्ध पत्र कहा गया है, अर्थात् इसकी हर एक कोंपल स्नेह में डूबी हुई है। स्नेह या वासनायुक्त प्रेम काम के वन का महान् आकर्षण है। इसी से मानवीय मन उधर खिंचता है, किन्तु स्नेहसिक्त पत्ते का वास्तविक स्वरूप तलवार के समान है। अतएव इसे असिपत्र वन कहा जाता है। दूर से जान पड़ता है कि इस वन की छाया बड़ी ठंढी है। प्रचण्ड प्यास से सताया हुआ प्राणी वहाँ जाता है। कामवासना ही यह तीव्र प्यास है जिसे बुझाने के लिये मनुष्य काम के गहन वन में प्रवेश करता है[२]। पुराणकार ने कहा है कि इस वन में बाघ के समान बड़े-बड़े भयंकर कुत्ते मनुष्य को देखकर भूँकते हैं। मानव की इन्द्रिय शक्ति के अतृप्त रूप ही ये भयंकर कुत्ते हैं

१—तान्येव तत्र चक्राणि घटीयन्त्राणि चान्यतः। २०।
दुःखस्य हेतुभूतानि पाप कर्म कृतां नृणाम्॥
चक्रेष्वारोपिताः केचिद् भ्राम्यन्ते तत्र मानवाः। २१।
घटीयंत्रेषु चैवान्यो बद्धस्तोये यथा घटी॥ २२॥
भ्राम्यन्ते मानवा रक्तमुद्गिरन्तः पुनः पुनः।
अस्रैर्मुखविनिष्क्रान्तैर्नेत्रैरश्रुविलम्बिभिः॥ २३॥
(अ० १२)

२—असिपत्रवनं नाम नरकं शृणु चापरम्। २४
तप्ताः सूर्यकरैश्चण्डैर्यत्रातीव सुदारुणैः। २५
प्रपतन्ति सदा तत्र प्राणिनो नरकौकसः।
तन्मध्ये च वनं रम्यं स्निग्धपत्रं विभाव्यते॥ २६॥
पत्राणि तत्र खड्गानां फलानि द्विजसत्तम। २७
ततस्तद्वनमालोक्य शिशिरच्छायमग्रतः। २८
प्रयान्ति प्राणिनस्तत्र तीव्रतृट् परिपीडिताः॥ २९
(अ० १२)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जो जंगल में बेरोक-टोक छूटे हुए रात-दिन भूँकते रहते हैं। संयम के द्वारा ही इन कुत्तों का भूँकना बन्द किया जा सकता है[1]। इस वन की भूमि में भी आग छिपी हुई है। क्रोधाग्नि के समान काम भी एक अग्नि है। शीघ्र ही मनुष्य के दोनों पैर इसके ताप से जलने लगते हैं और वह छटपटाने लगता है। तब ऐसी वायु चलती है कि इस वन के पत्ते झड़कर गिरने लगते हैं और मनुष्य में ऐसी प्रक्रिया होती है मानों तलवार के घाव लगते हैं। तब वे जो भूँकनेवाले कुत्ते थे वे ही अंगों को काट-काटकर खाने लगते हैं। कामशक्ति के नाश से होने वाले शारीरिक क्षय को ही इस वर्णन में कवि ने कहा है।

छठा नरक तप्तकुम्भ है। उसमें अग्नि पर औंटनेवाले और अग्नि की ज्वालाओं से घिरे हुए तप्त कुम्भ तेल और लोहे के चूर्ण से भरे हुए कहे गए हैं। यह साक्षात् मद का स्वरूप है। मानवशरीर में जो अपना ही सत्त्व है वही तेल है जो मद के कारण रात-दिन औंटता रहता है। लोहे के रेजे उन चुभनेवाली मानसी प्रवृत्तियों के प्रतीक हैं जो भीतर गड़ती रहती हैं और मन को शान्त या प्रकृतिस्थ नहीं होने देतीं। मद के कारण शरीररूपी घट का तेल सदा सिमसिमाता रहता है और कभी ठंढा नहीं होता। ऐसा प्रतीत होता है मानों मस्तक, नेत्र और अस्थियों का स्फोटन हो जायगा। अपने ही शरीर के स्नायु, मांस, त्वचा, अस्थियाँ इस आग से औंटकर गल जाती हैं मानो कोई उन्हें करछुल से रात दिन घोट रहा हो (१२।३४-३९)।

इस प्रकार नरकों का यह मनोवैज्ञानिक विवेचन पुराणलेखक ने अपनी भाषा में किया है। इनका अभिप्राय इतना स्पष्ट है कि उसके संकेत समझने में कठिनाई नहीं होती। वस्तुतः व्यक्तित्व के पूर्ण विकास का यह नैतिक आधार भारतीय संस्कृति की जानी-पहचानी परिभाषा थी। गुप्त-युग में भारवि ने इसे शत्रुरूपी षड्वर्ग कहा था और मनु-प्रदर्शित प्रजापालन नीति की प्राप्ति चाहनेवाले राजा के लिए यह आवश्यक माना गया था कि वह पहले अपने ही शरीर में होनेवाले इन छह शत्रुओं को वश में करे। भारवि का तात्पर्य स्पष्ट था कि सदाचार की सिद्धि के बिना प्रजा-पालन की नीति असम्भव है।[2] भारवि से लगभग एक सहस्र वर्ष पूर्व कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में लिखा था कि विनय या अनुशासन का मूलाधार इन्द्रिय-विजय है, और इन्द्रियों के जीतने का अर्थ है, अरिषड्वर्ग या काम, क्रोध

१—श्वानश्च तत्र सबलाः श्वनन्त्युत शोभिताः। २७
महावक्त्रा महादंष्ट्रा व्याघ्रा इव भयानकाः॥ २८

२—कृतारिषड्वर्गजयेन मानवीमगम्यरूपां पदवीं प्रपित्सुना
विभज्य नक्तं दिवमस्ततन्द्रिणा वितन्यते तेन नयेन पौरुषम्।
किरातार्जुनीय १,९।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लोभ, मोह, मद, अहंकार—इन छह का परित्याग करना[१]। इन्द्रियों की जय—यही सब शास्त्रों का निचोड़ है।

इससे भी पूर्व ऋग्वेद के एक मन्त्र में ही मानव की इन छह पाशविक वृत्तियों का संकेत से उल्लेख करके उन्हें वश में करने का आदेश भी दिया गया है। वहाँ प्रतीक भाषा में काम को कोक, क्रोध को श्वा, मोह को उलूक, लोभ को शिशुलूक, मद को गृध, और अहंकार को सुपर्ण कहा गया है। इन छहों की चाल या स्वभाव को वश में करना प्रत्येक के लिये आवश्यक है[२]। मन की इन छह दूषित वृत्तियों को सुव्यवस्थित करने और निर्मल बनाने से ही मानव का मन संतुलन प्राप्त करता है और वह अपनी प्रातिस्विक शक्ति का स्वामी बनता है। इन वृत्तियों का कुत्सित रूप ही दुःख का भंडार नरकवास है। मार्कण्डेय पुराण की कल्पना में इसी का चित्र अंकित है। इस संसारचक्र में घूमते हुए कभी नरक के दुःखों का और कभी स्वर्ग के सुखों का अनुभव होता है। अनुभव के मानसिक भोग शारीरिक स्थूल भोग से सैकड़ों गुना अधिक प्रभावशाली होता है। पुण्यकृत् और पापकृत् जीवन के द्विविध कर्मफल यहीं प्रत्यक्ष देखने में आते हैं। जो पुण्यात्मा हैं वे पुण्यगति पाते हैं। जीवन का जो मार्ग यहाँ प्रत्यक्ष जीवन में बन सका है, वही आगे रहेगा। जो यहाँ नहीं बन सका उससे विपरीत कोई चमत्कार भविष्य में संभव नहीं होगा। कर्म और उसका नियतफल, यही मानव जीवन का सबसे बड़ा एकमात्र चमत्कार है।

पुण्यवान् महामानव का स्वरूप।

(अ० १३-१५)

इन तीन अध्यायों में स्वर्ग नरक के व्याज से एक विलक्षण मानवीय ल… कहा गया है। महायान बौद्ध धर्म के संस्कृत ग्रंथों में जो दृष्टिकोण और बोधिसत्त्व का आदर्श सहस्रों प्रकार से वर्णित हुआ है उसे भागवतों ने अपने ढंग से … कहा है। ऊपर हरिश्चन्द्र के उपाख्यान में आ चुका है कि अयोध्यावासियों… बिना उसने इन्द्र का पद लेना भी स्वीकार नहीं किया। कुछ वैसा ही रसव… जीवन तथ्य यहाँ कहा गया है।

सुमति ने कहा कि अबसे सातवें जन्म पहले मैं एक वैश्य कुल में हुआ… वहां मैंने कुछ गायों को चरही में पानी पीने से रुकवा दिया। उतने से दुष्कर्म…

१—विद्याविनयहेतुरिन्द्रियजयः काम क्रोध लोभ मान मद हर्ष त्यागात् का… तस्मात् अरिषड्वर्गत्यागेन इन्द्रियजयं कुर्वीत। कृत्स्नं हि इदं शास्त्रं इन्द्रियज… (अधिकरण १, अध्याय ६—७)

२—उलूकयातुं शिशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम्।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र॥
ऋग्वेद ७। १०४। २२।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

फल भोगने के लिये मुझे नरक में जाना पड़ा। वहां सौ वर्ष जब मुझे बीत गए तो एक दिन क्या देखता हूँ कि ठंढी सुखकारी वायु आ रही है। मैं यद्यपि तप्त बालू के कुंभ में पड़ा था फिर भी उस वायु के शीतल स्पर्श से वह बालू मेरे लिये ठंढी पड़ गई। ध्यान से देखने पर जान पड़ा कि मनुष्यों में रत्न कोई महापुरुष वहां आगए हैं जिनके प्रभाव ने नरक का वातावरण ही बदल डाला। मैंने देखा कि उनके सामने एक यमदूत चला आता है। तब उन्होंने उस यमदूत से पूछा – 'भाई, मुझे यहां क्यों लाए? मैंने क्या दुष्कर्म किया है? मैं राजर्षि जनक के कुल में उत्पन्न हुआ था। विपश्चित मेरा नाम था। मैंने धर्म से प्रजापालन किया। बहुत से यज्ञ किए। देवता, पितर, ऋषि, सेवक सभी को मैंने सन्तुष्ट किया। इष्ट और पूर्त जो धर्म के दो रूप हैं उन्हें चौकस सम्हालता रहा। फिर मुझसे क्या चूक हुई जो मुझे यहां आना पड़ा?"

यम के सेवक ने कहा—"महाराज, जो आप कहते हैं, सच है, पर आपसे भी हल्का सा पाप हो ही गया, उसका स्मरण कराता हूं। विदर्भ देश की कुमारी आप की पत्नी थी। वह जब ऋतुमती हुई तो आप अपनी केकय देश की रानी के साथ रमते रहे। आपने वैदर्भी रानी का ऋतुधर्म व्यर्थ जाने दिया। वही कामासक्ति आप को यहां ले आई। आप से अन्य कुछ दोष नहीं हुआ। अब चलिए अपने पुण्यफलों का उपभोग कीजिए।'

शब्दों के पीछे छिपा हुआ कहानी के इस मोड़ का तथ्य स्पष्ट दिखाई पड़ता है। ऋतुमती का उल्लंघन प्रजापति के विधान का उल्लंघन है। कामासक्त हो कर ऋतुकाल के बिना स्त्री से विहार करना पाप हो जाता है। यद्यपि सामान्य दृष्टि से दोनों काम के रूप हैं, किन्तु ऋतुधर्म मानों साक्षात् प्रकृति का विधान है जो काम के क्षेत्र में धर्म और अधर्म की विभाजक रेखा खींच देता है। जो पत्नी के ऋतुधर्म की उपेक्षा करता है, उसे धर्म की बावन तोला पाव रत्ती तुला क्षमा नहीं करती। पुराणकारों ने स्पष्ट लिखा है—जैसे होमकाल में अग्नि घृताहुति की प्रतीक्षा करती है वैसे ही ऋतुकाल में स्वयं प्रजापति ऋतुआधान की प्रतीक्षा करता है[1] विश्व में संतान उत्पत्ति के अनुकूल जो विधान है उसी का नाम प्रजापति है। प्रवृत्ति धर्म उसके अनुकूल है, कामासक्ति उसके प्रतिकूल है।"

यह सुन कर विदेहराज ने कहा—'आप जहां ले चलेंगे वहां मैं चलूंगा, पर मैं जो अपने चारों ओर यातनाएं देख रहा हूं इनका हेतु और मर्म क्या है?' उत्तर में यमपुरुष कर्म और उसके फल की कुछ मीमांसा बताता है—'मनुष्य अपने पुण्य और पाप का बारी बारी से भोग करता है। पुण्य और पाप भोगने से ही पूरे होते हैं। प्राणी अपने कर्मबन्धन से अनेक गति प्राप्त करते हैं। जो शान्त, श्रद्धालु और शुभकारी हैं वे सुख के बाद सुख, उत्सव के बाद उत्सव और स्वर्ग के

१—होमकाले यथा वह्निराज्यपात्यमवेक्षते।
ऋतौ प्रजापतिस्तद्वद्बीजपातमवेक्षते॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बाद स्वर्ग के ऊंचे डंडों पर क्रमशः चढ़ते जाते हैं। पुण्य और पाप का बीज सु और दुःख के रूप में अंकुरित हो जाता है। बीज को जैसे जल और भूमि चा वैसे पुण्य और पाप देश-काल का कारण पाकर फल देते हैं। संसार का भवच अनन्त है। सुख-दुःख, पाप पुण्य, ज्ञान-अज्ञान के फल नाना जन्मों में देश के सा में ढल कर सामने आते रहते हैं जब तक उनके संस्कार लिंग या कारण शरीर विद्यमान रहते हैं। आधार भूत नियम यह है कि मन वचन और कर्म से कभी नहीं किया उसका अच्छा या बुरा भोग मनुष्य को कभी भोगना न पड़ेगा (१४।१५-३३)।

भूमिका के रूप में इतना कहकर यमदूत ने यातनाओं का और नीति के अतिक्रमण का एक समीकरण बताने का प्रयत्न किया। उदाहरण के लिये परस्त्री और परधन को दुष्ट दृष्टि से देखता है और दुष्ट मन से चाहता है उस यातना के लिये वज्र की चोंच वाले पक्षी उसकी आंखे नोंचते हैं। यह यातना एक बार में समाप्त नहीं हो जाती, बार बार नई होती है और फिर वही दुःख भोग पड़ता है। जितने क्षणों तक पाप किया होता है उतने वर्षों तक फल भोग पड़ता है। निश्चय ही यह अर्थवाद की शैली है। इन्हें गणित के कथन नहीं क जा सकता। ऐसे ही जो शास्त्र का उल्टा-पुल्टा उपदेश करते हैं, अपने शत्रु भी जो सम्यग् दृष्टि के अतिरिक्त और कुछ सुझाते हैं, जो वेद, देवता ब्राह्मण की निंदा करते हैं उन्हें जिह्वा की यातना मिलती है। जो मित्र, पिता, पु स्वजन, माता, भार्या आदि में भेद या फूट डालते हैं उन्हें जैसे आरे से ची जाने की यातना मिलती है। यहां यह स्पष्ट लक्षित होता है कि संसार में अ जीवन में जो दुःख की सत्ता विद्यमान है उसी के हेतु की व्याख्या सादृश्य नियम के अनुसार यहां की जा रही है। जैसे स्थूल जगत् के वैसे ही नैतिक जगत् नियम भी बंधे हैं। उनमें सादृश्य का नियम ही सबसे अधिक संभाव्य है। सु से सुख, दुःख से दुःख, पुण्य से पुण्य, असत्य से असत्य, द्वेष से द्वेष, क्रोध से क्रो का आकर्षण होता है। इनके क्षय के लिये इन से विपरीत धर्मों को ही चुनना होग जैसे क्रोध को अक्रोध से, कृपणता को दान से, अनृत को सत्य से और अश्र को श्रद्धा से वश में किया जा सकता है। और भी इसी शैली से कितने दुष्कर्म और उनकी यातनाओं का उल्लेख यहां किया गया है। जो शरणागत त्याग करते हैं, प्रपा देवालय सभा अग्रहार आदि का विध्वंस करते हैं, ए स्थान में कन्या का वाग्दान करके दूसरी जगह बात चलाते हैं, अपने पास रखे हुए न्यास का अपहरण करते हैं, अपने उपाध्याय या शिल्प-शिक्षक को नी दिखा कर स्वयं घमंड करते हैं, मूत्र पुरीष आदि शारीरिक मल से जल को गं करते हैं, जो मित्र अतिथि भृत्य के रहते हुए अकेले मिष्टान्न भोग करते हैं, वे ना प्रकार की यातनाएं सहते हैं, और जब वे फिर जन्म लेते हैं तो उन्हें ही हम कुष्ठ आदि रोगों से दुःखी देखते हैं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यहाँतक नरक की यातनाओं का वर्णन करके उन्हीं से मिला हुआ विषय पन्द्रहवें अध्याय में कहा गया है। किस पापकर्म से कौन सी योनि प्राप्त होती है—इसकी एक सूची यहाँ दी गई है। यह विषय पुराना था और मन्वादि स्मृतियों में भी मिलता है। उस युग की समसामयिक संस्कृति की पृष्ठभूमि में विषय पल्लवित किया गया है—जैसे पत्रोर्ण (पटोर), कौशेय, दुकूल, अंशुक, क्षौम, कार्पासिक, वाल्क (वल्कल का बना वस्त्र), आज (बकरे के बालों से बना हुआ), आविक (भेड़ की ऊन का बना हुआ), वर्णक (रंगीन कम्बल) आदि वस्त्रों का उल्लेख करते हुए उनकी चोरी के फल-स्वरूप भिन्न भिन्न योनियों में जन्म कहा है। पाप का विचार कई धरातल पर एक साथ चलता था। राजधर्म में इन्हीं अपराधों के लिये विभिन्न दंड कहे गए हैं। इन्हीं से संवन्धित विभिन्न प्रायश्चित्त और जन्मान्तर में योनियों के भेद भी समझने चाहिएं। हम अपने चारों ओर समाज में भले बुरे प्राणियों को देखते हैं। जो परनिंदा, कृतघ्नता, दूसरे का मर्मभेद, निष्ठुरता, चोरी, कपट, वंचना, परदारोपसेवा आदि प्रतिषिद्ध कर्म करते हैं उन्हें नरक की परम्परा में जन्मा हुआ समझना चाहिए। भूतदया, सत्य, भूतहित कथन, परलोक भय, मेल-जोल, साधु-संगम सत्कार, मैत्री आदि जो सद्धर्म की क्रियाएँ हैं वे स्वर्ग से आए हुए प्राणियों के लक्षण हैं (१५।३९-४५)। यह विषय संक्षेप में कहा गया है। इसका निचोड़ यही है कि पुण्यात्मा और पापी दोनों स्वकर्म का फल भोगते हैं।

नरक यातनाओं को प्रत्यक्ष देखकर और पाप-पुण्य के विषयों में यह मीमांसा सुनकर उस महापुरुष ने तत्काल अपने कर्त्तव्य का निर्णय कर लिया। उसने यमपुरुष से पूछा—"क्या आप बता सकते हैं कि मैंने मनुष्ययोनि में कौन सा पुण्य किया जिससे मेरे कारण यहाँ नरक में ऐसी आनन्द की वृष्टि संभव हुई।" यमपुरुष ने उत्तर दिया—"राजन्, आपने अश्वमेधादि अनेक यज्ञ किए, आपके पुण्यों की गिनती नहीं है। जैसे समुद्र में जल के बिन्दु, आकाश में तारे, मेघ में बरसती हुई जल धाराएँ और गंगा में बालू के कण हैं वैसे ही आप के पुण्य असंख्य हैं।' यह भाषा सद्धर्म पुण्डरीक आदि बौद्ध ग्रन्थों में इसी रूप में मिलती है। विदेहराज ने कहा—'स्वर्ग में और ब्रह्मलोक में भी वह सुख नहीं है जो दुःखी प्राणियों के दुःख दूर करने में है, मेरी ऐसी दृढ़ मति है। यदि मेरे यहाँ टिकने से इन प्राणियों को नरक की यातना नहीं सताती तो मैं यहीं रहूँगा। निश्चल वृक्ष के समान मैं यहीं ठहरूँगा।'[1] यमपुरुष ने जब फिर आग्रह किया तो

१—न स्वर्गे ब्रह्मलोके वा तत्सुखं प्राप्यते नरैः।
यदार्तजन्तुनिर्वाणदानोत्थमिति मे मतिः॥
यदि मत्सन्निधावेतान् यातना न प्रबाधते।
ततो भद्रमुखात्राहं स्थास्ये स्थाणुरिवाचलः॥
(१५।५६-५७)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विदेहराज ने अपने उसी भाव को और पल्लवित करते हुए कहा—'मैं तबतक यहाँ से नहीं जाऊँगा जबतक ये लोग इस भारी दुःख में हैं। मेरे ठहरने से यदि इन्हें सुख मिलता है तो ये नरकनिवासी अवश्य सुखी हों। उस पुरुष के जीवन को धिक्कार है जो शरणागत रोगी या दुःखी व्यक्ति पर अनुग्रह नहीं करता अथवा जो अपने शत्रु पर भी कृपा नहीं करता। यज्ञ, दान और तप उस व्यक्ति का इस लोक में और परलोक में कोई हित नहीं करते जिसका मन आर्तजनों की रक्षा में नहीं है। जिस मनुष्य का मन कठोर है उसे मैं मनुष्य नहीं मानता, वह राक्षस है। भूख, प्यास आदि दुःखों से जो दुःखी हैं उनकी रक्षा को मैं स्वर्गसुख से भी अधिक समझता हूँ। यदि मेरे अकेले के दुःख सह लेने से बहुत से आर्तजनों को सुख मिलता हो तो मैंने क्या नहीं पा लिया ? इसलिये हे यमपुरुष तुम जाओ, मैं यहीं रहूँगा।'[1]

यमपुरुष ने अपना वश न चलता देख कहा—'हे राजन्, आपको यहाँ से अवश्य चलना है। देखिए आपको लेने के लिए साक्षात् धर्म और इन्द्र आए हैं।' धर्म ने कहा—'मैं आप को स्वर्ग में ले चलने के लिए आया हूँ। आप स्वर्ग के सम्यक् अधिकारी हुए हैं। इस विमान पर चढ़कर चलें, विलम्ब न करें।' राजा ने कहा—'हे धर्मराज, जब नरक में सहस्रों प्राणी पीड़ित हैं और त्राहि-त्राहि कहकर मुझे पुकार रहे हैं तो मैं यहाँ से कभी न जाऊँगा।'[2] इन्द्र ने कुछ और

१—तस्मान्न तावद्यास्यामि यावदेते सुदुःखिताः
मत्सन्निधानात् सुखिनो भवन्ति नरकौकसः ॥
धिक् तस्य जीवनं पुंसः शरणार्थिनमातुरम् ।
यो नार्तमनुगृह्णाति वैरिपक्षमपि ध्रुवम् ॥
यज्ञदानतपांसीह परत्र च न भूतये ।
भवन्ति तस्य यस्यार्त परित्राणे न मानसम् ॥
नरस्य यस्य कठिनं मनो बालातुरादिषु ।
वृद्धेषु च न तं मन्ये मानुषं राक्षसो हि सः ॥
एतेषां सन्निकर्षात् तु यद्यग्निपरितापजम् ।
तथोग्रगन्धजं वापि दुःखं नरकसंभवम् ॥
क्षुत्पिपासाभवं दुःखं यच्च मूर्च्छाप्रदं महत् ।
एतेषां त्राणदानन्तु मन्ये स्वर्गसुखात्परम् ॥
प्राप्स्यन्त्यार्त्ता यदि सुखं बहवो दुःखिते मयि ।
किन्तु प्राप्तं मया न स्यात्तस्मात्त्वं व्रज मा चिरम् ॥
(१५।५९-६५)

२—नरके मानवा धर्म पीड्यन्तेऽत्र सहस्रशः ।
त्राहीति चार्त्ताः क्रन्दन्ति मामतो न व्रजाम्यहम् ॥ (१५।६८)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पैंतरा लेते हुए कहा—'जिन्हें नरक मिला है, वह उनके पाप कर्मों का फल है। आपने पुण्य किया है अतः आपको तो स्वर्ग में ही चलना है।' राजा ने कहा—'यदि मेरे साथ सम्पर्क हो जाने के बाद भी इनका उत्कर्ष नहीं होता तो कोई मानव मेरे सम्पर्क में आने की क्यों अभिलाषा करेगा? हे स्वर्ग के अधिपति, मेरा जो कुछ भी पुण्य हो उसके फल से यातनाओं में पड़े ये पापी नरक से छूट जायँ।[२]' इन्द्र ने कहा—'हे महाराज, आपने अपने लिये स्वर्ग से भी ऊँचा स्थान बना लिया। ये पापी तो आप के कारण नरक से मुक्त हो ही गए।[३]'

सुमति ने उपसंहार करते हुए कहा—'उसी समय विदेहराज की देह पर पुष्प वृष्टि हुई और वे विमान पर चढ़कर आनन्द के उस लोक में चले गए जहाँ सनातन परमात्मा देवों के देव भगवान् हरि निवास करते हैं। मैं तथा और लोग भी अपनी उन यातनाओं से छूटकर स्वकर्म के अनुसार जन्मों को प्राप्त हो गए।'

इन शब्दों की अक्षय्य नैतिक सुगंध आज भी वातावरण को सुरभित बनाती है। इनकी धर्माम्बुवृष्टि अजर-अमर है।

योग की व्याख्या

अध्याय सोलह से अध्याय चौवालिस तक का लम्बा प्रकरण योगविषयक प्रश्न को लेकर आरम्भ होता है। इसमें धर्मपक्षियों ने सुमति जड़ और उसके पिता के संवाद को जारी रखते हुए सुमति के द्वारा पहले कई सुन्दर उपाख्यानों की भूमिका बांधते हुए अन्त में दत्तात्रेय और अलर्क की ज्ञान चर्चा के रूप में योगविद्या का उपदेश किया है। यह ज्ञातव्य है कि भागवतों ने जहां एक ओर गृहस्थ आश्रम के प्रवृत्ति-लक्षण धर्म का आग्रह किया वहाँ दूसरी ओर निवृत्तिधर्म की परम्परा भी उन्हें मान्य थी। कालिदास ने जो प्रजायै गृहमेधिनाम्, और योगेनान्ते तनुत्यजाम्, इन दो आदर्शों का उल्लेख किया है, वही भागवत धर्म का सम्पूर्ण सूत्र था.[१] आधे में प्रवृत्ति और आधे में निवृत्ति इस प्रकार का आश्रम-

---

२—कथं स्पृहां करिष्यन्ति मत्सम्पर्केषु मानवाः।
यदि मत्सन्निधावेषामुत्कर्षो नोपजायते॥
तस्मात् यत् सुकृतं किञ्चिन्ममास्ति त्रिदशाधिप।
तेन मुच्यन्तु नरकात् पापिनो यातनां गताः॥

(१५।७५-७६)

३—एवमूर्द्ध्वतरं स्थानं त्वयावाप्तं महीपते।
एतांश्च नरकात् पश्य विमुक्तान् पापकारिणः॥

(१५।७७)

१—निवृत्तश्चास्थितो धर्मं क्षेमी भागवतप्रियः।
प्रवृत्तिधर्मान् विदधे स एव भगवान् प्रभुः।

(शान्ति० ३२७।२)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विभाग, जीवन की कलात्मक कल्पना थी और वह गुप्त युग के मानव के लिये विशेष मनःपूत हुई। अतएव भागवत धर्म से अनुप्राणित पुराण शास्त्र में जहाँ एक ओर गृहस्थ-आश्रम का विवेचन पाया जाता है वहीं दूसरी ओर युक्ति से योगविद्या का भी उपदेश किया गया है। ऊपर कहा जा चुका है कि भक्ति धर्म और सांख्य दर्शन इन दोनों का ग्रन्थिबंधन भागवत परम्परा में सिद्ध हुआ। सांख्य के साथ योगधर्म का संबंध अति प्राचीन काल में हो हो गया था जैसा शान्ति पर्व में कहा है—

नास्ति सांख्यसमं ज्ञानं नास्ति योगसमं बलम् ।
तावुभावेकचर्यौ तु उभावनिधनौ स्मृतौ ॥
(शान्ति ३०४।२)

अर्थात् सांख्यज्ञान और योगबल दोनों की चर्या एक है। दोनों ही अनिधन या मृत्यु रहित अमृत पद के प्राप्त कराने वाले हैं। मार्कण्डेय और सनत्सुजात दोनों इसी परम्परा के आचार्य थे। मार्कण्डेय को यतिधर्मों का आचार्य कहा गया है [1] और सनत्कुमार उस अध्यात्म ज्ञान के उपदेष्टा थे जिसमें यह माना जाता था कि मृत्यु है ही नहीं, अमृत ही एक मात्र सत्य है। [2]

इस प्रकार भागवत धर्म से अनुप्राणित पुराण शास्त्र में योगविधि एवं अध्यात्मविद्या का भी विशेष महत्त्व माना जाता था। पुराण कर्त्ताओं ने इस प्रकार के अवसर और संवाद निर्मित किए जिनके द्वारा ब्रह्मविद्या एवं योग का निरूपण कराया जा सके। विष्णुपुराण में ऋभु और निदाघ का संवाद एवं केशिध्वज और खांडिक्य की कथा इसी प्रकार की हैं। [1] भागवत में कपिलदेवहूति संवाद [2], ऋषभोपदेश [3], अवधूत-प्रह्लाद संवाद [4], हंसोपदेश [5], जड़ भरत-रहूगण संवाद [6] इसी प्रकारके उदात्त प्रकरण हैं जिनमें पारमहंस्य धर्म, अध्यात्म और पुरातन योगविद्या का श्लाघनीय शैली में पल्लवित वर्णन किया गया है।

१—मार्कण्डेय मुखात्कृत्स्नं यतिधर्ममवाप्तवान् । (शान्ति ३८।१३)

२—सनत्सुजात यदीदं शृणोमि मृत्युर्हि नास्तीति तवोपदेशम् । (उद्योग ० ४२।८)

सनत्कुमार के ही शिष्य नारद थे। नारद और मार्कण्डेय ये दोनों भागवत धर्म के सर्व श्रेष्ठ प्रतिनिधि माने गए।

१—विष्णुपुराण, द्वितीय अंश, अध्याय १५; छठा अंश, अयाय ७६-७ ।

२—भागवत, तृतीय स्कंध, अध्याय २५-२८ ।

३—भागवत, पञ्चमस्कन्ध, अध्याय ५ ।

४—भागवत, सप्तम स्कंध, अध्याय १३ ।

५—भागवत, एकादश स्कंध, अध्याय १३-१५ ।

६—भागवत, सप्तम स्कंध अध्याय ११ ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भागवत के जड़भरत के समान मार्कण्डेय के जड़ सुमति भी अपने जीवन में अध्यात्मयोग के आदर्श का पालन करने वाले हैं, पर गृहस्थ धर्म को भी वे सम्मान्य दृष्टि से देखते हैं। अतएव उन्होंने पिता से कहा—'गार्हस्थ्य का परित्याग कर अब आप वानप्रस्थ-परायण बनें। बाह्य अग्नियों की परिचर्या छोड़कर आत्मा में आत्मा का दर्शन करें और निर्द्वंद्व एवं अपरिग्रही बनकर उस योग को धारण करें जो मुक्ति का हेतु है' (१६।३-६)। पिता ने उस प्रकार के योग के जानने में रुचि प्रदर्शित करते हुए कहा—'अविद्या के कृष्ण सर्प से मैं डसा हुआ हूँ और उसके विष से पीड़ित हूँ। तुम अपने वचनों के अमृत पान से मुझे पुनः जीवित करो। अपने ब्रह्मज्ञान की शीतल अम्बु वर्षा से मेरे चित्त को शान्ति दो।'

उत्तर में सुमति ने दत्तात्रेय और राजा अलर्क के संवादरूप में उसी योग-विद्या का विवेचन किया (अ० ३९-४३)। किन्तु उस से पूर्व दत्तात्रेय और अलर्क इन दोनों की जन्मकथा और चरित्र का वर्णन लगभग बीस अध्यायों में किया गया है। अलर्क उपाख्यान के संपुट में अलर्क की माता मदालसा के अत्यन्त प्रभविष्णु उपाख्यान और राजधर्म एवं गृहस्थधर्म सम्बन्धी उसके उपदेशों का कुछ विस्तार से वर्णन पाया जाता है।

जड़ सुमति के पिता ने प्रश्न किया—'दत्तात्रेय किसके पुत्र थे? उन्होंने किस प्रकार के योग का उपदेश किया? योग के विषय में प्रश्न करनेवाले अलर्क कौन थे?' इसके उत्तर में पुत्र ने पहले दत्तात्रेय की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए एक छोटा सा पतिव्रता उपाख्यान सुनाकर अत्रिमुनि की तपस्विनी पत्नी अनसूया के गर्भ से ब्रह्मा के तेज से सोम, विष्णु के तेज से महात्मा दत्तात्रेय[1] और रुद्र के तेज से दुर्वासा के जन्म का उल्लेख किया।

दूसरे पुत्र दत्तात्रेय योग में पारगामी हुए। वे सर्वत्र समदर्शी थे। योग में मन लगाकर विषयों का उपभोग भी करते थे।[2] उपाख्यान में उन्हें मद्य और स्त्री में आसक्त भी कहा है; किन्तु फिर भी उन्हें विष्णु का अवतार मानकर परम योगीश्वर कहा गया है। हैहय वंश के एक राजा अपने मंत्री के कहने से

---

१ तुष्टेन विष्णुना जज्ञे दत्तात्रेयोमहात्मना
स्व शरीरात्समुत्पाद्य सत्वोद्रिक्तो द्विजोत्तमः ॥
दत्तात्रेय इति ख्यातः सोऽनसूयास्तनं पपौ।
विष्णुरेवावतीर्णोऽसौ द्वितीयोऽत्रेः सुतोऽभवत् ॥ (१७।६-७)

२ दत्तात्रेयोऽपि विषयान् योगस्थो बुभुजे हरिः। (१७।१५)

योगयुक्तं महाभागं सर्वत्र समदर्शिनम्।
विष्णोरंशं जगद्धातुरवतीर्णं महीतले। (१८।१३)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दत्तात्रेय के समीप जाते हैं। उस प्रसंग में मंत्री गर्ग ने महात्मा दत्तात्रेय की महिमा का यहां तक उल्लेख किया कि देव-दानवों के युद्ध में देवताओं ने दत्तात्रेय की आराधना की, जिसके फलस्वरूप दत्तात्रेय की दृष्टि मात्र से असुर पराभूत हो गए। वहां भी दत्तात्रेय ने यह स्पष्ट स्वीकार किया कि वे पान और स्त्री में आसक्त थे, अतएव देवों को उनसे याचना न करनी चाहिए थी। किन्तु देवों ने दत्तात्रेय की महिमा बताते हुए कहा—'हे जगन्नाथ, आप निष्पाप हैं। पाप के साथ आपका कोई लेप नहीं। आपका अन्तःकरण विद्या से प्रक्षालित होकर शुद्ध हो गया है, ज्ञान की रश्मियां आपके भीतर प्रविष्ट हैं।[1] यह जो आपकी अर्धांगिनी हैं जगत की माता हैं। वे भी निष्पाप हैं, उन्हें कोई दोष नहीं लगता जैसे सूर्य की अंशुमाला द्विज और चांडाल दोनों का स्पर्श करके भी किसी में आसक्त नहीं होती।[2] दत्तात्रेय की महिमा को आगे बढ़ाते हुए यहां तक कहा गया है कि उनकी पत्नी साक्षात् लक्ष्मी ही थीं।[3]

कथा में एक छोटा सा मोड़ लक्ष्मी के वर्णन के रूप में आया है। कहा है कि असुर लोग दत्तात्रेय की साध्वी पत्नी को देख कर राग से अभिभूत हो गए और उन्हें शिबिका पर चढ़ाकर शिबिका अपने शिर पर रखकर ले जाने लगे। इस पर दत्तात्रेय ने हंसते हुए कहा—'लक्ष्मी के सात स्थान हैं। वह जिसके सिर चढ़ती है उसका नाश ही कर डालती है और उसे छोड़ कर अन्यत्र चली जाती है। लक्ष्मी का सिर पर बैठना अच्छा नहीं' (१८।४७)। देवों ने पूछा—'लक्ष्मी के वे सात स्थान कौन से हैं और उनका क्या फल है?' दत्तात्रेय ने उत्तर दिया—'लक्ष्मी जब पुरुष के चरणों में रहती है तो उसे घर का लाभ कराती है। वह जब उसके कटि प्रदेश तक पहुँचती है तो वस्त्र आदि नाना भोग्य वस्तु प्रदान करती है। जब गुह्य प्रदेश में विराजमान होती है तब पत्नी के द्वारा काम सुख प्रदान करती है। गोद में आई हुई लक्ष्मी का फल उत्तम सन्तान की प्राप्ति है। जब वह हृत् प्रदेश में आती है तो हृदय की उदारता से सब मानोरथों को पूर्ण करती है। कण्ठ देश में आई हुई लक्ष्मी का फल कण्ठ के आभूषण की प्राप्ति एवं अभीष्ट पत्नी, पुत्र, बान्धवादि के साथ कण्ठालिंगन की प्राप्ति है। मुख में विराजमान हुई लक्ष्मी की कृपा का फल वाक्य माधुरी, अप्रतिहत आज्ञा और सुन्दर कवित्व शक्ति का होना है। बस इन सात स्थानों से आगे बढ़कर जब लक्ष्मी सिर पर सवार हो जाती है तो व्यक्ति की कुशल नहीं

१—अनघस्त्वं जगन्नाथ न लेपस्तव विद्यते ।
विद्याक्षालनशुद्धान्तर्निविष्टज्ञानदीधिते ॥ (१८।२९)

२—अनघेयं द्विजश्रेष्ठ जगन्माता न दुष्यते ।
यथांशुमाला सूर्य्यस्य द्विजचांडालसङ्गिनी ॥ (१८।३२)

३—वामपार्श्वस्थितामिष्टामशेषजगतां शुभाम् ।
भार्य्याञ्चास्य सुचार्वङ्गीं लक्ष्मीमिन्दुनिभाननाम् ॥ (१८।३९)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रहती । लक्ष्मी उसे छोड़कर अन्यत्र चली जाती है (१८।४९-५३)।' असुरों के सिर सवार लक्ष्मी ने भी यही किया। वह चट उन्हें छोड़कर दत्तात्रेय के पास लौट आई और असुरों का नाश हो गया।

उन्नीसवें अध्याय में कार्तवीर्य राजा और दत्तात्रेय के संवाद का वर्णन है। उसमें दत्तात्रेय राजा को चक्रवर्ती होने का वरदान देते हैं और उसके बदले में हैहय नरेश दत्तात्रेय की पूजा लोक में प्रवर्तित करते हैं। यहां दत्तात्रेय को एकदम अवतार के रूप में कल्पित किया गया है। कहा है जिस दिन राजा को दत्तात्रेय से राज्य सम्पत्ति का लाभ हुआ था उसी दिन उसने दत्तात्रेय याग का अनुष्ठान किया। उसकी प्रजा भी उसी प्रकार दत्तात्रेय का माहात्म्य मानकर उनके निमित्त यज्ञ का अनुष्ठान करने लगी। दत्तात्रेय विष्णु के ही अवतार हैं। चराचर के गुरु भगवान् विष्णु के अनेक प्रादुर्भाव पुराणों में कहे गए हैं। जो मानव उनके परम रूप का ध्यान करता है वह सुखी होकर संसार के पार हो जाता है।[1]

दत्तात्रेय की जो महिमा इस पुराण में कही गई है उसके पीछे छिपे हुए उनके वास्तविक स्वरूप को ध्यानपूर्वक देखने से पहचाना जा सकता है। मार्कण्डेय में जिस दत्तात्रेय का माहात्म्य हम चरम उत्कर्ष पर देखते हैं उसका पूर्व रूप भागवत के दत्तात्रेय-प्रह्लाद संवाद में प्राप्त होता है (भागवत स्कन्ध ७, अध्याय १३)। नारद ने युधिष्ठिर से यतिधर्मों का निरूपण करने के लिये अवधूत और प्रह्लाद के संवाद का उल्लेख किया है। वहां अवधूत को आजगर मुनि कहा गया है और उनका स्थान सह्याद्रि पर्वत के उस प्रदेश में बताया गया जहां कावेरी नदी की तलहटी है। यह प्रदेश वर्तमान कुर्ग के आसपास हुआ।[2] उस संवाद में अवधूत दत्तात्रेय ने अजगर और मधुमक्खी को अपना गुरु कहा है।

१—दत्तात्रेयाद्दिने यस्मिन् स प्रापर्द्धिं नरेश्वरः।
तस्मिंस्तस्मिन् दिने यागं दत्तात्रेयस्य सोऽकरोत् ॥
तत्रैव च प्रजाः सर्वास्तस्मिन्नहनि भूपतेः।
तस्यर्द्धिं परमां दृष्ट्वा यागञ्चक्रुः समाधिना ॥
इत्येतत्तस्य माहात्म्यं दत्तात्रेयस्य धीमतः।
विष्णोश्चराचरगुरोरनन्तस्य महात्मनः ॥
प्रादुर्भावाः पुराणेषु कथ्यन्ते शार्ङ्गधन्विनः।
अनन्तस्याप्रमेयस्य शङ्खचक्रगदाभृतः ॥
एतस्य परमं रूपं यश्चिन्तयति मानवः।
स सुखी स च संसाराद् समुत्तीर्णोऽचिराद्भवेत् ॥ (१९।३०-३४)

२—अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
प्रह्लादस्य च संवादं मुनेराजगरस्य च।
तं शयानं धरोपस्थे कावेर्यां सह्यसानुनि ॥
(भागवत ७।१३।११-१२)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वे पारमहंस्य धर्म के उपदेष्टा हैं और अजगर के समान जीवन वृत्ति रखने के कारण आजगर मुनि के बिरुद से प्रसिद्ध हुए—'मैं अजगर के समान निश्चेष्ट पड़ा रहता हूं, संयोग से जो मिल जाता है उससे सन्तुष्ट रहता हूं। यदि कुछ नहीं मिलता तो अजगर के समान बहुत दिनों तक निश्चेष्ट रह जाता हूं। कभी थोड़ा खाता हूं, तो कभी बहुत; कभी स्वादिष्ट खाता हूं, तो कभी निरस; कभी सब गुणों से युक्त, कभी सर्वथा गुणहीन; कभी श्रधा से प्राप्त अन्न खाता हूं, तो कभी मान विहीन। जो दिन रात में कभी यदृच्छा से मिल जाता है उसे ही ले लेता हूं। दिष्ट या भाग्य जैसा भोग कराता है उससे ही मन में सन्तुष्ट रहता हूं (दिष्टभुक् तुष्टधीरहम्)। कभी पृथिवी पर घास फूस बिछाकर पड़ रहता हूं, तो कभी महल में पलंग पर गद्दे बिछाकर सोता हूं। कभी स्नान, अनुलेपन, सुवस्त्र, माला और अलंकारों से इस देह को सजाता हूं, तो कभी दिगम्बर ही घूमता हूं। मैं न किसी की निंदा करता हूं, न प्रशंसा। महान् आत्मा के साथ अपनी आत्मा की एकता मुझे इष्ट है।'[1] इन श्लोकों में यदृच्छा और दिष्ट शब्द अवधूत आजगर मुनि के दार्शनिक मत की ओर संकेत करते हैं। प्राचीन भारत में कालवाद, स्वभाववाद, यदृच्छावाद, भूतवाद, आदि अनेक दार्शनिक मत प्रचलित थे। उनकी एक सूची श्वेताश्वतर उपनिषद् में आई है।[2] ये मति या 'दिट्ठियां' कुछ अंशों में एक दूसरे से पृथक् और कुछ अंशों में मिलती जुलती होती थीं। इनके भेद और साम्य की उलझी हुई गुण्डी को सुलझाने की पूरी प्रक्रिया किसी दार्शनिक ग्रन्थ में ही की जा सकती है। यहाँ इतना स्पष्ट है कि जिस अवधूत दर्शन का प्रस्तुत प्रसंग में उल्लेख है उसका संबंध यदृच्छावाद से ज्ञात होता है। मंखलि गोशाल नियतिवाद या भाग्यवाद दर्शन के संस्थापक थे। ऐसे ही अष्टाध्यायी में

१—मधुकर महासर्पौ लोकेऽस्मिन्नो गुरूत्तमौ।
वैराग्यं परितोषश्च प्राप्ता यच्छिक्षया वयम् ॥३४
विरागः सर्वकामेभ्यः शिक्षितो मे मधुव्रतात्।
कृच्छ्राप्तं मधुवद् वित्तं हत्वाप्यन्यो हरेत्पतिम् ॥३५
अनीहः परितुष्टात्मा यदृच्छोपनतादहम्।
नो चेच्छये बह्वहानि महाहिरिव सत्त्ववान् ॥३६
श्रद्धयोपाहृतं क्वापि कदाचित् मानवर्जितम्।
भुञ्जे भुक्त्वाथ कस्मिंश्चिद् दिवा नक्तं यदृच्छया ॥ ३८
क्षौमं दूकूलमजिनं चीरं वल्कलमेव च।
वसेऽन्यदपि संप्राप्तं दिष्टभुक् तुष्टधीरहम् ॥ ३९

(भाग० ७।१३)

२—कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा
भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्यम्।
संयोग एषां नत्वात्मभावात्
आत्माप्यनीशः सुखदुःखहेतोः ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और महाभारत के कई स्थलो में दिष्टवाद भी कहा गया है। धृतराष्ट्र और ययाति दिष्टवाद के अनुयायी थे। यहाँ भी अवधूत मुनि को दिष्टभुक् कहा है। अवश्य ही यदृच्छावाद और दिष्टवाद में निकट का संबंध रहा होगा क्योंकि दोनों की मनोवैज्ञानिक रुचि एक जैसी ही थी।

आजगर मुनि और प्रह्लाद के संवाद का यह उपाख्यान शान्ति पर्व में भी आया है (अध्याय १७२ पूना संस्करण—अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्। प्रह्लादस्य च संवादं मुनेराजगरस्य च ॥)। वहां बोध्य ऋषि इसी प्रकार के अवधूत हैं और वे आजगर व्रत के अनुयायी हैं। मंखलि के निर्वेद और शम के सिद्धान्त में भी वे विश्वास रखते हैं, परन्तु उनका प्रधान लक्ष्य आजगर मुनि का दर्शन ही था जिसकी पहचान यदृच्छावाद से की गई है। बोध्य का कथन है कि पिङ्गला, कुरर, अजगर, भौंरा, इषुकार और कुमारी कन्या ये छह मेरे गुरु हैं।[1] होते होते इन गुरुओं की संख्या चोबीस तक पहुँच गई।[2] शान्ति पर्व में आजगर मुनि को 'प्राज्ञश्चरति बालवत्' कहा गया है, जो तत्त्वज्ञानी के लिये उपनिषद् में कहे हुए बाल्येतिष्ठास्सेत् का स्मरण दिलाता है। आजगर मुनि को नित्य तृप्त, कूटस्थ, मुक्त, हानि लाभ से अतीत, हर्ष और शोक से ऊपर कहा गया है। गीता के दूसरे अध्याय में जिस ब्राह्मी स्थिति का वर्णन है, जिसे प्रज्ञावादी दार्शनिक ब्रह्मज्ञानी के लिये सत्य स्वीकार करते थे, वह अवधूतों की निर्द्वन्द स्थिति का ही उपबृंहण मात्र था। शान्तिपर्व में भागवत के आजगरव्रत संबंधी श्लोकों का लगभग अनुवाद ही है। उसके अतिरिक्त व्रतमिदमाजगरं शुचिश्चरामि—इस टेक के दस श्लोक अति उदात्त भाषाशैली में शान्तिपर्व में दिए गए हैं जो कि प्राचीन अवधूत काव्य के उत्कृष्ट उदाहरण हैं (शान्ति० १७२।२५–३४)।

आजगर व्रत की धार्मिक आचार मीमांसा एवं दार्शनिक सिद्धान्तों का उल्लेख पाली साहित्य में भी पाया जाता है। संखपाल जातक (जातक संख्या ५२४, जातक भाग ५, पृष्ठ १७६) में नागराज संखपाल का चरित्र आजगर व्रत का ही उदाहरण है। महाभारत के श्लोकों और संखपाल धम्मदेसना की गाथाओं में भाव और शब्द दोनों का साम्य पाया जाता है।[3]

१— पिङ्गला कुररः सर्पः सारङ्गान्वेषणं वने। इषुकारः कुमारी च षडेते गुरवो मम॥

२— जिन चौबीस पदार्थों से दत्तात्रेय ने शिक्षा ग्रहण की उन्हें उनका गुरु कहा गया। वे ये हैं—पिंगला, अजगर, वाण बनाने वाला (इषुकार), मधुकर, कुरर पक्षी, कुमारी कन्या (ये छह नाम पुराने ही थे), पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, चन्द्र, सूर्य, बालक, समुद्र, पतंग, हाथी, हरिण, मछली, कबूतर, सांप, शहद निकालनेवाला, मकड़ी, तितली (भाग० ११।७।३२-३४)।

३—यहां एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

दिवि संचरमाणानि ह्रस्वानि च महान्ति च।
ज्योतींषि च महाकालं पतमानानि लक्षये॥ (शान्ति० १७२।१७)

दुमप्फलानेव पतन्ति मानवा दहरा च बुड्ढा च सरीर भेदा। (संखपाल जातक)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यहां जातक, शान्तिपर्व, मार्कण्डेय और भागवत इन चार स्रोतों की सामग्री पर तुलनात्मक विचार करते हुए कुछ निष्कर्ष सामने आते हैं जो इस प्रकार हैं। प्राचीन भारत में यदृच्छावाद के सिद्धान्त का अनुयायी एक दार्शनिक सम्प्रदाय था। वह अवधूत परम्परा की आचार मीमांसा को जीवन का आदर्श मानता था। यह पद्धति लोक और वेद दोनों से पृथक् थी जैसा भागवत में स्पष्ट कहा है (५।११।८)। इस अवधूत दर्शन का घनिष्ट संबंध श्रमण परम्परा से था। कालान्तर में जैन श्रमण परम्परा में हम इसे विशेष रूप से सुरक्षित पाते हैं, यद्यपि उसका एकाधिकार वहीं तक सीमित न था। दत्तात्रेय और अवधूत आजगर मुनि ये दोनों समान चरित्र वाले थे। इनमें धर्मशिक्षण का स्रोत वेद शास्त्र या ग्रन्थ विशेष न होकर लोक का प्रत्यक्ष जीवन ही मुख्य रूप से था। उसीको ये अपना गुरु मानते थे। शान्तिपर्व में आजगर मुनि को लोक में प्रचलित धर्मों के विधान का ज्ञाता कहा गया है (अनुयुक्तः स मेधावी लोक धर्म विधानवित्, १७२।९)। इसका आशय यही है कि इस दर्शन के मानने वालों का श्रुतज्ञान, निजी प्रज्ञा या समझदारी, एवं वृत्ति या आचार, इन तीनों का आधार लोकनय अर्थात् लोक का व्यवहारिक जीवन ही था। निजी अनुभव से तथ्य पर पहुंचने की प्रवृत्ति इन में प्रमुख थी। कही सुनी बात पर इन्हें आस्था न थी। किन्तु ये कर्म में लिप्त न होकर कैवल्य या मोक्ष या निर्वाण मार्ग के साधक थे।

गुरु दत्तात्रेय की पूजा-मान्यता महाराष्ट्र और दक्षिण में अधिक प्रचलित है। संखपाल जातक के अनुसार महिंसक रट्ठ में संखपाल नाम का एक दह या सरोवर था जिससे कण्ण-पण्णा नदी निकलती थी। वहाँ संखपाल नामक नागराज रहता था। पाली महिंसक रट्ठ दक्षिण का महिषक जनपद था। महिषक राष्ट्र की ठीक पहचान के विषय में मतभेद है, किन्तु कृष्णा नदी के प्रदेश में कहीं कर्णाट क्षेत्र में यह होना चाहिए जैसा कि कण्ण-पण्णा नदी के नाम से सूचित होता है। भागवत में अवधूत परम्परा का एक और स्पष्ट सूत्र सुरक्षित रह गया है। वहाँ ऋषभदेव अवधूत परम्परा के प्रतिनिधि हैं और उन्हें आजगर व्रत में आस्थित कहा है।[1] वे गोचर्या, काक चर्या, मृगचर्या में आस्थित की भांति निरपेक्ष जीवन व्यतीत करते हुए रहते थे। भागवत में आगे चलकर और भी स्पष्ट शब्दों में कहा है कि ऋषभदेव जिस परम्परा में थे उसी परम्परा में केशलुञ्चन करने वाला सम्प्रदाय कलियुग में कैवल्य की शिक्षा के लिये प्रचारित हुआ (भागवत ५।६।१-९-१२)। इस वर्णन से यह स्पष्ट है कि अवधूतचर्या और जैनों की निर्ग्रंथ चर्या में घनिष्ट साम्य था, एवं अवधूत सम्प्रदाय और श्रमण सम्प्रदाय में आरम्भ से ही पारस्परिक

१—व्रतमाजगरमास्थितः शयान एवाश्नाति पिबति खादति ·· ···एवं गो मृग काक चर्यया व्रजंस्तिष्ठन्नासीनः शयानः काक मृग गोचरितः पिबति खादत्यवमेहति स्म। इतिनानायोगचर्याचरणो भगवान् कैवल्य यतिर्ऋषभः।

(भागवत ५।६।३२-३४)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संबंध चला आता था। आजगर मुनि का जो भौगोलिक क्षेत्र संखपाल जातक में कहा गया है उसी की ओर ऋषभदेव चरित्र के अन्तर्गत भागवत में भी उल्लेख आया है। भगवान् ऋषभ कोंक[1] (मद्रास के सैलम और त्रिचनापल्ली क्षेत्र), वेंक (उत्तरी अर्काट क्षेत्र), कुटक (माईसोर के अन्तर्गत कुड़ग क्षेत्र) और दक्षिण कर्णाटक (बिलारी, शिमोगा, चितलदुर्ग प्रदेश) में उन्मत्त के समान दिगम्बर वेष में बाल बिखेरे हुए घूमते थे। इन्हीं ऋषभदेव के पुत्र भरत हुए जो माइसोर के पुलहाश्रम या हरिहर क्षेत्र में निवास करने लगे।[2] भागवत के अनुसार भरत का महत्त्व इतना अधिक था कि इन्हीं ऋषभपुत्र भरत के नाम से इस देश का नाम भारतवर्ष हुआ। भरत से पूर्व वह अजनाभवर्ष कहलाता था।[3] भरत पूर्ण मात्रा में और अपने पिता से भी कुछ अधिक अवधूतपरम्परा के अनुगामी थे। भागवत के अनुसार वे जड़, अन्ध, बधिर स्वरूप में रहकर सूखे पत्ते, घास, वेल आदि से निर्वाह करते थे। इसी प्रदेश में प्राचीन श्रमणपरम्पराओं की बलवती लोकमान्यता को प्रत्यक्ष कराने वाली ऋषभपुत्र बाहुबली की विशाल प्रतिमा का निर्माण हुआ।[4] यद्यपि अब इस विशाल मूर्ति का संबंध साक्षात् जैन धर्म से है, किन्तु आजगर व्रत, श्रमण धर्म, यदृच्छावाद, एवं अवधूत पारमहंस्य धर्म की दीर्घकालीन परम्परा और प्राचीनता के बिखरे हुए सूत्रों की पृष्ठभूमि में ही कामविजयी अवधूत बाहुबलि की प्रतिमा का सांस्कृतिक महत्त्व समझा जा सकता है। वह दक्षिण के उस प्रदेश में चिर स्थापित अवधूत श्रमण मान्यता की प्रतिनिधि प्रतीक है भागवत के अनुसार आजगर मुनि दत्तात्रेय उस प्रदेश में रहते थे जहाँ सह्याद्रि

१—तस्य ह वा एवं मुक्तलिंगस्य भगवतः ऋषभस्य योगमाया वासनया देह इमां जगतीमभिमानाभासेन संक्रममाणः कोंकं वेंकं कुटकान् दक्षिणकर्णाटकान् देशान् यदृच्छयोपगतः कुटकाचलोपवन आस्यकृताश्मकवल उन्माद इव मुक्तमूर्धजोऽसंवीत एव विचचार। (भागवत ५।६।७)
इसके आगे कहा है कि ऋषभदेव दावानल में पड़कर भस्म हो गए। तब कलियुग में कोंक, वेंक और कुटक देश के राजा ने ऋषभदेव के चरित्र के विषय में सुनकर और स्वयं उसमें शिक्षित होकर केश लुञ्चनादि आचार से युक्त मार्ग का प्रचार किया। राजा ने किसी अर्हत् से शिक्षा ग्रहण की थी। यह कोई कर्णाटक प्रदेश का विशिष्ट शक्तिशाली राजा होना चाहिए।

२—माइसोर में तुंगभद्रा और हरिद्रा नदी के संगम पर हरिहर क्षेत्र प्रसिद्ध तीर्थ है। यह उस प्रदेश का केन्द्र स्थान है जिसका वर्णन संखपाल जातक एवं भागवत में आजगर मुनि तथा आजगर व्रतधारी ऋषभदेव के वर्णन में आता है।

३—अजनाभं नामैतद्वर्षम् भारतमिति यत आरभ्य व्यपदिशन्ति (भागवत ५।७।३)।

४—यह मूर्ति अवधूत जीवन की सच्ची प्रतिनिधि है। यह श्रवण बेलगोल स्थान में बनाई गई थी। कन्नड़ भाषा में बेलगोल शब्द का अर्थ श्वेत सरोवर या धवल सर है। उसी भाषा में गोम्मट का अर्थ है कामदेव। मूर्ति के संस्थापक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के साथ कावेरी का संबंध है (भा० ७।१३।१२)।[१] यह भौगोलिक क्षेत्र भी दक्षिण कर्णाट में ही हुआ।

संखपाल जातक में चन्द्रक पर्वत के पास जिस सरोवर का उल्लेख है वही अवधूत बाहुबलि की प्रतिमा का स्थलक्षेत्र चन्द्रगिरि और उसके समीप का श्वेत कमलों से भरा हुआ महासरोवर है जिसे कन्नड़ भाषा में बेलाल कहते हैं।

इस ऐतिहासिक विवेचन का अभिप्राय यह है कि जिस क्षेत्र में नागराज संखपाल, आजगर मुनि, अवधूत ऋषभदेव एवं भरत की परम्परा चली आती थी उसी क्षेत्र में उन सबकी समष्टि से भागवतों ने दत्तात्रेय के स्वरूप की उद्भावना की। दत्तात्रेय अवधूत आदर्श के सबल प्रतीक हैं। भागवत और शान्तिपर्व में आजगरमुनि का ही नामोल्लेख है, किन्तु टीका में आजगरमुनि की पहचान दत्तात्रेय से की गई है। ऊपर कहा जा चुका है कि भागवतों ने प्रवृत्ति और निवृत्ति की उभय परम्पराओं को सर्वांग रूप में अपनाया था (पृ० ९)[२]

सेनापति चामुंडराय गंगनरेश मारसिंह के मंत्री और सेनापति थे। प्रतापी सम्राट मारसिंह जैन धर्म के लिये दूसरे अशोक के समान हुए। भागवत में कोंक, वेंक, कुटक के जिस राजा का उल्लेख है और जिसने अर्हत् नाम गुरु से धार्मिक शिक्षा ली थी वे मारसिंह नरेश (९६३-९८३) ही ज्ञात होते। उन्होंने जैन धर्म की आस्था में सल्लेखन द्वारा अपने प्राण दे दिए थे। भागवत का यह कहना कि राजा ने अर्हत् नाम के गुरु से शिक्षा ली सार्थक है, क्योंकि गंगवंश के जैन राजा जिन्होंने आचार्य सिंहनन्दी के प्रभाव से जैनधर्म ग्रहण किया था आरम्भ से ही अपने आप को अर्हद् भट्टारक की कृपा का अनुगृहीत मानते थे। मारसिंह के कुदलर ताम्रपत्र में इसका स्पष्ट उल्लेख आया है (एस० आर० शर्मा, जैनिज्म एन्ड कर्नाटक कल्चर, पृ० १५)।

१—प्रह्लादस्य च संवादं मुनेराजगरस्य च।
तं शयानं धरोपस्थे कावेर्यां सह्यसानुनि ॥

२—प्रवृत्ति और निवृत्ति के समन्वय प्रधान दृष्टिकोण के सूचक कुछ अन्य प्रमाण ये हैं—
प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम्। (भागवत ७।१५।४७);
प्रवृत्तौ च निवृत्तौ च योनिरेतद् भविष्यति।
ऋग्यजुःसामभिर्जुष्टमथर्वांगिरसैस्तथा ॥ (शान्ति० ३२२।३७)
निवृत्तं चास्थितो धर्मं क्षेमी भागवतप्रियः।
प्रवृत्ति धर्मान् विदधे स एव भगवान् प्रभुः ॥
कथं प्रवृत्ति धर्मेषु भागार्हा देवताः कृताः।
कथं निवृत्तिधर्माश्च कृता व्यावृत्त बुद्धयः ॥ (शान्तिपर्व १२७।१)
एते वेदविदो मुख्या वेदाचार्याश्च कल्पिताः।
प्रवृत्ति धर्मिणश्चैव प्राजापत्येन कल्पिताः ॥ (शान्ति० १२७।६२)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इनमें दत्तात्रेय निवृत्ति मार्ग के प्रतीक हुए। पारमहंस्य धर्म, निर्वाण, आदर्श, नैःश्रेयस मार्ग, अध्यात्मयोग, औपनिषद धर्म—इनमें कभी कुछ स्वल्प अन्तर रहे हों तो भी कालक्रम से वे सब एक महाधारा में मिलकर निवृत्तिप्रधान वैदिकमार्ग के नाम से प्रख्यात हुए। शंकराचार्य ने इसी पारमहंस्य धर्म की सर्वविध विशेषताओं और आदर्शों को स्वीकार करते हुए हिन्दूधर्म के क्षेत्र में भी श्रमण सम्प्रदाय के समकक्ष दशनामी संन्यसियों के संघ की स्थापना की। इनके संगठन में आचार्य या गुरु-तत्त्व का पर्याप्त महत्त्व रक्खा गया जो दत्तात्रेय मत के चतुर्विंशति गुरुओं का स्मरण दिलाता है।

दत्तात्रेय का व्यक्तित्व दिव्य है। उन्हें विष्णु का अवतार मानना भागवत दृष्टिकोण के अनुकूल था। किन्तु अवधूत जीवन की निर्मर्याद आचार पद्धति भी उस परम्परा के साथ जुड़ी हुई थी। दत्तात्रेय के मुख से ही मानो उनके भीतर का अवधूत इस उच्छृङ्खल चर्या को स्वीकार करता है,[1] पर भागवत नेता यही कहते हैं—

अनघस्त्वं जगन्नाथ न लेपस्तव विद्यते ।
विद्याक्षालनशुद्धान्तर्निविष्टज्ञानदीधिते ॥
(१८।२९)

'हे जगत्प्रभु, आप निष्पाप हैं। आप में पाप (कषय या आस्रव) का कोई लेप नहीं है। विद्या से आपका अन्तः करण प्रक्षालित है और ज्ञान (कैवल्य या बोधि) की रश्मियां आपके भीतर प्रकाशित हैं।'

दत्तात्रेय की सहचारिणी स्त्री को उनकी नियमानुगा पत्नी पुराणकार ने खुलकर नहीं कहा। वह उनके साथ रहनेवाली 'योषित्' है जिसके संग से वे

सप्तैते मानसाः प्रोक्ताः ऋषयो ब्रह्मणः सुताः ।
स्वयमागत विज्ञानाः निवृत्तिं धर्ममास्थिताः ॥ (शान्ति० ३२७।६५)

एते योगविदो मुख्याः सांख्यधर्मविदस्तथा ।
आचार्या मोक्षशास्त्रे च मोक्षधर्मप्रवर्तकाः ॥ (शान्ति० ३२७।६६)

यो यथा निर्मितो जन्तुर्यस्मिन् यस्मिंश्च कर्मणि ।
प्रवृत्तौ वा निवृत्तौ वा तत्फलं सोऽश्नुतेऽवशः ॥ (शान्ति० ३२७।६८)

निवृत्तिं चास्थितो धर्मं गतिमक्षयधर्मिणाम् ।
प्रवृत्ति धर्मान् विदधे कृत्वा लोकस्य चित्रताम् ॥ (शान्ति ३२७।८८)

निवृत्तिलक्षणो धर्मस्तथाभ्युदयिकोपि च ॥ (शान्ति० ३२८।३४)

१—मद्यासक्तोऽहमुच्छिष्टो न चैवाहं जितेन्द्रियः ।
कथमिच्छथ मत्तोऽपि देवाः शत्रुपराभवम् ॥ (१८।२८)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उच्छिष्ट हो जाते हैं।[1] किन्तु देवता यही कहते हैं—

अनघेयं द्विजश्रेष्ठ जगन्माता न दुष्यते ।
यथांशुमाला सूर्यस्य द्विजचंडालसंगिनी ॥

(१८।३२)

इस शब्दावली के पीछे सहजयान मार्ग की 'मुद्रायोषित्' को तुरन्त पहचाना जा सकता है। साधना के लिये अंगीकृत योषित् 'मुद्रायोषित्' कही जाती थी। चतुर्भाणी ग्रंथ के अन्तर्गत पादताडितकं नामक भाण में, जिसकी रचना पांचवीं शती ई० में सम्राट् कुमारगुप्त महेन्द्रादित्य के राज्यकाल में हुई, मुद्रितयोषा का स्पष्ट उल्लेख आया है—

तदुपालप्स्ये तावदेनम्—भो भागवतनिरपेक्ष करुणात्मकस्य भगवतो मैत्रीमादाय वर्तमानस्य त्वयि मुद्रितायां योषिति युक्तमुपेक्षाविहारित्वम् (पादताडितकं पृ० २२)।

'तो इसपर फबती कसूँ। अरे भागवत निरपेक्ष (अथवा भागवतों से बचने वाले), करुणात्मा भगवान् बुद्ध की मैत्री के अनुसार आचरण करनेवाले तुम्हें मुद्रित (अनुरक्त, कामशास्त्र की मुद्राओं से युक्त) उस स्त्री के प्रति क्या तेरा उपेक्षा विहार (अनुरागहीन आचरण) ठीक है?' 'भागवत निरपेक्ष' शब्द में बड़ा व्यंग्य है। सहजयानी साधक स्वयं तो मुद्रायोषित् की साधना करते, पर भागवतों पर कटाक्ष करते अथवा भागवतों से कतराते थे। उस मुद्रायोषित् को वे डोम्बी, चांडाली आदि संज्ञाओं से अभिहित करते थे। पुराणकार ने उन्हीं की शब्दावली का उपयोग करते हुए मुद्रायोषित् को द्विज चंडाल संगिनी और जगन्माता कहा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रमण, सहजयान, अवधूत, भागवत—कई विचारधाराओं के सूत्रों के एक में मिलने से दत्तात्रेय के प्रतीक का निर्माण हुआ। जहां अवधूतों का वर्णन है वहां उन्हें जड़ मूक बधिर उन्मत्त आदि विशेषण भी दिए गए हैं (भाग० ५।६।७० ; ५।९।३ आस्यकृताश्मकवल उन्मत्त इव विकीर्णमूर्धज असंवीत ; ५।५।२९ जडान्धमूकबधिर पिशाचोन्मादकवदवधूत आत्मानमुन्मत्तजडान्धबधिरस्वरूपेण दर्शयामास लोकस्य)। जड़भरत, जड़मुनि नामों में यही संकेत है। अवधूतचर्या की यह विशेषता अथर्ववेद के ऐतशमुनि के प्रलाप का स्मरण दिलाती है जहां कुन्तापसूक्तों में ऐतश के साथ महानग्नी का भी वर्णन है (अथर्व २०।१३४-१३६।११)। वहां महानग्न अवधूत को पीवर और महानग्नी को पीवरी कहा गया है। भागवत में भी अवधूत भरत के

१—सत्यमेतत् सुरा विद्या मंमास्ति समदर्शिनः ।
अस्यास्तु योषितः संगादहमुच्छिष्टतां गतः ॥
स्त्रीसम्भोगो हि दोषाय सातत्येनोपसेवितः ।
एवमुक्तास्ततो देवाः पुनर्वचनमब्रुवन् ॥ (१८।३०-३१)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पीवरतनु कहा है (५।१०।१, ६)। अवधूत और उसकी योषित् व्रात्य के समान सब विधि निषेधात्मक व्रतों से ऊपर समझे जाते थे; अतएव उन्हें उच्छिष्ट और चंडाली कहा गया। सम्भावना यही है कि अवधूत परम्परा के प्राचीन मूल सूत्र अथर्व वेद के ऐतशमुनि और व्रात्य से मिले हों।

मार्कण्डेय के प्रस्तुत प्रसंग में दत्तात्रेय से योग की उपलब्धि करने वाले अलर्क हैं। अतएव अलर्क के जन्म और उसकी माता मदालसा की कथा कुछ विस्तार से दी गई है। मदालसा स्वर्ण युग के उदात्त नारी आदर्शों की मूर्तिमती प्रतिमा है। शत्रुजित् नाम का राजा था।[1] उसका पुत्र ऋतध्वज हुआ। वह रूपवान्, शूर, मानी, विद्वान्, और बहुत कम बोलने वाला था (अनापृष्टकथः, २०।२०)। पाताल के अश्वतर नाग के दो पुत्र उसके मित्र हो गए। वे उस से मिलने के लिये नित्य आया करते। एक बार पिता के पूछने पर उन्हों ने अपने मित्र का परिचय दिया और उसके गुणों का कीर्तन किया। सुनकर अश्वतर ने कहा—'वह पिता पुण्यवान् है जिसके पुत्र के गुणों की प्रशंसा गुणी लोग परोक्ष में करते हैं। कहीं शास्त्र के जानने वाले आचार रहित होते हैं और कहीं शास्त्र न जानने वाले बड़े शीलवान् होते हैं। तुम्हारा वह मित्र अति धन्य है जिस में शास्त्र और शील दोनों का मेल है। हे पुत्रो, क्या तुमने कभी उसकी किसी इच्छा की पूर्ति की? हमारे घर में जो सुवर्णादि रत्न या वाहन हों उन्हें उन्मुक्त हृदय से तुम उसे दे सकते हो।' पुत्रों ने कहा—'वह सब प्रकार कृतकृत्य है। हम लोग उसे क्या दे सकते हैं? उसके भवन में जैसे रत्नादि हैं वे पाताल या नागलोक में नहीं हैं। उसके पास जो विज्ञान है वैसा अन्यत्र है ही नहीं। उसके लिये एक ही बात की जा सकती है, पर ब्रह्मा विष्णु शिव के अतिरिक्त उसकी पूर्ति असम्भव है।' पिता ने कुतूहल से पूछा—'वह क्या है, कहो। देवत्व, अमरेशत्व या उनसे पूजनीय ब्रह्मत्व आदि मनोरथ भी दृढ़ संकल्प के मानव प्राप्त कर लेते हैं। द्युलोक और पृथिवी में ऐसा कुछ भी अविज्ञात, अगम्य, अप्राप्य नहीं है जिसे मन और इन्द्रियों के संयम से युक्त मनुष्य प्राप्त न कर सके। कर्म ही मुख्य है। चलती हुई चींटी सहस्रों योजन चली जाती है, बिना चले गरुड़ भी एक पैर नहीं जा पाता।'

पुत्रों ने कहा—'हे पिता, उसने अपनी कुमार अवस्था की यह घटना हमें बताई है। उसके पिता के यहां गालव नाम के ऋषि एक उत्तम अश्व लेकर आए और राजा से कहा—'कोई दैत्य हमारे आश्रम पर आक्रमण करके उसका नाश करता है। हम मुनि होकर उस पर क्रोध नहीं कर सकते। एक बार हमने अति दुखी मन से उस असुर को देखकर आकाश में गहरी निःश्वास छोड़ी, तब यह अश्व आकाश से नीचे आया और आकाशवाणी हुई कि यह अश्व सारे भूमंडल में और सूर्यतक भी जा सकता है। इसकी सर्वत्र अप्रतिहत गति है। भूवलय में

१—जैन आख्यानों की यह पद्धति थी कि जहां किसी राजा का विशेष नाम नहीं देना होता वहां उसे 'शत्रुजित्' राजा कह दिया जाता था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गमन करने के कारण इसका नाम कुवलय है। शत्रुजित् राजा का पुत्र ऋतध्वज इस पर चढ़कर उस असुर का वध करेगा जो तुम्हें कष्ट पहुँचाता है। इसलिए मैं तुम्हारे पास आया हूँ कि तुम अपने पुत्र को धर्म का उद्धार करने की आज्ञा दो। (२०।४१–५५)।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है (पृ० १७) यह उपाख्यान मार्कण्डेय समास्यापर्व में भी आ चुका है। वहां अश्वका नाम धुन्धु है। वह उत्तंक ऋषि के आश्रम में विघ्न करता था। राजा बृहदश्व का पुत्र कुवलाश्व नारायणीय तेज की सहायता से धुन्धु का वध करके धुन्धुमार बिरुद प्राप्त करता है। वहां इस उपाख्यान को विष्णु का समनुकीर्तन कहा है। ऐसा ज्ञात होता है कि राजस्थान की मरुभूमि की ओर वैष्णव भागवत धर्म का जो प्रचार हुआ उसी का इस कथानक में संकेत है (भारत सावित्री, भाग १, पृ० २७२)। मार्कण्डेयपुराण में उसी उपाख्यान के कुछ तन्तुओं को स्वीकार करके कथा का ठाठ कुछ और ही कर दिया है। कुवलाश्व का अर्थ था कुवल या बेर के समान उन्नाबी रंग का घोड़ा। यहां उसे कुवलयाश्व कर दिया है (ऐसा अश्व जो भूवलय का चक्कर लगा सके)।

नागपुत्रोंने कहा—'राजकुमार अश्व पर चढ़ कर गालव के आश्रम में पहुँचा। उसकी उपस्थिति से अनभिज्ञ असुर शूकर का रूप बनाकर गालवजी का घर्षण करने के लिये आया।'

कथा के इन दो अभिप्रायों में दो युगों के ऐतिहासिक तथ्यों का संकेत अन्तर्निहित ज्ञात होता है। शुंगकाल में यवनों ने मेनन्द्र-दिमित्र के नेतृत्व में पहले मद्र-शाकल को आक्रान्त किया। फिर दोफंकी धावा करते हुए पूरब में मथुरा-साकेत-पाटलिपुत्र तक और पश्चिम-दक्षिण में राजस्थान की मध्यमिका नगरी तक उन्होंने सैनिक अभियान किया जिसकी अनुश्रुति पतंजलि के इन वाक्यों में सुरक्षित है—अरुणद् यवनः साकेतम्, अरुणद् यवनो मध्यमिकाम् (भाष्य ३।२।१११)। मरुभूमि के उस धुन्धु का वध कुवलाश्व के द्वारा होता है। गुप्तयुग में राजस्थान पर इसी प्रकार का राजनैतिक संकट पुनः आया। ईरान के सासानी सम्राट् शापुर द्वारा भारत की मरुभूमि की ओर अभियान का उल्लेख उसके पैकुलि लेख में आया है। यहां गालवमुनि का आश्रम मरुभूमि का प्रतीक है। जयपुर नगर के बाहर पर्वतों में गालवमुनि का आश्रम है जो अब गलता तीर्थ कहा जाता है। वराह-रूप-धारी असुर पुराण की भाषा में सासानी सम्राट् का प्रतीक है जिनके ध्वज और मुद्राओं पर वराह का चिह्न प्रयुक्त होता था। समुद्रगुप्त का पारसीकों के विरुद्ध स्थल-मार्ग से अभियान इस पृष्ठ भूमि में सार्थक हो जाता है। वह सम्राट् शापुर का समसामयिक ही था।

अस्तु। इस पुराण में कथा का वास्तविक उद्देश्य तो मदालसा के चरित को ऊपर उभारना है। पुत्रों ने आगे कहा —'वह शूकर उस राजपुत्र को वन में ले

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जाकर स्वयं अदृश्य हो गया, और राजकुमार एक गर्त में प्रविष्ट होकर पाताल में जा निकला। वहाँ उसने एक प्रासाद में अति सुन्दरी कन्या देखी। दोनों एक दूसरे पर मोहित हो गए। उसकी सखी कुंडला ने बताया कि वह विश्वावसु गन्धर्व की पुत्री मदालसा थी। मदालसा को अपना परिचय देते हुए कुमार ने कहा—'मैं देव नहीं, दानव नहीं, नाग नहीं, गन्धर्व नहीं, किन्नर नहीं, मैं मनुष्य हूँ।' ये शब्द उस युग में मनुष्य विषयक आस्था के सूचक हैं। तब गन्धर्व कुलगुरु तुम्बरु ने आकर उन दोनों का विवाह करा दिया।

उस अवसर पर कुंडला ने जो कहा उसमें गुप्तयुग की स्त्रीभावना का सारांश है—'हे विपुलप्रज्ञ, आप जैसों को पुरुष भी उपदेश नहीं दे सकते, स्त्री की तो बात क्या है? पर अपनी इस प्रिय सखी के स्नेह से कुछ स्मरण कराती हूं। पति को सदा भार्या की रक्षा और भरण करना उचित है। धर्म अर्थ काम की सिद्धि के लिये पत्नी पति की सहायक बनती है। जब भार्या और भर्ता एक दूसरे के वश में हो कर रहते हैं तभी धर्म अर्थ काम इन तीनों का मेल होता है। पत्नी के बिना पुरुष को धर्म अर्थ या काम की प्राप्ति कैसे संभव है? ऐसे ही पत्नी को पति के बिना धर्मादि नहीं मिल सकते। दोनों के सम्मिलित दाम्पत्य भाव में ही त्रिवर्ग का निवास है। देव पितृ अतिथि भृत्य आदि की आराधना पत्नी के बिना कोई नहीं कर सकता। मनुष्य को धन मिल जाय और वह उसे घर में भी ले आवे, पर स्त्री के बिना या निन्दित पत्नी से वह धन भी नष्ट हो जाता है। यह तो स्पष्ट ही है कि पत्नी के बिना काम की सिद्धि नहीं है। दम्पति के सहधर्माचरण से ही त्रयी धर्म की प्राप्ति होती है[१] (२१।६८-७१)।

विवाह के बाद जब कुमार अपनी पत्नी के साथ अश्वपर बैठ कर चलने को हुआ तब असुरों ने उस पर आक्रमण किया। पर कुमार ने अपने बाणों की वृष्टि द्वारा लीला से ही उन्हें परास्त कर दिया। कुमार ने लौट कर पिता को प्रणाम किया। उसका हाल जान कर पिता प्रसन्न हुए और उन्होंने सत्पुत्र की प्रशंसा में एक प्रशस्ति कही जो उस युग की भावनाओं की सूचक है। (२१।९१-१००)।

समय बीतने पर राजा ने कुमार से कहा—'वत्स, पृथिवी में सैकड़ों दुर्वृत्त दानव हैं। जाओ और ढूँढ ढूँढ कर उनका वध करो।' पिता की आज्ञा ले कर पुत्र पृथिवी में घूमने लगा। एक बार यमुना तट पर उसने तालकेतु नामक मायावी दानव को देखा जो मुनि वेष में रहता था। उसने राजा के साथ अपने पहले वैर का स्मरण करके कुमार से कहा—राजपुत्र मैं धर्म के लिये यज्ञ करना चाहता हूँ। अपना यह सोने का कंठ-आभूषण मुझे दे दो और जब तक मैं भगवान् वरुण की पूजा करके लौटूं तबतक मेरे आश्रम की रक्षा करो। राजकुमार ने

१—कालिदास इसी शब्दावली का प्रयोग कर रहे हैं—अनेन भर्त्रा सह धर्मचर्या कार्या त्वया मुक्तविचारयेति (कुमार० ७।८३)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वैसा ही किया। वह दुष्ट वहाँ से अदृश्य हो कर मदालसा के सामने पहुँच कर कहने लगा—'भद्रे', तुम्हारा पति कुवलयाश्व तपस्वियों की रक्षा के लिये किसी असुर से युद्ध करता हुआ मेरे आश्रम के पास पहुँचा। असुर ने उसकी छाती में शूल का प्रहार किया। उससे मरण दशा को प्राप्त हो कर उसने मुझे अपना यह कंठ का आभूषण दिया। वन में शूद्र तापसों ने उसका दाह संस्कार कर दिया है। वही दानव उसका अश्व भी हर ले गया।'

यह सुनते ही मदालसा शोक से मूर्च्छित हो गई। और उसने प्राण त्याग दिए। राजकुल में बड़ा विलाप हुआ। राजा ने सबको दुःखी देख कर कहा—'आप लोग दुःखी न हों। संसार के सब सम्बन्ध अनित्य हैं। मैं पुत्र और पुत्रवधू का क्या शोक करूँ, वे अशोच्य हैं। पुत्र ने द्विजों की रक्षा के लिये अपने प्राण दिए। उस वधू ने पति के अतिरिक्त और किसी को देवता न माना। पति का मरण सुन कर वह उसी क्षण पति की अनुगामिनी हो गई। वह किसी प्रकार शोक के योग्य नहीं। जो वियोगिनी रहती हैं वे शोच्य हैं, सहमरण करने वाली नारियाँ शोचनीय नहीं। इस लोक में और परलोक में सब सुखों के प्रदाता पति को कौन स्त्री मनुष्य करके मानेगी? उस पुत्र ने अपनी सती जननी को और मुझे भी ब्राह्मणों के और धर्म के लिये अपने प्राण दे कर धन्य कर दिया।'

उधर तालकेतु ने लौट कर कुमार से कहा—'हे राजपुत्र, आप जाइए। आप ने मेरा कार्य करके मुझे कृतार्थ किया। मेरा वारुण यज्ञ समाप्त हुआ और जो इच्छा थी पूरी हुई।' तब राजकुमार अश्व पर चढ़ कर अपने नगर को लौट आया। वहाँ उसने सब पुरवासियों को दुखी देखा। तब पिता से उसे मदालसा की मृत्यु का वृत्तान्त ज्ञात हुआ। सुन कर उसने सोचा—'वह बाला धन्य थी जिसने मुझे मृत जान अपने प्राण त्याग दिए। मैं निष्ठुर हूं जो उसके बिना जीवित हूँ।' वह फिर सोचने लगा—'वह मेरे लिये मर गई, पर यदि मैं भी उसके लिये जीवन दे दूँ तो उसका क्या उपकार करूँगा? यदि दीन बन कर रोने लगूँ तो भी अशोभन है। मैं पुरुष हूँ। मैं शोक से जड़ नहीं बनूँगा। मेरा एक ही कर्तव्य है, मैं उस प्रियतमा के अभाव में स्त्री के भोग का त्याग करूँगा।' यह सोचकर उसने उसके लिये जलांजलि दी एवं और्ध्वदेहिक क्रिया करके प्रतिज्ञा की—'यदि वह मदालसा मेरे लिये नहीं है तो इस जन्म में और कोई स्त्री मेरी सहचारिणी नहीं बनेगी। उस गन्धर्व पुत्री के अभाव में अब कोई स्त्री मेरे लिये नहीं है। सद्धर्मचारिणी उस पतिव्रता को खो कर अब मैं और किसी को अंगीकार नहीं करूँगा। यही मेरी सत्य प्रतिज्ञा है' (२३।१९-२१)।

पुत्रों ने कहा—'हे तात, यह प्रतिज्ञा लेकर वह समस्त स्त्री भोगों से विमुख रहने लगा है। उसका यह कठिन कार्य उसी के लिये सम्भव है। देवता भी ऐसा नहीं कर सकते, औरों की तो बात क्या?' पुत्रों की बात सुनकर नागराज ने कहा—'ऐसा करना अशक्य है, यदि इस बुद्धि से मनुष्य कर्म में उद्योग छोड़

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दूँ तो उद्योग की हानि होगी। मनुष्य को चाहिए कि अपने पौरुष की हानि किए बिना कर्म करे। कर्म के फल की सिद्धि दैव और पुरुषार्थ दोनों पर निर्भर है। अतएव मैं ऐसी तपश्चर्या करूँगा जिससे शीघ्र ही इस परिस्थिति का कोई मार्ग निकल आवे।'[1] यह कहकर वह नागराज हिमालय के प्लक्षावतरण तीर्थ में तप करने लगा और नियताहार रहकर उसने सरस्वती की स्तुति की।

अश्वतर नाग का यह सारस्वत स्तोत्र अति भव्य है। गुप्त युग में जैन, बौद्ध, ब्राह्मण तीनों धर्मों में उत्तम स्तोत्रों की विशेष रचना हुई। मार्कण्डेयपुराण में ही कुछ अति विशिष्ट स्तोत्रों का संग्रह है, जैसे ब्रह्माकृत योगनिद्रा की स्तुति (८१।५४-६१), शक्रादि देवताओं द्वारा देवीस्तोत्र (८४।२-२२), देवों द्वारा पार्वतीस्तोत्र (८५।७-३४), देवों द्वारा कात्यायनीस्तोत्र (९१।२-३३), शान्ति-कृत अग्निस्तोत्र ९९।२८-७०), अदितिकृत सूर्यस्तोत्र (१०४।१८-२९), ब्रह्माकृत सूर्यस्तोत्र (१०३।५-१२), विश्वकर्माकृत सूर्यस्तोत्र (१०७।२-११), ब्राह्मणों द्वारा किया हुआ सूर्यस्तोत्र (१०६।६२-७४)। उस युग में भारत से बाहर सासानी ईरान में भी स्तोत्रशैली का व्यापक प्रचार था। पहलवी दीनकर्द में भी देव अहुरमज्दा के लिये सुन्दर भावनापूर्ण स्तोत्रों का समावेश है (दीन० २।८१, ३।३०)। इन स्तोत्रों में देव की शक्ति और गुणों का चुने हुए शब्दों में उल्लेख किया जाता था। सद्धर्मपुंडरीक, गंडव्यूह आदि बौद्ध संस्कृत साहित्य में भी स्तोत्रों का महत्वपूर्ण स्थान है। मार्कण्डेय पुराण के स्तोत्रों का तुलनात्मक अध्ययन करने से कई बातें स्पष्ट होती हैं। एक ओर इन स्तोत्रों की पृष्ठभूमि वैदिक थी। दूसरे इनका दृष्टिकोण समन्वयात्मक था। एक ही अखंड देवतत्त्व की महिमा का गुणवर्णन समान भावों और शब्दों में किया जाता था। देवतत्त्व के स्वरूप की प्रख्यापना के अभिप्राय पुनः पुनः वे ही होते हैं। तीसरे प्रत्येक देव की निजी विशेषताओं का गुणगान भी उन-उन स्तोत्रों में किया जाता था।

देव की महिमा ही लोक है। वह देवतत्त्व क्या है? इस प्रश्न पर मन की समाधि से विचार करते हुए भारतीय प्रज्ञा का उत्तर है कि शक्तितत्त्व ही देवतत्त्व है। इस विश्व में शक्ति के अतिरिक्त और कहीं कुछ नहीं है। चिति-शक्ति ही परम देवता है। वही आत्मा है। उसे ही अक्षर कहते हैं क्योंकि वह नित्य और अविनाशी है। जो शक्ति का अक्षर रूप है वही भौतिक क्षर भाव में आता है, जैसा ऋग्वेद के अस्यवामीय सूक्त में कहा है—

ततः क्षरत्यक्षरं तद्विश्वमुपजीवति।

(ऋक् १।१६४।४२)

१—यद्यशक्यमिति ज्ञात्वा न करिष्यन्ति मानवाः।
कर्मण्युद्यमसुद्योग हान्या हानिरततः परम्॥
आरभेत नरः कर्म स्वपौरुषमहापयन्।
निष्पत्तिः कर्मणो दैवे पौरुषे च व्यवस्थिता॥ (२३।२५—२६)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अक्षर प्राणतत्त्व अर्थात् अविनश्वर शक्तितत्त्व ही क्षरित होकर भूत या स्थूल बनता है। अभिव्यक्त या प्रकट होना ही उसका क्षरण है। यही विश्व का उपजीवन या उपादान कारण है। अक्षर-शक्ति-तत्त्व ही विश्वरूप में अभिव्यक्त हो रहा है। किन्तु वह देवतत्त्व अतीव गूढ़ है। उसकी सृष्टि-प्रक्रिया रहस्यमय है। कैसे वह अव्यक्त देव व्यक्त भाव में आता है, यही विज्ञान और दर्शन की पहेली है। यहीं से जैमिनि का पहला प्रश्न आरम्भ हुआ था—सब व्यक्त भावों का आधार, सब कारणों का परम कारण वह निर्गुण तत्त्व सगुण कैसे हुआ—

कस्मान्मानुषतां प्राप्तो निर्गुणोऽपि जनार्दनः ।

(४।३१)

विश्व का प्रथम प्रश्न और अन्तिम प्रश्न यही है। यह पहेली है। न आरम्भ में और न अन्त में इसका कहीं समाधान है। बुद्धि के खंडात्मक चिन्तन से इसका उत्तर नहीं दिया जा सकता। हृदय की अनुभूति इस प्रश्न का समाधान कर सकती है। परम देव-तत्त्व या शक्ति-तत्त्व समुद्र के समान है। जैसा गोसाईं जी ने कहा है—हृदय समुद्र है, बुद्धि उसमें पड़ी हुई सीपी है (हृदय सिन्धु मति सीपि समाना, १।११।८)। हृदयरूपी समुद्र से ही उस अव्यक्त समुद्र शक्ति का अनुभव किया जा सकता है। मन के खंड भाव में उस अखंड तत्त्व की अनुभूति संभव नहीं। वैदिक ऋषियों ने महतोमहीयान् देवतत्त्व के विषय में यह सिद्धान्त स्थिर किया कि वह सत् और असत् दोनों भावों से अतीत है। दूसरी ओर यह क्षर विश्व उसी परम अक्षर ब्रह्म की अभिव्यक्ति है। पुराणलेखकों ने इस सिद्धान्त को बार बार दोहराया है—

अक्षरं परमं ब्रह्म विश्वं चैतत् क्षरात्मकम् ।

(२३।३३)

सदसद् देवि यत् किंचिन्मोक्षवच्चार्थवत्पदम् ।
तत्सर्वं त्वय्यसंयोगं योगवद्देवि संस्थितम् ॥

(२३।३१)

इसे और भी स्पष्ट करते हुए कहा गया कि जैसे एक अग्नि काष्ठ के भीतर छिपी रहती है, दूसरी बाहर प्रकट हो रही है, वैसे ही ब्रह्म अव्यक्त और जगत् व्यक्त है—

दारुण्यवस्थितो वह्निर्भौमाश्च परमाणवः ।
तथा त्वयि स्थितं ब्रह्म जगच्चेदमशेषतः ॥

(२३।३३—३४)

एक दारुगत देखिअ एकू । पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू ॥

(रामचरितमानस १।२३।४)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भारतीय दर्शन का मथा हुआ अनुभव यह है कि सदसदात्मक ब्रह्म ही मानवीय हृदय में है। इस तथ्य का आग्रह ही यहाँ की आस्तिक मति है। वाग्देवी की संज्ञा सरस्वती है। वैदिक प्रज्ञा की ही मूर्ति मही देवी वाक् है। उसके इस स्तोत्र के रूप में भारतीय दर्शन की सत्यात्मक प्राचीन अनुभूतियों की एक मुक्तामाला ही पिरो दी गई है।

हे देवि, तुम सत् हो। तुम असत् हो।
तुम मोक्षरूप हो। तुम पदार्थमय जगत् हो।
तुम विश्व से असंयुक्त हो। तुम विश्व से योगवती हो।
तुम अक्षर हो। तुम क्षर हो।
तुम परम हो। तुम परमाणुरूप हो।
तुम ब्रह्म हो। तुम क्षरात्मक विश्व हो।
तुम काष्ठगत वह्नि हो। तुम पार्थिव दृश्य अग्नि हो।
तुम स्थिर हो। तुम अस्थिर हो।
तुम ओंकार की अनिर्देश्य अर्धमात्रा हो। तुम उसीकी अ-उ-म् तीन मात्राएं हो।
वह अविकारी, अक्षय, दिव्य, और परिणाम विवर्जित रूप है। इसी मात्रात्रय को तीन लोक, तीन वेद, त्रयी विद्या, तीन अग्नियां, तीन ज्योतियां (अग्नि वायु आदित्य), तीन वर्ण, तीन धर्म, तीन गुण, तीन आश्रम, तीन काल, तीन अवस्था (जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति) भी कहते हैं।
तुम विश्वेश और परमेश्वर हो। तुम विश्वावास और विश्वरूप हो।
तुम अनादि मध्य निधन और सदसत् हो। तुम ही सत् हो।
तुम एक हो। तुम ही भावभेद से अनेक हो।
तुम ही अनाख्य या अनिर्वचनीय हो। तुम ही षड्गुणमयी मूर्ति हो।
तुम एक शक्ति हो। तुम शक्ति की नाना विभूति हो।
तुम महासुख रूप परमानन्द हो। तुम ही सुखदुःखमयी हो।
तुम निष्कल अखण्ड परात्पर हो। तुम ही सकल अर्थात् कलामय खण्ड-भाव सम्पन्न विश्वरूप हो।
तुम अद्वैत ब्रह्म हो। तुम द्वैत ब्रह्म हो।
तुम नित्य अर्थ हो। तुम नश्वर पदार्थ हो।
तुम सूक्ष्मातिसूक्ष्म हो। तुम स्थूल हो।
तुम अमूर्त हो। तुम मूर्त हो।
तुम अन्तर्यामी एक हो। तुम द्युलोक, अन्तरिक्ष, पृथिवी के सब भूत या स्थूल दृश्य रूप हो।
तुम स्वर रूप हो। तुम व्यंजन रूप हो।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सरस्वती के स्तोत्र की इस पदावली से स्पष्ट लक्षित होता है कि वेदों की प्राचीन परिभाषाओं को ही पुराणों में परिगृहीत किया जा रहा था। 'श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्'—कवि का यह कथन उस युग के वाङ्मय की सर्वोपरि सचाई थी।

सरस्वती ने प्रसन्न हो कर नागराज से वर मांगने को कहा। उसने कहा—'मेरे भाई कम्बल को और मुझे समस्त स्वरों के ज्ञान की उपलब्धि दीजिए।' देवी ने कहा—'सप्त स्वर, सप्त ग्राम राग, सप्त गीत, सप्त मूर्छना, उन्चास ताल, मन्दमध्यम तार तीन स्वर समूह, चतुर्विध पदताल, लयत्रय, यतित्रय, चतुर्विध आतोद्य, एवं स्वर व्यंजनमयी वाक् का और जो भी स्वरूप है, वह सब तुम्हें प्राप्त होगा।' यह कह कर सरस्वती अदृश्य हो गई। तब नाग बन्धुओं ने अपने वीणा-गानों से भगवान् शिव को प्रसन्न किया और अश्वतर ने कहा—'हे देवाधिदेव, यदि आप प्रसन्न हैं तो वर दीजिए कि कुवलयाश्व की मृत पत्नी मदालसा मेरी पुत्री के रूप में उसी आयु और रूपसे जन्म ले एवं पूर्व जन्म की सब स्मृति उसे प्राप्त हो।' शिवने कहा—'तुम श्राद्धयज्ञ में उसे प्राप्त करोगे।' ऐसा ही हुआ और नागराज ने उस सुन्दरी को गुप्त रूप से अपने भवन में रक्खा।

एक बार नागराज ने पुत्रों से कहा—'मैंने जो कहा था तुम अपने उस गुणवान् मित्र को यहां क्यों नहीं लाते ?' उन्होंने ऐसा ही किया। बड़े स्नेह और अनुनय से वे उस राजपुत्र को अपने भवन में ले आए। ऋतध्वज पाताल लोक देख अति प्रसन्न हुआ और वहाँ उसने नागराज के दर्शन किए। अश्वतर ने उसको प्रेम से आलिंगन करते हुए कहा—'वत्स, तुम धन्य हो। परोक्ष में मेरे पुत्र तुम्हारे असामान्य गुणों का इतना बखान करते थे। गुणवान् का जन्म ही सफल है।'

स्नानाहारादि से निवृत्त हो कर जब वे सब पुनः एकत्र हुए तो नागराज ने कथा चलाते हुए रत्न सुवर्ण या अपना कोई दुर्लभ मनोरथ मांगने की प्रेरणा की। कुवलयाश्व ने कहा—'भगवन्, आपकी कृपा से पिता के घर में रत्न सुवर्णादि पर्याप्त हैं। वे धन्य हैं जिन्हें पितारूपी कल्पवृक्ष की छाया में कभी घर में धन की चिन्ता नहीं करनी पड़ी। मेरे वह सब है। तुल्य वय के शिष्ट मित्र हैं। स्वस्थ देह है। आपकी कृपा से पिता के दिए हुए रत्न संचय मैं यथेष्ट अर्थियों को बांटता हूँ। और अब आपके चरणकमलों से अपने मस्तक का स्पर्श करके तो मैंने सब कुछ प्राप्त कर लिया।' यह सुन कर नागराज ने पुनः कुछ अभीष्ट मांगने का आग्रह किया तो ऋतध्वज ने कहा—'आप देव हैं। मुझ मानुष को आपका अंग-संस्पर्श मिला, उसमें मैंने क्या नहीं पा लिया ? फिर भी यदि आप प्रसन्न हैं तो यह वर दें कि पुण्य कर्म करने की भावना मेरे हृदय से कभी दूर न हो। सुवर्ण, मणि, रत्न, वाहन, गृह, आसन, पत्नी, अन्नपान, पुत्र, माल्यानुलेपन, गीत वाद्य आदि जितना सुख है, मेरे मत से वह पुण्यरूपी वृक्ष का ही सुन्दर फल है।'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अतएव बुद्धिमान् को चाहिए कि उस वृक्ष की जड़ हरी रक्खे।'[1] अश्वतर ने कहा—'हे प्राज्ञ, तुम्हारा मन ऐसा ही होगा। तुमने ठीक कहा, जीवनमें यह सब वैभव और सुख-सुविधा धर्म का ही पुण्य-फल है। फिर भी मेरे घर आने पर तुम ऐसी कोई वस्तु मांगो जो मनुष्य लोक में न मिल सके।' यह सुनकर अल्प भाषण करनेवाले उस राजपुत्र ने अपने उन मित्रों की ओर देखा। उन्होंने आशय समझ कर नागराज से कहा—'हे पिता, किसी दुरात्मा कुबुद्धि के षड्यंत्र से इसका मरण सुन कर इसकी प्राणप्रिया भार्या गन्धर्वराजपुत्री मदालसा ने अपना जीवन त्याग दिया। तब इसने अपना कर्तव्य पहचान कर प्रतिज्ञा की कि मदालसा के अतिरिक्त कोई अन्य स्त्री अब मेरी पत्नी न बनेगी। उसी सुन्दरी के दर्शन की इसे अभिलाषा है। आप ऐसा करा सकें तो कृपया कराइए।'

नागराज ने कहा—'जिन भूतों से एक बार वियोग हो चुका है, उनका पहले जैसा पुनः संयोग या स्वप्न में या शाम्बरी माया से ही संभव है।' तब ऋतध्वज ने कुछ प्रेम और लज्जा व्यक्त करते हुए कहा—'हे तात, मायामयी मदालसा का मुझे दर्शन हो जाय, तो भी मैं आपका अनुग्रह मानूँगा।'

नागराज ने कहा—'अच्छा, यह माया देखो।' यह कह कर घर में छिपी हुई मदालसा को सामने प्रकट कर दिया और पूछा—'राजपुत्र, क्या यही तुम्हारी पत्नी है?' उसे देखते ही ऋतध्वज लज्जा का बंधन छोड़ कर 'हे प्रिये,' कहकर उसकी ओर बढ़ा, पर नागराज ने बीच में ही रोक कर कहा—'वत्स, मैं कह चुका हूँ यह माया है। इसका स्पर्श मत करो। जो माया है वह छूने से अन्तर्धान हो जाती है।' यह सुन कर राजपुत्र मूर्छित हो कर गिर पड़ा। सुन्दरी मदालसा ने सोचा,—'अहो, इनका मेरे ऊपर कैसा अविचल स्नेह है जो ये शस्त्र के बिना ही मेरे लिये इस प्रकार भूमि में गिर गए। किन्तु इन्हें तो माया के रूप में मेरा दर्शन कराया गया है। वस्तुतः पृथिवी, अग्नि, जल, वायु, आकाश के मिलने से जो यह पुतला बनता है वह मिथ्या माया ही है।' तत्काल नागराज ने मदालसा के संजीवन की सच्ची बात प्रकट करके राजकुमार को आश्वस्त किया और ऋतध्वज पत्नी के साथ अपने नगर को लौट आया।

१—यदि त्ववश्यं दातव्यो वरो मम यथेप्सितः।
तत्पुण्यकर्मसंस्कारो हृदयान्मा व्यपैतु मे॥
सुवर्णं मणि रत्नादि वाहनं गृहमासनम्।
स्त्रियोऽन्नपानं पुत्राश्च चारुमाल्यानुलेपनम्॥
एते च विविधाः कामा गीतवाद्यादिकं च यत्।
सर्वमेतन्मम मतं फलं पुण्यवनस्पतेः॥
तस्मान्नरेण तन्मूलः कार्यो यत्नः कृतात्मना।
कर्तव्यः पुण्यसक्तानां न किंचिद् भुवि दुर्लभम्॥ (२४।१९-२२)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस कथा के रूप में पुराणकार ने मदालसा का एक भव्य स्वरूप सामने रक्खा है। वह साधारण मनवी स्त्री नहीं, किन्तु शिव के वरदान से संजीवन को प्राप्त हुई एक असाधारण स्त्री है। अतएव वह उस पद के सर्वथा योग्य है जो प्रवृत्ति और निवृत्ति मूलक धर्मों के उपदेश करने के लिये उसे प्राप्त होना चाहिए।

ऋतध्वज के साथ सुख से निवास करते हुए मदालसा के विक्रान्त नामक पुत्र हुआ। उस बुद्धिमती माता ने लोरी के रूप में ही यह सिखाना शुरु किया 'हे तात, तुम शुद्ध बुद्ध हो, शुद्ध स्वरूप हो, तुम्हारा नाम कैसा ? यह तो अभी पिता ने कल्पना से रख दिया है। तुम किसके लिये रुदन करते हो। इन्द्रियों के गुण और अगुण भी सब भौतिक हैं। इस देह में अन्न, जल आदि भूतों से भूतों की वृद्धि हो रही है। वस्तुतः तुम्हारे स्वरूप की न वृद्धि है, न हानि। यह देह एक चोला है जो शुभ अशुभ कर्म और मोह, मदादि विकारों ने तुम्हारे चारों ओर कल्पित कर दिया है। चोला पुराना हो जाय तो मोह नहीं होता। ऐसे ही देह के विषय में समझो। पञ्चभूतों के इस ढेर को पिता, माता, स्त्री, पुत्र आदि के रूप में लोग बहुत मान लेते हैं एवं किसी को अपना और किसी को पराया समझ लेते हैं। मोह वश प्राणी दुःखों से छूटना और भोगों से सुख पाना चाहते हैं फिर उन्हीं सुखों को दुःख रूप में अनुभव करते हैं—ऐसा यह मोह का चक्र है।' यों माता से उपदेश पाकर बढ़ते हुए उस कुमार को आत्मबोध हो गया और गृहस्थ धर्म के विषय में उसे विरक्ति हो गई। तब समय पाकर सुबाहु नामक दूसरा और शत्रुमर्दन नामक तीसरा पुत्र हुआ। उन्होंने भी माता के उपदेश से निष्काम पथ ग्रहण किया। जब वह चौथे पुत्र अलर्क को भी उसी प्रकार का ज्ञान सिखाने लगी तो राजा ने मर्माहत हो कर कहा—'हे प्रिये, मेरी सन्तति के साथ यह क्या खिलवाड़ कर रही हो ? यदि मेरा हित चाहो तो मेरी बात मान कर इस पुत्र को प्रवृत्ति मार्ग में लगाओ जिससे कर्ममार्ग का उच्छेद न हो। देव, पितर, यक्ष, भूत, प्रेत, कृमि, कीट, पतंग इन सबका उपजीव्य मनुष्य ही है। अतएव क्षत्रिय को जो इस लोक और परलोक के योग्य करना चाहिए वह इस पुत्र को सिखाओ।'

अपने पति का यह वचन मान कर वह दूसरे प्रकार की लोरी गाने लगी—'हे पुत्र बढो और कर्मों से पिता को प्रसन्न करो। मित्रों का उपकार और शत्रुओं का नाश करो। तुम धन्य हो जो शत्रुहीन पृथिवी का अकेले पालन करते हुए सुख भोग करके धर्म का अमर-फल चक्खोगे। बन्धुओं का मनोरथ पूर्ण करना, दूसरों के हित की चिन्ता करना और मन को संयम में रखना। अनेक यज्ञों से देवों को, धन से द्विजों और आश्रितों को और काम से पत्नी को चिरकाल तक प्रसन्न करना। बालरूप में बान्धवों का मन प्रसन्न करना। कुमार रूप में गुरुजनों की आज्ञा का पालन करना। युवा रूप में सत्कुल की भूषण स्त्रियों का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मन प्रसन्न करना और वृद्धावस्था में वन का आश्रय लेना। हे तात, राज्य द्वारा मित्रों को सुख देना, यज्ञों द्वारा साधुओं की रक्षा कर के उत्सव समारोह करना और गो ब्राह्मणों की रक्षा के लिये युद्ध करते हुए वैरियों का नाश करके यदि आवश्यकता हो तो मृत्यु का भी आलिङ्गन करना।[1]

ऊपर के वाक्यों में गुप्तकाल के उन आदर्शों की गूँज स्पष्ट सुनाई पड़ती है जिनका उल्लेख रघुवंशी राजाओं के विषय में कालिदास ने किया है।[1] इसी पुराण में आगे चल कर राज्यवर्धन नामक सूर्यवंशी राजा के विषय में उन्हीं आदर्शों को पुनः दोहराया गया है।[2]

इससे आगे भागवतों के प्रवृत्ति लक्षण धर्म में आचार पद्धति और जीवन का व्यावहारिक दृष्टिकोण क्या था इसका विवेचन अलर्क और मदालसा के महान् संवाद के रूप में आया है (अ० २७-३६)। मदालसा अपने पुत्र को प्रजारंजन पर आश्रित राजतंत्र, वर्णाश्रम धर्म, गार्हस्थ धर्म, नित्य और नैमित्तिक कर्म, श्राद्ध, देवता-पूजन, आचार परिपालन और वर्ज्यावर्ज्य पदार्थों के विषय में लम्बा उपदेश देती हैं। यह धर्म अर्थ और काम रूपी त्रिवर्ग को जीवन में सिद्ध करने के आदर्श का लोकोपयोगी पक्ष था। भागवत धर्म का हिरण्यमय देवरथ प्रवृत्ति और निवृत्ति लक्षण धर्मों के दो पहियों से गतिशील होता था। इससे ही उन्होंने भुक्ति और मुक्ति के द्विविध आदर्शों का समन्वय प्राप्त किया था। मदालसा और अलर्क के इस संवाद में भी वे दोनों पक्ष विद्यमान हैं। धर्म, अर्थ, काम या त्रिवर्ग संबंधी व्याख्या सुनकर, उसका प्रतिपालन करने के बाद राजर्षि अलर्क ने सन्यास लेकर महाभाग दत्तात्रेय से अध्यात्मयोग की दीक्षा ली। इस दूसरे भाग में (अ० ३७-४३) भागवत धर्म के मनीषी नेताओं ने निवृत्ति-प्रधान दृष्टिकोण का सूक्ष्म विवेचन करते हुए सांख्य जीवन का वेदान्त के साथ समन्वय किया।

ऋतध्वज पुत्र अलर्क कौमारावस्था में प्रवेश करके जब उपनयन प्राप्त कर चुके तो उन्होंने माता से कहा—'इस लोक और परलोक के सुख के लिये मेरा जो कर्तव्य है कृपया उसे बताइए।' इस प्रश्न के उत्तर में मदालसा ने सर्वप्रथम राज्यतंत्र आश्रित धर्म का उपदेश दिया। इसे राजा का स्वधर्म कहा गया है। सफलतापूर्वक राज्य करने के लिये राजा को जैसे व्यक्तित्व की आवश्यकता

१—शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।
वार्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्॥
(रघु० १-८)

२—बाल्ये बालक्रिया पूर्वं तद्वत्कौमारके च या।
यौवने चापि या योग्या वार्धके वनसंश्रया॥
(१०९-२४)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है उसकी प्राप्ति का जीवन उपाय ही राजा का स्वधर्म है। 'हे पुत्र, राज्याभिषेक होते ही सबसे पहला कर्तव्य प्रजाओं का रंजन करना है। राजा के स्वधर्म या निजी जीवन और प्रजा रंजन के आदर्श में कोई विरोध न होना चाहिए। राजा को उचित है कि व्यसनों को अपने जीवन से दूर रक्खे और मन्त्र की रक्षा करते हुए अपने आपको शत्रुओं से बचाए। अपने अमात्यों के गुणों और अवगुणों को जाने। पहले अपने आपको, फिर मन्त्रियों को, तब भृत्य और पौरजानपदों को अपने वश में कर के बाद में शत्रुओं को वश में लाने की योजना करनी चाहिए। जिसने अपने आपको नहीं जीता वह शत्रुओं से पराभव को प्राप्त होता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मान ये छह राजा के नाशकारक शत्रु हैं। राजा इन पर जय पा ले तो अवश्य उसकी जय होगी। देखो पाण्डु, अनुह्लाद, ऐल, वेन, बलि, और पुरञ्जय ये इन दोषों से नाश को प्राप्त हुए और चक्रवर्ती मरुत् इन दोषों को वश में कर लेने से सर्वथा विजयी हुए। राजा को उचित है कि छोटे बड़े सब व्यक्तियों के स्वभावों का निरीक्षण करके अपने लिये प्रज्ञा का संचय करे और इन्द्र, वायु, सूर्य, चन्द्र एवं यम इन पञ्च देवों के स्वरूप से पृथिवी पालन के कर्म में प्रवृत्त हो। जैसे चार मास तक इन्द्र जलवृष्टि से लोक को तृप्त करता है वैसे ही राजा अपने सर्वस्वदक्षिण दानों से (परिहार) प्रजा को प्रसन्न करे। सूर्य आठ मास तक अपनी किरणों से जल लेता रहता है, ऐसे ही राजा बड़े सूक्ष्म उपाय से प्रजाओं से शुल्क आदि वसूल करता रहे। समय आने पर यमराज प्रिय और अप्रिय दोनों का नियमन करता है, ऐसे ही दुष्ट और सज्जन के प्रति राजा को समता का व्यवहार करना चाहिए। पूर्ण चन्द्रमा को देख कर जैसे मनुष्य को सुख मिलता है वैसे ही जो सब प्रजाओं को सुख दे वह शशिव्रत का पालने वाला होता है। वायु चुपचाप सब जगह विचरता है, ऐसे ही राजा अपने गुप्तचरों से अमात्य और बन्धु सबका हाल चाल जानता रहे। उत्पथगामी स्वधर्म से विचलित मनुष्यों को जो उनके धर्म में स्थापित करता है वही सच्चा राजा है। जिसके राज्य में वर्ण और आश्रमों के धर्म शिथिल नहीं होते उस राजा को ही सच्चा सुख मिलता है। सब भूतों के पालन से ही राजधर्म की सफलता है।'

माता के वचन सुन कर अलर्क ने वर्ण धर्म और आश्रम धर्मों के विषय में प्रश्न किया तो मदालसा ने कहा—'दान, अध्ययन और यज्ञ ये तीन ब्राह्मण के निरपेक्ष धर्म हैं। वह किसी भी पद पर हो उसे इनका पालन करना चाहिए। याजन, अध्यापन और शुद्ध परिग्रह ये उसकी जीविका के साधन हैं। दान, अध्ययन और यज्ञ क्षत्रिय और वैश्य के लिए भी धर्म हैं किन्तु क्षत्रिय की जीविका पृथिवी पालन और शस्त्रवृत्ति से एवं वैश्य की कृषि, वाणिज्य, और पशुपालन से होती है। शूद्र के लिए शिल्पकर्म (कारुकर्म) ही उसकी जीविका है। प्रत्येक व्यक्ति अपने वर्ण धर्म के ठीक पालन से ही सिद्धि प्राप्त करता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उपनयन होने पर ब्रह्मचारी गुरु गृह में वास करे। स्वाध्याय, अग्निचर्या और भिक्षा उसका स्वधर्म है। एक, दो या चारों वेदों को गुरुमुख से पढ़ कर उसकी आज्ञा से गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे। समान कुलकी स्वस्थ स्त्री को पत्नी बना कर स्वकर्म से धनोपार्जन करते हुए पितर, देवता और अतिथियों को सम्यक् प्रसन्न करे। अपने आश्रित, भृत्य, स्वपुत्र, स्त्री, कन्या, दीन, अन्ध, पतित, यहाँ तक कि पशु-पक्षियों तक को यथाशक्ति अन्नदान दे कर अपने कर्त्तव्य का पालन करे। पंचयज्ञ विधान में यथासम्भव त्रुटि न आने दे। यही संक्षेप में गृहस्थ धर्म है।

प्राज्ञ व्यक्ति का धर्म है कि सन्तानोत्पत्ति करने के बाद शरीर की अनित्यता का विचार करते हुए वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करे और अरण्यवास करते हुए तप का अभ्यास करे। भूमि में सोना, ब्रह्मचर्य से रहना, वल्कल पहनना, योग का अभ्यास करना इससे देह और मन क्रमशः शुद्ध हो जाते हैं और अध्यात्म ज्योति का अनुभव होता है। चौथा आश्रम कठोर-साधना का है, उसमें सबका संग त्याग कर एक जगह देर तक न रहे। ब्रह्मचर्य और इन्द्रिय संयम से रहते हुए केवल एक बार भिक्षा से प्राप्त भोजन करे। आत्मज्ञान, आत्मावलोकन और आत्मदर्शन की उत्कृष्ट इच्छा यही चौथे आश्रम का स्वरूप है। सब वर्गों और आश्रमों के कुछ सामान्य धर्म भी हैं, जैसे सत्य, अहिंसा, शौच, क्षमा, संतोष, अनसूया, दया, उदारता। राजा को चाहिए कि प्रजाओं को वर्ण और आश्रम सम्बन्धी धर्मों में प्रतिष्ठित करे।'

मदालसा ने गृहस्थ के सम्बन्ध में जो कुछ ऊपर कहा वह जैसे अपर्याप्त लगा, अतएव गृहस्थ-आश्रम की पूरी महिमा और तेजस्वी स्वरूप को प्रकट करने वाला प्रवचन आरम्भ करते हुए उसने पुनः कहा—'हे वत्स, जिसने गृहस्थ आश्रम धारण किया वह मनुष्य मानों सब जगत् के पोषण का भार अपने ऊपर ले लेता है। देव, पितर, मुनि, भूत, मनुष्य, कृमि, कीट, पतंग, पशु और पक्षी सब गृहस्थ के ही भरोसे जीते हैं और वहीं से तृप्ति प्राप्त करते हैं।'[1] भागवतों की दृष्टि में सारे प्रवृत्ति धर्मों का मेरुदण्ड गृहस्थ आश्रम था। नारायणीय पर्व में कहा है—'हे देव, चारो आश्रमों की जड़ गृहस्थ से ही हरी रहती है (चत्वारो ह्याश्रमा देव सर्वे गार्हस्थ्यमूलकाः—शान्ति ३२१-२५)। कालिदास ने गृहस्थ आश्रम को सब

१—वत्स, गार्हस्थ्यमादाय नरः सर्वमिदं जगत्।
पुष्णाति तेन लोकांश्च स जयत्यभिवाञ्छितान् ॥ २९।३ ॥
पितरो मुनयो देवा भूतानि मनुजास्तथा।
कृमिकीटपतङ्गाश्च वयांसि पशवोऽसुराः ॥ २९।४ ॥
गृहस्थमुपजीवन्ति ततस्तृप्तिं प्रयान्ति च।
मुखं चास्य निरीक्षन्ते अपि नो दास्यतीति वै ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आश्रमों का हित करने में समर्थ कहा है (रघुवंश ५।१०)। आगे चल कर इसी पुराण में कहा गया है कि विवाह पुण्यकार्य है, यही स्वर्ग और मोक्ष का हेतु है।[1]

जिस प्रकार वर्णाश्रम समाज की भित्ति है उसी प्रकार वेद भागवतीय ज्ञान परम्परा की मूल प्रतिष्ठा थे। अतएव आश्रम धर्म की रक्षा के साथ वेदों की रक्षा का अनिवार्य सम्बन्ध माना जाता था। स्वर्णयुग की संस्कृति में गृहस्थ धर्म और वेद इन दो की महिमा के स्वर ऊंचे उठे। यहां गृहस्थ धर्म के प्रसंग में वेदों का एक सुन्दर रूपक दिया गया है। ऋक्, यजु, साम का नाम त्रयीविद्या है। यह त्रयीविद्या एक गौ है जिसे विराज् भी कहते हैं। इस त्रयीमयी धेनु के दुग्ध से ही लोकों का पोषण होता है। स्वाहा, स्वधा, वषट्कार और हन्तकार इसके चार स्तन हैं। वषट्कार से ऋषि, स्वधाकार से पितर, स्वाहाकार से देव और हन्तकार से मनुष्य तृप्त होते हैं। यह धेनु सबकी आधारभूत है, सारा विश्व इसी पर प्रतिष्ठित है, और यही विश्वसृष्टि का हेतु है। ऋग्वेद इसका पृष्ठभाग, यजुर्वेद मध्यभाग और सामवेद इसका मस्तक है। इष्ट और पूर्त इसके दो सींग हैं। वेदों के अनेक सूक्त इसके शरीर के रोम हैं। शान्ति और पुष्टि इसके प्रवर्ग्य या उच्छिष्ट हैं। अक्षररूपी पैरों से यह चलती है। सब जगत् इससे जीवित रहता है। यह अक्षय गौ है। कभी इसका क्षय नहीं होता। हे वत्स, ऐसी यह त्रयी विद्यारूपी अद्भुत गौ सबका आप्यायन करती है। जो मनुष्य इस वाङ्मयी धेनु का दुग्ध, देव, पितर, ऋषि और मानवों को अपने कर्म से प्राप्त कराता है, वह स्वर्ग का उपभोग करता है[2]।

१—वत्स, कस्मात् त्वया पुण्यो न कृतो दारसंग्रहः।
स्वर्गापवर्गहेतुत्वाद् बन्धस्तेनानिशं विना ॥ ९५।३ ॥

२—सर्वस्याधारभूतेयं वत्स धेनुस्त्रयीमयी।
यस्यां प्रतिष्ठितं विश्वं विश्वहेतुश्च या मता ॥
ऋक्पृष्ठाऽसौ यजुर्मध्या सामवक्त्रशिरोधरा।
इष्टापूर्तविषाणा च साधुसूक्ततनूरुहा।
शान्ति पुष्टि शकृन्मूत्रा वर्णपादप्रतिष्ठिता।
आजीव्यमाना जगतां साक्षया नापचीयते ॥
स्वाहाकारस्वधाकारौ वषट्कारश्च पुत्रक।
हन्तकारस्तथा चान्यस्तस्याः स्तनचतुष्टयम् ॥
स्वाहाकारं स्तनं देवाः पितरश्च स्वधामयम्।
मुनयश्च वषट्कारं देवभूतसुरेतराः ॥
हन्तकारं मनुष्याश्च पिबन्ति सततं स्तनम्।
एवमाप्याययत्येषा वत्स धेनुस्त्रयीमयी ॥ २९।६-११ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वेदविद्या की गौरूप में यह कल्पना और उसका सर्वाङ्गपूर्ण रूपक प्राचीन वैदिक अर्थों पर आश्रित था। ऋक्, यजु, साम की संज्ञा त्रयी विद्या है। सूर्य के लिये कहा जाता है—सैषा त्रयी विद्या तपति, अर्थात् सूर्य के रूप में त्रयी विद्या तप रही है। सूर्य अग्निमय संस्थान है, अर्थात् विश्वनिर्मातृ शक्ति का पाञ्चभौतिक अभिव्यक्त रूप है। इस रूपक में त्रयीविद्या को गणित के शब्दों में समझाया जाय तो कह सकते हैं कि ऋग्वेद व्यास या विष्कम्भ है, सामवेद मण्डल, परिधि या वृत्त का घेरा है। इस घेरे के भीतर भरा हुआ जो भौतिकतत्त्व या गतितत्त्व या रस है उसे यजु कहते हैं। उसका स्रोत वृत्त के केन्द्र में रहता है। अव्यक्त स्रोत से शक्ति का व्यक्त रूप में आना ही त्रयी विद्या का संस्थान है। जहाँ कहीं किसी प्रकार की भौतिक अभिव्यक्ति होगी वह त्रयी विद्या अर्थात् विष्कम्भ, परिधि, और केन्द्र, इन वृत्त के तीन भागों के बिना हो ही नहीं सकती। ये तीन भाग एक दूसरे से अलग होते हुए भी मिले रहते हैं, तभी प्रत्येक संस्थान की निजी इकाई बनती है। विज्ञान के शब्दों में कहें तो गति, आगति और स्थिति इस त्रिक का रूप है। व्यास गति है, परिधि आगति है और केन्द्र स्थिति है। इस प्रकार की त्रयीविद्या समस्त विश्व का मूल है। जहाँ किसी भी प्रकार की भौतिक अभिव्यक्ति प्रत्यक्ष देखने में आती है वहीं ऋक्, यजु, साम से बनी हुई यह वेदमयी या त्रयीमयी गौ उसके मूल में विद्यमान रहती है। इसलिए पुराण का यह वाक्य सार्थक है—

> सर्वस्याधारभूतेयं वत्स धेनुस्त्रयीमयी।
> यस्यां प्रतिष्ठितं विश्वं विश्वहेतुश्च या मता ॥ (२९|६)

यह गौ वस्तुतः कौन है ? यह विश्व की मूलभूत शक्ति है। शक्ति के इस महान् समुद्र से विश्व के नाना रूप दृश्यभाव में आते हैं। यह गौ विराज भी कही जाती है। विराट् विश्व इसी का रूप है। यहाँ जो कुछ भी अमूर्त्त, अव्यक्त या सूक्ष्मसे मूर्त्त, व्यक्त या स्थूल भावमें आ रहा है वही विराज है जो इसी शक्तिमयी धेनु से पोषण प्राप्त करता है। पोषण ही गौ का दुग्ध है। इस दुग्ध के प्रकट होने के चार स्रोत हैं जो इसके चार स्तन हैं। एक स्रोत अव्यक्त है, और तीन स्रोत तीन गुणों के रूप में व्यक्त हैं। विराट् विश्व में पहले स्रोत को स्वयम्भू, दूसरे को परमेष्ठी, तीसरे को सूर्य-चन्द्र और चौथे को पृथिवी कहते हैं। पिंड में इन्हीं को अव्यक्तात्मा, महानात्मा, विज्ञानात्मा-प्रज्ञानात्मा और भूतात्मा कहते हैं। स्वयंभू का सम्बन्ध ऋषियों से, परमेष्ठी का पितरों से, सूर्य का देवों से, और पार्थिव लोक का मनुष्यों से है। इन्हें और भी स्पष्टतासे समझना चाहें तो कह सकते हैं कि अव्यक्त गुणातीत परात्पर ब्रह्म इस शक्तिमयी व्यक्ताव्यक्त रूपिणी गौ का पहला स्तन है। मानस भावात्मक अव्ययब्रह्म या परब्रह्म इसका दूसरा स्तन है। मानव में जो प्रज्ञा यात्रा या मन-बुद्धि का अंश है वह इसी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्रोत से आता है। तीसरा अक्षर ब्रह्म है। इसी का नाम परावर है क्योंकि बीच में होने से वह पर भी है अवर भी है। मनुष्य की क्रियाशक्ति या प्राण का स्रोत यही है। इसी धारामें चौथा स्रोत क्षर ब्रह्म है, जिसे अवर ब्रह्म कहते हैं। इन चारों स्रोतों में एक से एक अधिक सूक्ष्म है। स्थूल शरीर के भीतर सूक्ष्म प्राण, उसके भीतर सूक्ष्मतर मन, और इन तीनों से परे एवं तीनों के केन्द्र में प्रतिष्ठित सूक्ष्मतम अव्यक्त कारण है जो गुणातीत है। उस अव्यक्त कारण को ऋषि, सतोगुणको मन या पितर, रजोगुणी प्राणतत्त्व को देव और तमोगुणी भूततत्त्व को मनुष्य कहते हैं। ये चार ही सब की आधारभूत गौ के चार वत्स हैं जो उसके दुग्ध का पान करते हैं। कोई भी व्यक्ति इनसे विरहित नहीं है। जहाँ भी प्राण का स्पन्दन है वहीं ये चारों विद्यमान हैं। स्थूल अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय और विज्ञानमय कोश एवं अव्यक्त आनन्दमय कोश ये पाँचों उस गौ के दुग्ध से निरन्तर पुष्ट हो रहे हैं। इनमें मन और बुद्धि अर्थात् प्रज्ञान और विज्ञान एक ही शक्ति के दो रूप हैं। अमृत बुद्धितत्त्व का ही मर्त्यरूप मनस्तत्त्व है। इन चारों स्रोतों या स्तनों के लिये वैदिक परिभाषा में निम्नलिखित नाम थे—वषट्कार, स्वधाकार, स्वाहाकार और हन्तकार। ऋषियों का सम्बन्ध वषट् से, पितरों का स्वधा से, देवों का स्वाहा से और मनुष्यों का हन्तकार से माना गया है। वस्तुतः वेदों में वषटकार विद्या अति महत्त्वपूर्ण है। उसका सम्बन्ध सृष्टिनिर्माण की व्याख्या से है। प्राण और भूत, अथवा अग्नि और सोम के तारतम्य से ही सृष्टि की रचना होती है। इनमें अग्नि अंगिरा और सोम भृगु कहलाता है। ऋषितत्व आग्नेय अंगिरातत्त्व है। पितरतत्त्व सौम्य भार्गवतत्त्व है। ऋषितत्त्व को वषट् और पितरतत्त्व को स्वधा कहते हैं। अग्नि और सोम का सम्मिलित रूप देवों का स्वाहाकार रूप है और वही जब भूतरूप में प्रत्यक्ष होता है तो हन्तकार कहा जाता है। देवतत्त्व या प्राण की क्रियाशीलता से ही स्थूलभूत शरीर या अन्नमय कोश का जन्म होता है। इस प्रकार वैदिक सृष्टि-विज्ञान सम्बन्धी अर्थों की अनेक व्यंजनाएँ प्राचीन साहित्य में विदित थीं। पुराणों के लेखक उन अर्थों से परिचित थे। उनकी व्याख्या के लिये नई परिभाषाएँ भी प्रयुक्त करते हैं। ऐसी यह शक्तिमयी विराट् गौ जो समस्त विश्व की उपजीव्य है अदिति भी कही गई है। उसे ही यहाँ अघ्न्या कहा है। दोनों का एक ही अर्थ है। जिसका कभी खण्डन, क्षय या नाश नहीं होता ऐसी यह शक्तिरूपी दुर्धर्ष गौ है। शक्ति का जो अंश जीवन के रूप में प्राणी को प्राप्त होता है उसका कुछ भाग दैहिक या मूर्त कार्यों में और कुछ मानस या सूक्ष्म कार्यों में प्रयुक्त होता है। स्थूल और सूक्ष्म का यह चक्र एक दूसरे से मिला हुआ या अविनाभूत है। इन्हें ही क्रमशः इष्ट और पूर्त कहा है। देव या प्राण सम्बन्धी कार्य इष्ट और स्थूल भूत या इस लोक से सम्बन्धित कार्य मूर्त कहलाते हैं। ये दोनों उस शक्तिके ब्रह्मौदन भाग के प्रवर्ग्यरूप हैं, जैसे शरीर की ही शक्ति से उत्पन्न उससे मिले हुए किन्तु उससे पृथक् रूप में गौ के मस्तक पर दो सींग होते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रवृत्तिमूलक आचारधर्म

इसके अनन्तर गृहस्थ के प्रतिदिन के पञ्चयज्ञों का वर्णन किया गया है और अन्त में गृहस्थाश्रम की महिमा को प्रख्यात करते हुए कहा है कि जो व्यक्ति इस प्रकार गार्हस्थ्य के भार को अपने कंधों पर उठाता है उसके पुण्यकर्मों से ऋषि, पितर, देव, अतिथि, बन्धु-बान्धव, पशु-पक्षी एवं कीट-पतंग सब तृप्त होकर उसके लिए कल्याण की वृष्टि करते हैं। यही धर्म का मेघजल है जो गृहस्थरूप व्यष्टि और समाजरूप समष्टि को सींचता है। कहा है कि गृहस्थ आश्रम में रहनेवाले व्यक्ति के पास जैसा भी धन का बल हो उसी के अनुसार उसे गुरुजन, स्त्री, पुत्र, कन्या, बन्धु-बान्धव, अतिथि आदि का पूजन-पोषण करना चाहिए। इस पवित्र दायित्व की पूर्ति ही जीवन है।

पञ्चयज्ञों को गृहस्थ का नित्यकर्म और श्राद्ध को नैमित्तिक कर्म माना गया था। अध्याय तीस और इकत्तीस में श्राद्ध एवं बलिवैश्वदेव का विस्तार से वर्णन है। अध्याय बत्तीस और तेतीस का सम्बन्ध भी श्राद्धकर्म से है। अध्याय चौंतीस में सदाचार और पैंतीस में वर्ज्यावर्ज्य का वर्णन किया गया है। ये दोनों उस समय व्यावहारिक धर्मशास्त्र के उपयोगी प्रकरण माने जाते थे। जिस समय लोग कथा के रूप में पुराण सुनते थे वे इस प्रकार के जीवनोपयोगी ज्ञान से परिचित हो जाते थे। बुद्धिमान् मनुष्य को जीवन के लिये जो ज्ञान आवश्यक था उसकी सूचना इन श्लोकों में यथासम्भव रक्खी जाती थी। उदाहरण के लिये, 'आचार का परिपालन गृहस्थ का नित्य कर्तव्य है। जिसमें आचार नहीं उसे न यहाँ सुख मिलता है न वहाँ। सदाचार के बिना यज्ञ, दान, तप कोई करे भी तो क्या लाभ? जिस पुरुष में आचार का नियम नहीं बँधा उसे दीर्घ आयु नहीं मिलती।[1]

व्यक्ति की जो आय हो उसके आधे भाग से अपना भरण करे। चौथाई से परलोक सम्बन्धी कल्याण साधन करे और चौथाई भाग को संचित करके रक्खे। अर्थ के सम्बन्ध में यही नीति सफल होती है। धर्म के विषय में दो प्रकार की सावधानी चाहिए। एक उसका निषेधात्मक पक्ष है अर्थात् पाप से बचना; दूसरा विधेयात्मक पक्ष है अर्थात् पुण्य कर्म करना। काम भी दो प्रकार का है एक तो पत्नी के ऋतु धर्म की रक्षा के लिये और दूसरा धर्म का अविरोधी। धर्म,

---

१. गृहस्थेन सदा कार्यमाचारपरिपालनम्।
न ह्याचारविहीनस्य सुखमत्र परत्र वा॥ ३४।६
यज्ञदानतपांसीह पुरुषस्य न भूतये।
भवन्ति यः सदाचारं समुल्लङ्घ्य प्रवर्तते॥ ३४।७
दुराचारो हि पुरुषो नेहायुर्विन्दते महत्।
कार्यो यत्नः सदाचारे आचारो हन्त्यलक्षणम्॥ ३४।८

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अर्थ और काम को एक दूसरे से साधना ही युक्ति है। ब्राह्म मुहूर्त में उठकर धर्म और अर्थ का चिन्तन करना चाहिए। प्रातः और सायं दोनों समय संध्या करनी चाहिए। नियतात्मा व्यक्ति को प्रातः सायं होम भी करना उचित है। इस प्रकार अहर्निश की दिनचर्या का वर्णन बहुत कुछ मनुस्मृति के आधार पर है।

अपने पुत्र को राज्य देकर ऋतध्वज कुवलयाश्व ने जरा प्राप्त होने पर मदालसा के साथ वनवास लिया। चलते समय मदालसा ने अलर्क को एक अंगूठी दी और कहा—'हे पुत्र, जब कभी कोई कष्ट पड़े, या किसी शत्रुबाधा का अनुभव हो, तो इस अंगूठी के भीतर सूक्ष्मलिपि में लिखे हुए अक्षरों को पढ़कर देखना।' धर्मात्मा अलर्क ने न्याय के साथ प्रजाओं का पालन और दुष्टों का अनुशासन किया। उसने धर्म से धन, धन से धर्म एवं उनके अविरोध से विषयों का सेवन किया। उसके धर्मात्मा और महात्मा पुत्र उत्पन्न हुए पर उसके मन में वैराग्य नहीं हुआ। उसे भोगों में लिप्त देखकर सुबाहु नामक उसके वनवासी भाई ने सोचा कि किसी प्रकार उसके मन में ज्ञान उत्पन्न किया जाय। उसे यही युक्ति सूझी कि काशी के राजा की सहायता से अलर्क पर आक्रमण करके अपना राज्य लौटा लूं। अलर्क ने भाई को सन्देश भेजा—'यदि मेरे ज्येष्ठ भ्राता स्वयं आकर प्रेम से माँगें तो मैं राज्य दे सकता हूँ, किन्तु भय से थोड़ी भूमि भी न दूंगा।' सुबाहु ने कहला भेजा—'क्षत्रिय अपने पराक्रम के धनी होते हैं, मांगना उनका धर्म नहीं।' यों कह काशीश्वर को सहायता से अलर्क के राज्य को सब ओर से रौंद डाला। परम दुःख को प्राप्त होकर अलर्क ने माता की दी हुई उस अंगूठी का स्मरण किया और उसमें लिखे हुए अक्षरों को बांचा—'प्रत्येक को संग का त्याग करना चाहिए। ऐसा सम्भव न हो तो सज्जनों के साथ ही संग करना चाहिए। सज्जनों का संग औषधि है। सब के काम से बचना चाहिए। उससे बचना सम्भव न हो तो मोक्ष की कामना करनी चाहिए। वही काम की औषधि है'।[1] इसे पढ़कर अलर्क पुलकित हो उठा और यह सोचकर कि मनुष्य का कल्याण केवल मोक्ष में है वह महात्मा दत्तात्रेय के पास पहुंचा और प्रणाम करके उनसे पूछा—'ब्रह्मन्, मेरे ऊपर कृपा करके दुःख से छूटने का उपाय कहिए।'

अध्यात्मज्ञान और योग

यहाँ पहला छूटा हुआ कहानी का सूत्र फिर आ मिलता है और अवधूत दत्तात्रेय अलर्क को निमित्त बनाकर उस अध्यात्म ज्ञान और योग की व्याख्या करते हैं

---

1. सङ्गः सर्वात्मना त्याज्यः स चेत् त्यक्तुं न शक्यते।
स सद्भिः सह कर्त्तव्यः सत्यं सङ्गो हि भेषजम्॥ ३७।२३
कामः सर्वात्मना हेयो हातुं चेच्छक्यते न सः।
मुमुक्षां प्रति तत्कार्यं सैव तस्यापि भेषजम्॥ ३७।२४

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जो प्राचीन सांख्य धर्म, श्रमण धर्म, और वेदान्तगत वैराग्य की विविध धाराओं का मथा हुआ मक्खन था। दत्तात्रेय ने कहा—"मैं तुम्हें अभी दुःख से छुड़ा देता हूँ, पर यह तो बताओ तुम्हें दुःख देने वाला है कौन ?" साभिप्राय प्रश्न सुनते ही अलर्क के मन में बोध हो गया। वह तीन प्रकार के दुःख और आत्मा के साथ उनके सम्बन्ध के विषय में सोचने लगा—'यदि सुख-दुःख का सम्बन्ध शरीर से माना जाय तो न मैं पृथिवी हूँ, न जल हूँ, न तेज हूँ, न वायु हूं, न आकाश हूँ। यदि सुख-दुःख का कारण मन हो तो अहंकार, मन और बुद्धि भी मैं नहीं हूँ। मन और शरीर इन दोनों से अलग मेरा स्वरूप है। तो सुख-दुःख से मेरा सम्बन्ध क्या ? न कोई मेरा वैरी है, न मेरे राज्य और कोश हैं। जैसे घट में और कमण्डलु में आकाश एक होते हुए भिन्न दीखता है वैसे ही सुबाहु और काशिराज को मैं व्यर्थ अपने से अलग देख रहा हूँ।' उसने गुरु दत्तात्रेय को प्रणाम करके कहा—'महाराज, जब मैंने भली प्रकार विचार किया तो मुझे कहीं दुःख न मिला। सम्यग्दर्शन के विना तो सभी दुःख-सागर में डूबे हैं। जहाँ बुद्धि में ममता आती है वहीं दुःख है। बिल्ली जब गौरैया या चुहिया को खा जाती है तो मन दुःख नहीं मानता, पर अपने घर की कुक्कुटी को खा लेने पर दुःखी होता है। भूतों से भूतों का उत्पीड़ित होना ही सुख-दुःख का हेतु है।'

शिष्य में इस प्रकार बोध का अंकुर देखकर दत्तात्रेय प्रसन्न हुए और कहने लगे—'तुम्हारा सोचना ठीक है—'मेरा मेरा' यही दुःख का मूल है। 'मेरा कुछ नहीं' यही आनन्द का हेतु है।[१] मेरे प्रश्न से ही तुम्हारे भीतर ज्ञान उत्पन्न हो गया। जैसे सेमल निर्मोही हो अपनी रूई फेंक देता है ऐसे ही तुमने अपनी ममता त्याग दी। संसार में कर्मों का एक महावृक्ष है। अहंभाव से उसका अंकुर फूटता है। ममता उसका भारी तना है। घर-द्वार का मोह उसकी शाखाएँ हैं। स्त्री-पुत्र आदि उसके पल्लव हैं। धन-धान्य घने पत्ते हैं। वह दीर्घकाल तक बढ़ता रहता है, तब उस पर पाप-पुण्य के फूल आते हैं और दुःख-सुख के फल लगते हैं। अज्ञान में मूढ़ों का सम्पर्क उसे सींचकर हरा रखता है। यह वृक्ष मुक्ति के पथ को रोक कर बढ़ता है। संसार के मार्ग में थक कर जो उसी की छाया में आश्रय लेते हैं उन्हें आत्यन्तिक आनन्द कहाँ ? पर जो व्यक्ति सत्संग रूपी पत्थर पर तेज करके अपने ज्ञान रूपी कुठार से इस ममता रूपी वृक्ष को काट डालता है वह उसी मार्ग पर आगे बढ़कर उस ब्रह्मवन में पहुँचता है जिसकी छाया शीतल है और जहाँ धूल और काटों का अनुभव नहीं होता। प्रज्ञाशील व्यक्ति वहाँ परम शान्ति का अनुभव करते हैं। हे राजन्, स्थूल भूत, इन्द्रियाँ, तन्मात्राएँ और अन्तःकरण इन सबसे भिन्न मेरा और तुम्हारा स्वरूप है जिसे सबके ऊपर क्षेत्रज्ञ कहा जाता है।'

१—ममेति मूलं दुःखस्य न ममेति च निर्वृतेः। ३८। ६

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अलर्क ने फिर प्रश्न किया—'आपके इस उपदेश से विवेक उत्पन्न होता है, किन्तु मन फिर विषयों में खिंच जाता है। प्रकृति के बन्धन से कैसे छूटा जाय? गुणों से ऊपर निर्गुण भाव में कैसे ठहरा जाय? शाश्वत ब्रह्म के साथ एकीभाव कैसे प्राप्त किया जाय? कृपाकर उस योग का उपदेश दीजिए।' उत्तर में दत्तात्रेय ने पहले तो मानसिक साधना का और फिर हठयोग का उपदेश किया। ज्ञान के द्वारा अज्ञान से छूटना यही योग, यही मुक्ति, यही ब्रह्म के साथ एकता और प्रकृति के गुणों से छूटने का उपाय है। ज्ञान से योग और योग से मुक्ति होती है। संसार में दुःख का अनुभव ही ज्ञान की ओर खींच ले जाता है। ममता और आसक्ति ही दुःख है। जो मोक्ष चाहे वह संग का त्याग करे। संग के छूटने से ही 'मेरा' इस प्रतीति की हानि होती है। वैराग्य से ही ममता का दोष दिखाई पड़ता है। ज्ञान से ही वैराग्य हो सकता है। इसके बाद दत्तात्रेय ने यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार आदि अष्टाङ्ग योग साधना का वर्णन किया और अन्त में कहा—'अलोलुपता, आरोग्य, शरीर में हल्कापन और शुभगन्ध, मूत्र पुरीष की अल्पता, कान्ति, प्रसाद, सुन्दर स्वर—ये योग प्रवृत्ति के चिह्न हैं।'

योगी कई प्रकार के होते हैं। वेदार्थ, काव्य, शास्त्र, अनेक प्रकार की विद्याएँ और शिल्प जिनके मन में स्वयं प्रतिभासित हो जाते हैं वे प्रातिभ योगी हैं। जो सब शब्दों के अर्थ को जान लेते हैं और सहस्रों योजन दूर पर होने वाले शब्द को भी सुन लेते हैं वे श्रावण योगी हैं। इसके बाद योगी की चर्या अर्थात् रहन-सहन, खान-पान एवं धारणा-ध्यान आदि का वर्णन करते हुए ओंकार के स्वरूप और महिमा का वर्णन किया गया है। इसमें माण्डूक्य उपनिषत् में प्रतिपादित प्रणव की चार मात्राओं का विवेचन है। विराट् विश्व में प्रत्यक्ष ईश्वर के स्वरूप को जानने के लिये और उसकी प्राप्ति के लिये ओंकार ही एक अक्षर है। वस्तुतः अ, उ, म्, इन तीन अक्षरों की समष्टि ओंकार है। सत्त्व, रज, तम ये तीन गुण ही तीन मात्राएं हैं। चौथी मात्रा जिसे अर्धमात्रा या अमात्रा कह सकते हैं वह गुणातीत परब्रह्म का प्रतीक है।

जो कोई निर्गुण सूक्ष्मतत्त्व, पञ्चभूतों के रूप में प्रकट हुआ है उसके साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क प्राप्त करने का माध्यम ओंकार है। आकाश पंचभूतों में सबसे सूक्ष्म है। आकाश का गुण शब्द है। पृथिवी, जल, तेज, वायु की तरह आकाश और उसका गुण शब्द दोनों भौतिक हैं, किन्तु वे अधिक से अधिक सूक्ष्म हैं। अतएव ओंकार रूपी अक्षर की सूक्ष्म तरंगों से उस सूक्ष्म परब्रह्म के साथ सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है। जैसा ऊपर कहा जा चुका है क्षर ब्रह्म, अक्षर ब्रह्म और अव्यय ब्रह्म इन तीनों की व्यष्टि और समष्टि ही जगत् है। इनमें क्षर भूतभाग या स्थूल है (क्षरः सर्वाणि भूतानि)। अक्षर प्राण या क्रिया की संज्ञा है। स्वप्न अवस्था

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का प्रतीक वही है। अव्यय मन की संज्ञा है और उसका सम्बन्ध सुषुप्ति अवस्था से है। पुरुष के निर्माण में जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति इन्हीं तीनों का योग हुआ है। इन्हीं तीनों में किसी एक अवस्था में से रहते हुए आयु के शत संवत्सर पूरे होते हैं। क्षर-अक्षर-अव्यय या भूत-प्राण-मन के स्वल्पातिस्वल्प अंश कोही अ, उ, म कहा गया है। जैसे एक बूँद सारे समुद्र जल का नमूना होती है वैसे ही अ, उ, म ओंकार की ये तीन मात्राएँ त्रिगुणमयी सृष्टि का प्रतीक है। विराट् विश्व को एक अक्षर द्वारा समझना चाहें तो अ, उ, म रूप ओंकार के भेद और रहस्य को जान लेना पर्याप्त होगा। यही ओंकार स्वरूप (अ० ४२) का तात्पर्य है। हमारा जो यह भौतिक जगत् है, जिसमें पञ्चभूतात्मक शरीर के जन्म के लिये पितृतत्व और मातृतत्त्व के सम्मिलन की आवश्यकता है उसे वैदिक भाषा में रोदसी ब्रह्माण्ड कहते हैं। उसमें भूर्लोक या पृथिवी माता है, स्वर्लोक या द्यौ पिता है, बीच का भुवर्लोक सन्धि या अन्तरिक्ष है। ऐसी कोई रचना नहीं जिसमें ये तीनों न हों। द्यावा-पृथिवी या पिता-माता इन्हें ही कूर्म संस्थान कहते हैं। प्रत्येक भूतमयी शरीर रचना के लिये कूर्म आवश्यक है। पुराणों के मनीषी वेदार्थ को अपने शब्दों में खींच कर भर रहे थे। पुराणों के तात्त्विक बोध के लिये वैदिक पृष्ठभूमि का ज्ञान अनिवार्य है।

योग-धर्म के इस सुन्दर प्रवाह में एक रोड़ा सा आ अटकता है और दत्तात्रेय मृत्यु का आवाहन करने वाले अपशकुन या अरिष्टों का वर्णन करने लग जाते हैं। ज्ञात होता है यह प्रक्षिप्त अंश (४३।१-४३) कहीं से बहता हुआ यहाँ आकर जुड़ गया है। दत्तात्रेय के अध्यात्म-योग से अलर्क के मन का अंधकार हट गया और उसकी विचारधारा ही बदल गई। वह सोचने लगा—'मेरे भाई सुबाहु ने और काशिराज ने मुझ पर आक्रमण करके मेरा भला ही किया। इस दुःख के बिना यह ज्ञान मुझे कहाँ प्राप्त होता?' दत्तात्रेय से विदा लेकर उसने काशिराज और अपने भाई सुबाहु से बड़ी प्रसन्न मुद्रा में कहा—'हे काशीश्वर! आपको इस राज्य की इच्छा हो तो भोग कीजिए, या आप चाहें तो इसे सुबाहु को दीजिए।' अलर्क के वचन से काशिराज आश्चर्य में पड़ गए—'हे अलर्क, क्या युद्ध के बिना ही तुमने राज्य छोड़ दिया? यह क्षत्रिय का धर्म नहीं। राजा को चाहिए कि शत्रुओं का उच्छेद करके मनचाहे भोगों को भोगे और यज्ञों से यजन करे।' अलर्क ने कहा—'हे वीर, मैं भी पहले ऐसा ही समझता था, पर अब उच्चतर ज्ञान मुझे मिल गया है। पाँच भूत और अन्तःकरण इनसे विलक्षण कोई चिच्छक्ति है उसका ज्ञान प्राप्त होने पर शत्रु-मित्र, प्रभु-भृत्य इनका भेद मिट जाता है। फिर न दुःख होता है, न भय। दत्तात्रेय की कृपा से मैंने वह ज्ञान पा लिया है। अब न मैं तुम्हारा शत्रु हूँ, न तुम मेरे शत्रु हो। सुबाहु ने मेरा कुछ अपकार नहीं किया। मैं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सबको अपना आत्मा मानता हूँ। हे राजन्, अब अपने शत्रु को मुझ से अतिरिक्त कहीं ढूँढ़ो।'

अलर्क के ये वचन सुनकर उसका ज्येष्ठ बन्धु सुबाहु गद्गद हो गया और उसने काशिराज से कहा—'हे मित्र, जिसलिए मैंने तुम्हारी सहायता ली थी वह मेरा कार्य हो गया। मेरा भाई अलर्क ग्राम्य भोगों में फँस गया था। उसे मार्ग पर लाने के लिये मैंने यह बानक रचा था सो पूरा हो गया।' तब सुबाहु ने काशिराज को भी अध्यात्म विद्या का कुछ उपदेश दिया और दोनों अपने-अपने स्थानको चले गए। अलर्क भी अपने पुत्र को राज्य देकर ब्रह्मभाव को प्राप्त हुआ।

पुराण का तीसरा भाग (अ० ४५-८०)

ऋषि मार्कण्डेय और उनके शिष्य क्रौष्टुकि का संवाद

यहाँ तक जड़ सुमति और उसके पिता का संवाद समाप्त हो जाता है। इसके आगे अध्याय ४५-८० तक जैमिनि और धर्म-पक्षी केवल ऊपरी श्रोता-वक्ता हैं। वास्तविक वक्ता मार्कण्डेय हैं जो अपने शिष्य क्रौष्टुकि से पुराण का कथन करते हैं। प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च द्विविधं कर्म वैदिकम् के (४५।१) सूत्र की व्याख्या के रूप मदालसा-अलर्क एवं अलर्क-दत्तात्रेय के संवादों में भागवत धर्म के दृष्टिकोण की खुल कर चर्चा हुई। पुराण का जो सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर एवं वंशानुचरित से विशिष्ट पुराना स्वरूप था उसके विषय में अबतक प्रायः मौन ही रक्खा गया है। अब एक नये प्रकरण और दृष्टिकोण की उद्भावना करते हुए यह अंश आरम्भ होता है। यह स्थावर और जंगम जगत् किस प्रकार उत्पन्न हुआ है? कैसे प्रलयकाल में इसका लोप हो जायगा? देव, ऋषि, पितर एवं भूतगणों के वंशों का प्रादुर्भाव कैसे हुआ, मन्वन्तरों का विस्तार क्या है? वंशानुचरित की कथाएँ क्या हैं? पृथिवी का जो पूर्ण संस्थान है और जो उसका विस्तार है वह भी सब कहिए।?' इस प्रकार जैमिनि ने जब धर्मपक्षियों से प्रश्न किया तो उन्होंने सरलता से यह कहकर छुट्टी ली कि ये सब विषय तो मार्कण्डेय और उनके ब्रह्मचारी क्रौष्टुकि के संवाद में आ चुके हैं, वहीं से इन विषयों को जानना चाहिए। संक्षेप में अध्याय ४५-८० के इस पुराणांश का कथासूत्र इस प्रकार है।

सर्व-प्रथम मार्कण्डेय ने अव्यक्त से जन्म लेने वाले ब्रह्मा और उनसे प्रकट होने वाली वेद-संहिताओं एवं पुराण-संहिताओं का उल्लेख किया। ब्रह्मा ही हिरण्यगर्भ हैं। उनसे प्रधान की उत्पत्ति होती है। नित्य एवं सूक्ष्म प्रकृति की संज्ञा प्रधान है। फिर ब्रह्मा से ब्रह्मांड की उत्पत्ति कही गई है। पुनः दिव्य और मानुष काल और चतुर्युगी का वर्णन है। फिर प्रजापति ब्रह्मा ने किस प्रकार प्रजाओं का निर्माण किया और वेदादि की सृष्टि किस प्रकार हुई इसका वर्णन किया गया है। पुनः आदिम मानव-सृष्टि से लेकर पृथिवी में जितने प्रकार की अन्य भौतिक सृष्टि है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उस सबका वर्णन किया गया है। दक्ष को निमित्त मानकर जो सृष्टि की प्रक्रिया बताई जाती थी उसका भी उल्लेख है। फिर अधर्ममयी सृष्टि का, विशेषतः दुःसह नामक असुर एवं उससे जन्म लेने वाले अपरिमित परिवार का उल्लेख है। पुनः रुद्रों की सृष्टि एवं पितर और ऋषियों की संतान का वर्णन है। अध्याय ५३ से मन्वन्तरों का वर्णन आरम्भ होता है। उसी प्रसंग में सप्तद्वीपों का उल्लेख आता है, और फिर भूमि का वर्णन करते हुए विशेषतः जम्बूद्वीप, मेरु पर्वत आदि महापर्वतों के साथ भारतवर्ष के भूगोल का विस्तार से उल्लेख है। इस पुराण का भुवनकोश सम्बन्धी अंश विस्तृत और महत्त्वपूर्ण है। इसमें दो प्रकार से भारतीय भूगोल का वर्णन किया गया है। एक कार्मुक संस्थान के नाम से, जो और पुराणों के समान ही परम्परागत वर्णन था (अध्याय ५७)। दूसरे की संज्ञा कूर्मसंस्थान है (अध्याय ५८), जिसमें भारत के नौ भागों का विस्तार से वर्णन गुप्तकालीन भौगोलिक नामों की पृष्ठभूमि में किया गया है। इन नामों का विस्तार से परिचय आवश्यक होगा। अध्याय ५९-६० में भद्राश्व, केतुमाल, उत्तरकुरु, किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्यक और हिरण्मय द्वीपों का संक्षिप्त वर्णन है।

भू-समुद्रादि संस्थान का उल्लेख करने के बाद पुनः मन्वन्तरों का सूत्र पकड़ते हुए स्वरोचिष नामक दूसरे मनु की कथा दी गई है जिसने मनोरमा और उसकी दो सखियों को बन्धन-मुक्त करके उनसे विवाह किया और पद्मिनी विद्या के प्रभाव से अपने तीन पुत्रों को अलग-अलग राज्यों में प्रतिष्ठित किया। पद्मिनी विद्या की विस्तृत व्याख्या करते हुए आठ निधियों का बहुत ही सटीक वर्णन किया गया है जिससे स्वर्ण युग के आर्थिक आदर्शों और विभागों का परिचय प्राप्त होता है (अध्याय ६८)। इसके अनन्तर एक राजा की कथा के व्याज से यह बताया गया है कि कर्कशा स्त्री का दुःशील स्वभाव किस प्रकार परिवर्तित किया जा सकता है। उसी उत्तम राजा की रानी से तीसरे मनु का जन्म हुआ जिनका नाम औत्तम पड़ा। फिर चौथे मनु तामस, पाँचवे रैवत, छठे चाक्षुष, सातवें वैवस्वत और आठवें सावर्णि के जन्म-कर्म की कथाओं का उल्लेख अध्याय अस्सी तक चला गया है। अब इन प्रकरणों को सांस्कृतिक दृष्टि से समझने का उपक्रम किया जाता है।

पुराणों की सृष्टिविद्या

इस अंश का पहला प्रकरण सृष्टि विद्या से सम्बन्ध रखता है। यह सृष्टि विज्ञान और भी अनेक पुराणों में आता है। एक प्रकार से 'सर्गश्च प्रतिसर्गश्च' की परिभाषा के अनुसार पंचलक्षणात्मक पुराण का यह अनिवार्य अंग था। सर्व-प्रथम जगत् के आदिकारण जगत् के नाथ कमलयोनि ब्रह्मा का जन्म हुआ। वे ही सृष्टि के समय ब्रह्मा, स्थिति के समय विष्णु और प्रलय के समय रुद्र का रूप धारण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करते हैं।[१] त्रिदेवों के इस स्वरूप की कल्पना भारतीय सृष्टि-विज्ञान विशेषतः पुराण दर्शन की मूल भित्ति है। पुराण ही क्यों, वेदों की त्रिगुणमयी प्रणवात्मिका सृष्टि विद्या की या अव्यय-अक्षर-क्षरात्मक सृष्टि विज्ञान की मूल प्रतिष्ठा यही थी। कितने ही नाम और रूपों में इसका उपबृंहण पाया जाता है। वस्तुतः पुराण-विद्या का श्वास-प्रश्वास त्रिदेवों की सुन्दर रहस्यमयी विद्या ही है। सृष्टि, स्थिति, प्रलय का नाम ही विश्व की अभिव्यक्ति है। यही गुणातीत अव्यक्त तत्त्व का सगुण भाव है। इन तीन देवों में कोई छोटा-बड़ा नहीं है। प्रत्येक अपने-अपने केन्द्र में स्वायत्त और सर्वशक्ति-सम्पन्न है। गणित में तीन केन्द्रों के बिना अण्ड की आकृति बनती ही नहीं। एक केन्द्रात्मक जो तत्त्व है वह स्वयं अपने तेज से परिपूर्ण रहता है। उसे स्वयम्भू कहते हैं। उसे ही मनु ने वृत्तौजा कहा है, अर्थात् उसका ओज या तेज वृत्त के रूप में स्वयं अपने ही केन्द्र में विलीन रहता है। वही आत्म-केन्द्रीय तेज जब दाहिने बायें फैलता है तब वह तीन केन्द्रों से युक्त होकर सृष्टि के लिये उपयोगी बन जाता है। यही अण्डविद्या है। यह सृष्टि एक अण्ड है, ब्रह्म से उत्पन्न होने के कारण स्वभावतः इसे ब्रह्माण्ड कहा जाता है। निर्गुण ब्रह्म का सगुण रूप ब्रह्माण्ड है। मूलभूत एक वृत्त जब तीन वृत्तों में परिवर्तित होता है वही अण्डसृष्टि है। यही एक गुण का त्रिगुण रूप में आविर्भाव है। एक एवं त्रिक इनकी बहुविध व्याख्या वैदिक साहित्य में पाई जाती है। इस मूलभूत सामग्री से पुराणों के त्रिकवाद या त्रिदेववाद का जन्म हुआ। पुराणों में कथाओं के व्याज से तीन देवों के चरित और लीलाओं का बहुत अधिक विस्तार पाया जाता है, किन्तु मूलभूत सत्य में कोई अन्तर नहीं है। पुराणों के दार्शनिक विचारों को समझने की यह कुंजी है। यदि इस मूलसूत्र की स्पष्ट प्रतीति बनी रहे तो पुराणों के अन्तहीन वर्णनों की भूलभुलैयों में विचरण करते हुए पाठक के मन को कोई घबराहट न होगी। षट्ऋतुओं में विस्तार पाने वाली भारतवर्ष की अनन्त प्रकृति के समान ही संस्कृत भाषा की अनन्त वर्णन शक्ति है। उस रचनात्मक शक्ति की निरन्तर हिलोरों से ही चतुर्लक्ष श्लोकात्मक पुराण साहित्य का जन्म हुआ। इस साहित्य का विस्तार हिमालय की शतसहस्र पर्वत द्रोणियों के समान है जिनमें अनेक ऊँची चोटियाँ, स्वच्छ जल से परिपूर्ण सरोवर और नदियों के प्रवाह हैं। अथवा उसके अपरिमित विस्तार की उपमा महाकान्तार की अनेक वनखण्डियों से की जा सकती है, जिनमें वृक्ष-वनस्पति, ओषधि और पुष्पों के उद्भव और विकास का कोई ओर-छोर नहीं मिलता। ऐसा यह विशाल पुराण-साहित्य है जिसकी प्रातिस्विक शक्ति के ओजायमान प्रवाह में एक ओर दर्शन

१—प्रणिपत्य जगन्नाथं पद्मयोनिं पितामहम्।
जगद् योनिं स्थितं सृष्टौ स्थितौ विष्णुस्वरूपिणम्।
प्रलये चान्तकर्तारं रौद्रं रुद्रस्वरूपिणम्॥ ४५। १९

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

धर्म, तत्त्वज्ञान के अनेक उदात्त वर्णनों के उदाहरण भरे पड़े हैं तथा दूसरी ओर बालसुलभ कथाओं के अक्षय्य भण्डार हैं जो सामाजिक जीवन की बहुमुखी सांस्कृतिक सामग्री को अपनी रोचनात्मक शैली में प्रस्तुत करते हैं।

कहा गया है कि जैसे ही अव्यक्त से जन्म लेने वाले ब्रह्मा जी उत्पन्न हुए, उनके मुखोंसे वेद और पुराण दो वाङ्मय तत्त्वों का आविर्भाव हुआ। वेद निगम और पुराण आगम है। वेद विश्व का केन्द्राधिष्ठित तत्त्व है। वह अति गूढ़ विवेचन के रूप में संगृहीत होता है। महर्षियों ने उसे ही वैदिक संहिताओं के रूप में प्राप्त किया। दूसरा वह ज्ञान है जो लोकव्यापी-जीवन से सम्बन्ध रखता है जिसका उद्भव लोक-जीवन की महती व्याख्या से होता है। वही पुराण या आगम है। पुराण शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए कहा गया है—

पुरा नवं भवति।

अर्थात् जो वाङ्मय एक ओर पुरा या पुरातनी सृष्टिविद्या या वेदविद्या से अपना सम्बन्ध बनाए रखता है, और दूसरी ओर नित्य नये नये रूप में जन्म लेनेवाले लोकजीवन से अपना सम्बन्ध जोड़े रहता है, वही पुराण या आगमशास्त्र है। भारतीय साहित्य में पुराण वाङ्मय की विचित्र स्थिति है। लोकतत्त्व और लोकजीवन की जैसी सुरक्षा इसमें है वैसी अन्यत्र नहीं है।

यहाँ कहा है कि जसे ब्रह्मा के मानस पुत्र सप्तर्षियों ने प्रजापति से वेदों को ग्रहण किया उसी अधिकार और व्रतचर्या से उन्हीं मानस सप्तर्षियों ने पुराणों को भी प्राप्त किया। अनेक ऋषियों ने बहुत प्रकार की पुराण संहिताओं की रचना की।[1] विश्व के रचयिता महान् आत्मा का जो ऐश्वर्य, ज्ञान, धर्म और वैराग्य है उसका परिचय वेदों के उपदेश के समान ही पुराणों के उपदेश के बिना सम्भव नहीं। यह पुराणशास्त्र प्रजापति से भृगु ने, भृगु से च्यवन ने, च्यवन से ऋषियों ने और ऋषियों से दक्ष ने प्राप्त किया। दक्ष से भृगुवंशी मार्कण्डेय को यह ज्ञान प्राप्त हुआ। इस कथन से सूचित होता है कि जिस पुराण का मार्कण्डेय से यहाँ सम्बन्ध कहा है वह भार्गवों की परम्परा की देन थी।

१—वेदान् सप्तर्षयस्तस्माज्जगृहुस्तस्य मानसाः।
पुराणं जगृहुश्चाद्या मुनयस्तस्य मानसाः॥ ४५।२३

उत्पन्नमात्रस्य पुरा ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः।
पुराणमेतद् वेदाश्च मुखेभ्योऽनुविनिःसृताः॥ ४५।२०

पुराणसंहिताश्चक्रुर्बहुलाः परमर्षयः।
वेदानां प्रतिभागश्च कृतस्तैस्तु सहस्रशः॥ ४५।२१

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ठीक यही बात महाभारत के सम्पादक श्री विष्णु सीताराम सुकथनकर ने 'भृगुवंश और भारत' नामक अपने लेख में महाभारत के सम्बन्ध में कही है।

सृष्टि का मूलाधार कोई देवतत्त्व है, उसी से भूतत्त्व का जन्म होता है। देव और भूत इन्हीं दोनों का सम्मिलित नाम विश्व है। देवतत्त्व को ही जगद्योनि, अजन्मा, अव्यय, परमपद, आदिपुरुष, ब्रह्मा, परमकारण, धाता, हिरण्यगर्भ, लिंग आदि नामों से इंगित किया गया है। सबसे पहले मार्कण्डेय ने उस महान् कारण को प्रणाम किया है। जितना भी प्रधान या सूक्ष्म प्रकृति के रूप में भूतादिवर्ग है यह सब उसी से जन्म लेता है। उस अव्यक्त से सर्व-प्रथम जिसका आविर्भाव होता है उसकी दार्शनिक संज्ञा प्रधान है। उसे ही सूक्ष्म नित्य प्रकृति भी कहा जाता है। यह प्रकृति त्रिगुणमयी है। सत्त्व, रज, तम तीनों गुण इसमें साम्यावस्था में रहते हैं। साम्यावस्था वाली इस प्रकृति से गुणवैषम्य के कारण जिन पञ्चभूतों का जन्म होता है वह विकृति या वैकारिक सृष्टि कहलाती है[1]। इस प्रकार की प्रकृति से जो पूर्व की अवस्था थी उसे ही तत्त्वचिन्तक ब्रह्म कहते हैं। वही जगत् की योनि है और सबसे पूर्व अविज्ञेय रूप में विद्यमान था। तीन गुणों का आविर्भाव और लय उसी में होता है। सृष्टि से पूर्व की अवस्था में उसे ही अविज्ञेय तत्त्व कहते हैं। उस गुणातीत ब्रह्म में एक ओर क्षेत्रज्ञ या आत्मतत्त्व और दूसरी ओर तीनों गुण प्रसुप्त अवस्था में लीन रहते हैं। जब वह सृष्टि-प्रक्रिया के लिये अभिमुख होता है तो गुण और क्षेत्रज्ञ ये दोनों तत्त्व क्रियाशील हो उठते हैं, अथवा यह कहना उपयुक्त होगा कि अपने क्षेत्रज्ञ रूप में जाग्रत् होकर वह स्वयम्भू तत्त्व तीन गुणों को प्रकट करता है। जिस समय क्षेत्रज्ञ या चैतन्य तत्त्व क्रियाशील होता है तो सर्व प्रथम जिस शक्ति का आविर्भाव होता है उसे प्रधान या सूक्ष्म प्रकृति की संज्ञा दी गई है। प्रधान में सत्त्व रज और तम ये तीनों गुण साम्य अवस्था में रहते हैं। कोई एक गुग किसी दूसरे गुण से विशिष्ट नहीं होता। विशेष के अभाव में सृष्टि भी नहीं होती। अतएव तीसरी अवस्था वह है जिसमें महत्तत्त्व या बुद्धि तत्त्व का जन्म होता है। बुद्धि तत्त्व का ही नाम मन है। मन ही अहंभाव या अहंकार की योनि है। तीन गुणों में सत्त्व गुण का नाम मन है। बुद्धितत्त्व या अहं की कल्पना सीमाभाव के बिना नहीं होती। इसी के लिये कहा गया है कि प्रधान या गुण साम्यमयी अव्यक्त सूक्ष्म प्रकृति के गर्भ में बुद्धिरूपी महत्तत्त्व आवरण को प्राप्त हुआ, अर्थात् जो असीम था उसमें सीमाभाव का जन्म हुआ। जिसमें किसी एक केन्द्र का अभाव था उसमें केन्द्र का जन्म हुआ। एक-एक केन्द्र का नाम ही बुद्धि या अहं है। इसे ही वैदिक भाषा में कहा जाता है कि जो व्यापक ऋततत्त्व था उसमें सत्य का जन्म हुआ। केन्द्र-विहीन

१—प्रधानं कारणं यत्तदव्यक्ताख्यं महर्षयः।
यदाहुः प्रकृतिं सूक्ष्मां नित्यां सदसदात्मिकाम्॥ ४५।३२

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शक्ति तत्त्व ऋत है, वही जब एक बिन्दु पर सीमित और अभिव्यक्त होता है तब उसे सत्य कहते हैं। पुराण की भाषा में अव्यक्त प्रधान ने सृष्टि के लिये महत्तत्त्व को उत्पन्न किया, या उसे सीमित बनाया। अव्यक्त से आवृत होकर महत्तत्त्व ही सात्त्विक, राजस, तामस इन तीन रूपों में प्रकट हुआ। यही तीन प्रकार का अहंकार है जिसे वैकारिक, तैजस, और तामस कहते हैं। एक मन के रूप में, दूसरा प्राण के रूप में और तीसरा भूत या वाक् के रूप में प्रकट होता है। जितने भी प्राणी या पदार्थ हैं सभी का जन्म इन तीन प्रकार के अहं से हुआ है। एक भूतादि असंज्ञ सृष्टि है जैसे मिट्टी, ईंट, पत्थर, लोहा आदि। यह तामस अहंकार से उत्पन्न तामसी सृष्टि है। दूसरी अन्तःसंज्ञ सृष्टि है जैसे तृण, लता, वनस्पति, वृक्ष आदि। इसे तैजस अहंकार युक्त राजसी सृष्टि कहते हैं। तैजस का अर्थ प्राण तत्त्व है। इस सृष्टि में प्राण की क्रिया स्फुट हो जाती है, किन्तु मानसी क्रिया भीतर छिपी हुई रहती है, जैसी वृक्षों में हम देखते हैं। जहाँ इन्द्रियाँ स्फुट हो जांय वहां मन का विकास पूरा समझना चाहिए। यही तीसरी ससंज्ञ सृष्टि है जैसे कीट, पतंग, पशु, पक्षी, मनुष्य आदि। यही वैकारिक या सात्त्विक अहंकारमयी सृष्टि है। पंचकर्मेंद्रियां, पंचज्ञानेन्द्रियां और एक मन—इस विकारमय सर्ग के विकसित होने के कारण ससंज्ञ सृष्टि को वैकारिक कहा जाता है।[1] पञ्चभूत और पञ्चतन्मात्रा की सृष्टि तामस अहंकार से होती है। तन्मात्रा और भूतसृष्टि की यहां स्पष्ट व्याख्या की गई है! पहले तन्मात्रा और फिर उससे स्थूल आकाशादिक का जन्म होता है। शब्द तन्मात्रा से शब्द लक्षण आकाश, उन दोनों से स्पर्श तन्मात्रा, उससे वायु, पुनः उन चारों से रूप तन्मात्रा और रूप तन्मात्रा से ज्योति या तेज, पुनः स्पर्श मात्रात्मक वायु और रूप तन्मात्रा तथा ज्योति से रस तन्मात्रा का जन्म होता है। रसतन्मात्रा से जल की उत्पत्ति होती है। रसतन्मात्रायुक्त जल और रूपतन्मात्रा के विकार से गन्धतन्मात्रा का जन्म होता है। उन सब के संघात से गन्धतन्मात्रा और भौतिक पृथिवी की उत्पत्ति होती है। पूर्व पूर्व गुण की मात्रा उत्तर उत्तर में आती है, इसीलिए उसे तन्मात्रा कहते हैं (तस्मिंस्तस्मिंस्तु तन्मात्रं तेन तन्मात्रता स्मृता।) सूक्ष्मभाव से स्थूलभाव के विकासक्रम में आकाश और उसकी तन्मात्रा स्पर्शमात्रा में प्रविष्ट होती हैं। तब वायु में शब्द और स्पर्श दोनों गुण आ जाते हैं। किन्तु उसका अपना विशेष गुण स्पर्श है। शब्द

१—भूततन्मात्रसर्गोऽयं अहंकारात्तु तामसात्।
वैकारिकादहंकारात् सत्त्वोद्रिक्तात्तु सात्त्विकात्।
वैकारिकः स सर्गस्तु युगपत् सम्प्रवर्तते ॥ ४५।४८

बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैव पञ्च कर्मेन्द्रियाणि च।
तैजसानीन्द्रियाण्याहुर्देवा वैकारिका दश ॥ ४५।४९
एकादशं मनस्तत्र देवा वैकारिकाः स्मृताः। ४५।५०

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और स्पर्श दोनों रूप में प्रविष्ट होते हैं। उससे अग्नि शब्द, स्पर्श और रूप गुणों से युक्त उत्पन्न होता है। शब्द, स्पर्श, रूप ये तीन गुण इस तन्मात्रा में प्रविष्ट होते हैं। उससे जल की उत्पत्ति होती है जिसमें तीन गुण पहले और एक निजी गुण रस रहता है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस ये चार तन्मात्राएं गन्ध में प्रविष्ट होती हैं और उन सबके मिलने से पृथिवी की उत्पत्ति होती है। यही स्थूल भूतों के जन्म का क्रम है। ये पांचों कभी शान्त, कभी घोर, और कभी मूढ़ या प्रसुप्त अवस्था में रहते हैं। तन्मात्राओं के उदय से पहले भी ये पञ्चभूत रहते अवश्य हैं किन्तु वह उनकी अविशेष अवस्था कहलाती है। तन्मात्राओं के बाद ही वे अपनी अपनो विशेषताएं लिए हुए एक दूसरे से पृथक हो जाते हैं। यही उनकी पञ्चीकरण पद्धति है। पूर्व पूर्व का सूक्ष्मकारण उत्तर उत्तर के स्थूल कार्य में अनुप्रविष्ट या अनुस्यूत रहता है, यह सृष्टि-रचना का नियम है।[1] पञ्चभूतों में जब अपना-अपना विशेष गुण नियत हो गया तो उस-उस तन्मात्रा की ग्राहक इन्द्रियां भी अस्तित्व में आ गईं। पृथक् रह कर इन सातों में से कोई भी प्रजासृष्टि करने में समर्थ न था। प्रधान या सूक्ष्म प्रकृति, महतत्त्व या बुद्धितत्त्व, और पञ्चतन्मात्रासंयुक्त पंचभूत ये किसी एक संघात चिन्ह की अपेक्षा करने लगे। एक दूसरे से संयुक्त हो कर और एक दूसरे का आश्रय लेकर पुरुष को अधिष्ठाता मान कर अव्यक्त या सूक्ष्म प्रकृति की सहायता से इन्होंने एक साथ अंड का उत्पादन किया। जल बुद्बुद के समान यह अंड क्रम से वृद्धि को प्राप्त होने लगा। भूतों से समुत्पन्न अंड महत् के साथ जल के मध्य में स्थित हुआ। चाहे सृष्टि का हिरण्मयाण्ड या ब्रह्माण्डरूपी अण्ड हो, चाहे पक्षी या माता के उदर में जरायु से घिरा हुआ बालरूपी अण्ड हो सब के जन्म और वृद्धि की प्रक्रिया समान है। अण्ड के लिये कहा है कि जल में रहकर ही वह वृद्धि पाता है।[2]

१—शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धं समाविशत्। ४५।५५
संहता गन्धमात्रेण आवृण्वंस्ते महीमिमाम्।
तस्मात्पञ्चगुणा भूमिः स्थूला भूतेषु दृश्यते ॥
शान्ता घोराश्च मूढाश्च विशेषास्तेन ते स्मृताः।
परस्परानुप्रवेशाद् धारयन्ति परस्परम् ॥ ४५।५६-५७

२—एकसंघातचिह्नाश्च सम्प्राप्यैक्यमशेषतः।
पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च अव्यक्तानुग्रहेण च ॥ ४५।६१
महदाद्या विशेषान्ता ह्यण्डमुत्पादयन्ति ते।
जलबुद्बुदवत्तत्र क्रमाद् वै वृद्धिमागतम् ॥ ४५।६२
भूतेभ्योण्डं महाबुद्धे वृहत्तदुदकेशयम्।
प्राकृतेऽण्डे विवृद्धः सन् क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंज्ञितः ॥ ४५।६३

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पुरुष और प्रकृति के सम्मिलन का परिपूर्ण रूप अण्डसृष्टि है। उसके भीतर जीवन का मूल स्रोत पुरुष या क्षेत्रज्ञ निवास करता है। यदि उसमें देवतत्त्व या प्राणतत्त्व का निवास न हो तो अण्ड के विकास और वृद्धि से जीवन की सम्भूति नहीं हो सकती। अण्ड का निजी स्वरूप भौतिक या प्राकृतिक है। इस तथ्य को यहां कई प्रकार से कहा है। अव्यक्त त्रिगुणमयी प्रकृति जो पहले साम्यावस्था में रहती है और फिर गुणवैषम्य को प्राप्त हो कर महत्तत्त्व और पञ्चभूतों के रूप में विकसित होती है वह अण्ड निर्माण का भौतिक हेतु है। इन सातों का संघात एक ओर और उसमें अधिष्ठित पुरुष या क्षेत्रज्ञ की सत्ता दूसरी ओर, इसी की संज्ञा अण्ड या जीवन है। अण्ड शरीर है और उसमें रहने वाले पुरुष को शरीरी या शारीरक कहते हैं। वस्तुतः तो ब्रह्म या चैतन्य पुरुष ही अण्डरूप में परिणत भूतों का भी आदि कर्त्ता है। यही मूल वैदिक सिद्धान्त था। पौराणिक दर्शन की भी मूल भित्ति यही है।[1] एक के ऊपर एक आवरणों के चढ़ने से अण्ड का जन्म होता है। विराट् विश्व में और प्रत्येक पिण्ड में अव्यक्त प्रधान, महान्, पञ्चभूत और पुरुष यही आठ आवरण या आवरणकर्ता तत्त्व हैं।[2]

क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ इन दोनों का स्पष्ट भेद सृष्टि में सर्वत्र गोचर होता है। इनमें अव्यक्त से लेकर भूतों तक प्राकृतिक सृष्टिक्षेत्र है और उसमें रहनेवाला ब्रह्मा या ब्रह्मतत्व क्षेत्रज्ञ हैं। गीता में क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ विद्या का विस्तृत विवेचन है। ऋग्वेद से ही क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ विद्या का आरम्भ पाया जाता है। वहाँ कहा है—

अक्षेत्रवित् क्षेत्रविदं ह्यप्राट् स प्रैति क्षेत्रविदानुशिष्टः।
एतद्वै भद्रमनुशासनस्योत स्रुतिं विन्दत्यञ्जसीनाम्॥

ऋग्वेद १०।३२।७

जो क्षेत्र को नहीं जानता वह क्षेत्रविद् या क्षेत्रज्ञ से उसके विषय में पूछता है। क्षेत्रज्ञ जब इस विषय में उसे उपदेश करता है तब अक्षेत्रज्ञ को भी मार्ग मिल जाता है। इस उपदेश की सचमुच यही महिमा है कि न जाननेवाला

१—स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते।
आदिकर्ता च भूतानां ब्रह्माग्रे समवर्तत॥
तेन सर्वमिदं व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम्॥ ४५।६४-६५

२—एभिरावरणैरण्डं सप्तभिः प्राकृतैर्वृतम्॥ ६९
अन्योन्यमावृतवता अष्टौ प्रकृतयः स्थिताः।
एषा सा प्रकृतिर्नित्या तदन्तः पुरुषश्च सः॥ ७०
ब्रह्माख्यः कथितो यस्ते समासात् श्रूयतां पुनः। ७१

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भी आगे के मार्ग को जान जाता है।[१] इस प्रसंग में दो बातें विशेष ध्यान देने योग्य हैं। एक तो अण्ड को उदकेशय या जल में मग्न कहा गया है, इसमें जल शब्द का क्या अर्थ है? और दूसरे ब्रह्म और ब्रह्मा इन दोनों का अण्डसृष्टि में स्पष्ट सम्बन्ध क्या है? आपः या जल का अभिप्राय सृष्टि विज्ञान में इस भौतिक जल से नहीं किन्तु उस महान् शक्तिसमुद्र या सूक्ष्म प्राकृत तत्त्व से है जो सृष्टि के पूर्व में भी विद्यमान रहता है (प्राइमार्डियल मैटर)। 'यदाप्नोत् तस्मादापः' क्योंकि वह अव्यक्त या साम्यावस्था में सर्वत्र व्याप्त था इसीलिए उसकी संज्ञा आपः है। उसे ही प्रधान और विराज् या विराट् भी कहते हैं। इसी विराज् के भीतर महत् या बुद्धितत्त्व या मनस्तत्त्व का केन्द्र बीजरूप में प्रकट होता है। वही अण्ड का निर्माण करता है। अण्ड अपने संवर्धन के लिये बाहर से जिस शक्तितत्त्व या 'आपः' को खींचता है वह महान् शक्ति समुद्र का एक अंश ही है। यदि एक केन्द्र में अभिव्यक्त जीवन के चारों ओर शक्ति का यह महान् समुद्र न हो तो जीवन या अण्ड की वृद्धि हो ही नहीं सकती। यही अण्ड का जल में मग्न रहना है। यों भी माता के उदर में जिस क्षण से अण्ड-सृष्टि का बीजाधान होता है उसी समय से अण्ड के रूप में अंकुरित वह जीवन अपने चारों ओर के रसतत्त्व को भीतर खींचकर बढ़ता रहता है और जब उसकी वृद्धि पूर्ण हो जाती है तब परिपक्व अवस्था में वह माता के उदर से बाहर फेंक दिया जाता है। यह शक्ति का महान् चमत्कार है जो प्रत्येक भूतसर्ग के रूप में प्रत्यक्ष या स्फुट अनुभव में आता है। पुराणकार ने विज्ञान और काव्य की भाषा को एक में मिलाते हुए कहा है कि क्षेत्रज्ञ या पुरुष से अधिष्ठित होकर प्राकृत तत्त्वों का वह जन्म इस रूप में और इस वेग से बाहर आता है मानों नभमण्डल में बिजली कौंध उठी हो या विद्युत् की शक्ति ने उस अंड को बाहर फेंक दिया हो। पुरुष और प्रकृति के इस सम्मिलित सर्ग को कौन जानबूझ कर बनाता है? यह तो सृष्टि की स्वभावसिद्ध नैसर्गिक प्रक्रिया है—

> इत्येष प्राकृतः सर्गः क्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्तु सः।
> अबुद्धिपूर्वः प्रथमः प्रादुर्भूतस्तडिद्यथा ॥ ४६।७३

ब्रह्मा के सम्बन्ध में ज्ञातव्य है कि वस्तुतः ब्रह्म-तत्व ही ब्रह्मा है। सृष्टि से पूर्व की गुणातीत अवस्था में जो ब्रह्म है वही अण्डरूप पुर के निर्माण के बाद पुरुष कहा जाता है (पुरि शेते इति पुरिशयः पुरुषः)। प्रत्येक अण्ड या विराट् सृष्टि का जो देश और काल में विस्तार है वही उसका द्यावापृथिवी है। उसे ही माता और पिता कहते हैं। मातृ-तत्त्व और पितृ-तत्त्व के सम्मिलन से ही

१—अक्षेत्रवित् का ही पर्याय अक्षेत्रज्ञ था जिससे बने हुए नवीन शब्द अक्षेत्रज्ञ्य (क्षेत्र को न जानने का भाव) का पाणिनिने उल्लेख किया है (७।३।३०)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रत्येक भौतिक सृष्टि सम्भव होती है। सृष्टिविज्ञान का यह एक स्थिर नियम है कि जो जिसकी सृष्टि करता है वह स्वयं उस सृष्टि में प्रविष्ट हो जाता है जैसे पिता अपने पुत्र में, वृक्ष अपने बीज में। इसे ही वैदिक साहित्य में यों कहा है—

तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्।

जब अव्यक्त मूल से भौतिक रचना होने लगी तो अव्यक्त, महान्, पञ्चभूत, इन सात भौतिक या प्राकृत तत्त्वों से जो संघात बना वह उस मूल गुणातीत ब्रह्मतत्व का ही विपरिणाम था। फिर वह अनन्त ब्रह्म अपने एक अंश से इस प्राकृत सर्ग में प्रविष्ट हो जाता है। यही इस भूतसर्ग के जीवन या प्राणन का कारण होता है। यदि उस मौलिक देवतत्त्व का कहीं भी इससे सम्बन्ध टूट जाय तो इसमें प्राण का स्पन्दन नहीं हो सकता। सामने फैली हुई भूत सृष्टि में प्राण के स्पन्दन या प्राणन क्रिया की जो एक श्रृङ्खला है, जिसका आदि-अन्त या ओर-छोर नहीं दिखाई पड़ता, वह उस ब्रह्म तत्त्व के ही अनुप्रवेश के कारण है। इसे ही मनुस्मृति में यों कहा है कि जब हिरण्यगर्भ रूपी अण्ड का जन्म हुआ तो सर्वलोक पितामह ब्रह्मा ने स्वयं उसमें प्रवेश किया। गुणातीत तत्व ब्रह्म है, वही त्रिगुणात्मक अण्ड सृष्टि के भीतर प्रविष्ट रूप में ब्रह्मा कहा जाता है।[1] ब्रह्म और ब्रह्मा दोनों शब्द सहेतुक हैं और एक ही उपबृंहणात्मक या संवर्धनशील प्रक्रिया की ओर संकेत करते हैं। उपबृंहण और संवर्धन इसी का नाम विश्वसृष्टि है। यह विश्व किसी महान् शक्ति समुद्र के स्रोत में से भरा हुआ शक्तिरस का एक कमण्डलु या पात्र है। वह स्रोत अनन्त है, यह विश्व सान्त है। वह असीम, यह सीमित है। वह अक्षय है, यह क्षयिष्णु है। वह नित्य है, यह क्षणिक है। वह न सत् है न असत् है, यह सत् असत् दोनों है। वह ध्रुव है, यह परिवर्तनशील है। इस प्रकार चाहे जितना विस्तार करते जाँय दोनों के द्विविरुद्ध भावों का भेद स्पष्ट है। वैसे तो दोनों एक ही शक्ति के दो रूप हैं और वह महती शक्ति सर्वभूतधात्री, सर्वलोकनमस्कृता, देवमाता अदिति है। सृष्टि-विद्या के सम्बन्ध में पूर्व और पश्चिम दोनों का अभिमत अन्ततोगत्वा समान ही है—

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः।
विश्वे देवा अदितिःपञ्चजना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम्॥

ऋग्वेद १।७९।१०

१—यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम्।
तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते॥ मनुस्मृति १।११
अर्थात् अव्यक्त सदसदात्मक जो नित्य-कारण है वह ब्रह्म है और उसी से विसृष्ट या प्रेरित जो सृष्टि में अनुप्रविष्ट कारण है वह ब्रह्मा कहा जाता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

द्युलोक, अन्तरिक्ष और पृथिवी अदिति का ही रूप है। अदिति ही माता, पिता और पुत्र के रूप में प्रकट होती है। सब देवता अदिति के रूप हैं। पञ्चजन या पञ्चप्राणात्मक प्रेरक शक्तियाँ अदिति से जन्म लेती हैं। भूत और भविष्य अदिति का रूप हैं। ऐसी अखण्ड देवमाता अदिति विश्व की एकमात्र नित्य महती शक्ति है। अपनी प्राणन क्रिया से वह स्वयं ही विद्युत् के समान प्रस्फुटित होती रहती है। उसका विराट् स्पन्दन अतीव रहस्यमय और चमत्कार से युक्त है।

सृष्टि के ये अचिन्त्य तत्त्व पुराणकारों की काव्यमयी भाषा में जिस सरलता से उतर आते हैं उसे देखकर किसी भी सहृदय साहित्यिक को वास्तविक आनन्द हुए बिना न रहेगा। सृष्टि को दिन और रात्रि को प्रलय की संज्ञा दी गई है। सृष्टि का आरम्भ दिन के आरम्भ में पौ फटने के समान है। उस समय जगत् का कोई आदि कारण जो स्वयं अनादि है, जो सबका हेतु होने पर भी स्वयं अचिन्त्य है, स्वयं पर रहता हुआ सब अवर या बाद की क्रियाओं को जन्म देता है, वही जगत्पति परमेश्वर प्रकृति और पुरुष दोनों को अपनी योगशक्ति से क्षुभित करता है। जैसे नवयौवना स्त्री में मद छा जाता है और वह प्रजनन के योग्य बन जाती है, जैसे वसन्त में मलयानिल वायु आकर वृक्ष-वनस्पतियों के रस को गुदगुदा देती है एवं कलियाँ और पुष्प फुटाव लेने लगते हैं, वैसे ही अपने योग से मूर्त भाव में आने के लिये वह ब्रह्मसंज्ञक देव प्रधान या अव्यक्त प्रकृति को क्षुभित कर देता है और स्वयं ब्रह्माण्ड कोश में जन्म लेता है। वही क्षोभ करने वाला है और वही क्षुभित होने वाला है। संकोच और विकास इन दो धर्मों के रूप में वही प्रधान या प्रकृति को स्पन्दित करता है और गुणरहित होकर भी रजोगुण को जन्म देता है। उस रजोगुण या क्रियात्मक गतितत्त्व को ही ब्रह्मा कहते हैं जिससे प्रजाओं की उत्पत्ति होती है।[1]

संकोच और विकास यही सृष्टि का मूल रूप है। देवतत्त्व या प्राण

१—अहर्मुखे प्रबुद्धेषु जगदादिरनादिमान् ।
सर्वहेतुरचिन्त्यात्मा परः कोऽप्यपरक्रियः ॥
प्रकृतिं पुरुषं चैव प्रविश्याशु जगत्पतिः ।
क्षोभयामास योगेन परेण परमेश्वरः ॥
यथा मदो नवस्त्रीणां यथा वा मलयानिलः ।
अनुप्रविष्टः क्षोभाय तथाऽसौ योगमूर्तिमान् ॥
प्रधाने क्षोभ्यमाने तु स देवो ब्रह्मसंज्ञितः ।
समुत्पन्नोऽण्डकोशस्थो यथा ते कथितं मया ॥
स एव क्षोभकः पूर्वं स क्षोभ्यः प्रकृतेः पतिः ।
स सङ्कोचविकाशाभ्यां प्रधानत्वेऽपि च स्थितः ॥ (४६।८–१२)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संकोच और विकास के रूप में प्रधान या साम्यगुणमयी प्रकृति में प्रविष्ट होकर उसे स्पन्दित कर देता है, यही विश्व का आविर्भाव है। "स सङ्कोच विकासाभ्यां प्रधानत्वेऽपि च स्थितः"—यह सृष्टि का ऐसा सूत्र है जिसके लिये पुराणकार की पर्याप्त प्रशंसा करना कठिन है। संकोच और विकास को ही वैदिक भाषा में समञ्चन-प्रसारण कहा गया है—

प्राणो वै समञ्चनप्रसारणम्

शतपथ ८।१।४।१०

इसे ही प्राणन और अपानन क्रिया कहते हैं—अन्तश्चरति रोचनाऽस्य प्राणादपानती (ऋग्वेद १०।१८९।२)। फैलना और सिकुड़ना येही एक गतितत्त्व के दो रूप हैं। गतितत्त्व या स्पन्दन ही सृष्टि का मूल हेतु है। जो छोटे से छोटा बीज अंकुरित होता हुआ दिखाई पड़ता है उसके केन्द्र में संकोचविकासरूप स्पन्दन स्फुट हो जाता है। सक्रिय बना हुआ वह देवतत्त्व अपनी प्राणापान शक्ति से भूतों को अपने भीतर खींच कर स्वस्वरूप में परिवर्तित कर लेता है। इसी से वृक्ष-वनस्पति, कीट-पतंग, पशु-पक्षी, मानव आदि वैकारिक या भूतसृष्टि बढ़ रही है। क्रियाशीलता का ही वैज्ञानिक नाम रजोगुण है। वही क्षोभ है जो साम्यावस्थायुक्त अव्यक्त प्रकृति का संस्पर्श करके उसे प्रजनन योग्य बनाता है। रजोगुण का नाम ही ब्रह्मा है।[1] वैदिक भाषा में अक्षर तत्त्व को ही प्राण या रजोगुण कहते हैं, क्षरतत्त्व भूत या तमोगुण की संज्ञा है। इन दोनों से व्यतिरिक्त तीसरा अव्ययतत्त्व या अव्ययपुरुष मनस्तत्त्व या सत्त्वगुण की संज्ञा है।

अध्याय ४६ के आरम्भ में 'प्रतिसञ्चर' शब्द का प्रयोग हुआ है। प्राचीन परिभाषा के अनुसार सृष्टि को सञ्चर और लय को प्रतिसञ्चर कहते थे। केन्द्र से परिधि की ओर गति करना या विकास सञ्चर है, और परिधि से केन्द्र की ओर लौटना या संकोच प्रतिसञ्चर कहा जाता है। मार्कण्डेय से उनके शिष्य ने पूछा—'भगवन्, आपने अण्डसृष्टि की बात समझाई और यह भी कहा कि ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा का जन्म कैसे होता है, पर मैं जानना चाहता हूँ कि जब प्रलयकाल में भूतों की सृष्टि नहीं रहती या भीतर खींच ली जाती है तब भी कुछ सत्ता रहती है या नहीं ?[2] इस स्पष्ट प्रश्न का मार्कण्डेय ने भी वैसा ही स्फुट उत्तर दिया—'जब यह सब जगत् अव्यक्त प्रकृति में लीन हो जाता है तब उसे प्राकृत प्रतिसञ्चर कहा जाता है। उस समय अव्यक्त प्रकृति या प्रधान भौतिक विकारों

१—उत्पन्नः स जगद्योनिरगुणोऽपि रजोगुणम्।
भुंजन् प्रवर्तते सर्गे ब्रह्मत्वं समुपाश्रितः ॥ ४६।१३

२—यदा न सृष्टिः भूतानामस्ति किन्तु न चास्ति वा।
काले वै प्रलयस्यान्ते सर्वस्मिन्नुपसंहृते ॥ ४६।२

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

को अपने भीतर खींच लेती है, एवं प्रकृति और पुरुष दोनों सन्तुलित हो जाते हैं, कोई एक दूसरे पर संघर्ष नहीं करता। अथवा वैज्ञानिक भाषा में कहा जाय तो यों समझना चाहिए कि तमोगुण और सत्त्वगुण समत्वभाव से रहते हैं, दोनों में से कोई भी उद्रेक या उत्थान को नहीं प्राप्त होता और न कोई किसी से कम या अधिक होता है। उस समय रजोगुण सत्त्व और तम के साथ बराबर बराबर मिला रहता है जैसे तिलों में तेल और दूध में घी समान भाव से फैला रहता है।

वैदिक सृष्टि विज्ञान में जिसे अव्यय ब्रह्म, अक्षर ब्रह्म और क्षर ब्रह्म कहते हैं उसे ही सांख्य दर्शन की परिभाषा में सत्त्व, रज और तम कहा जाता है। उसे ही पिण्डात्मक भूतसर्ग की दृष्टि से मन, प्राण और वाक् कहते हैं। पुराणों में उन्हीं की संज्ञा विष्णु, ब्रह्मा और रुद्र है। एक स्वयम्भू तत्त्व या सृष्टि के भौतिक प्राण की ये तीन अवस्थाएँ हैं। इनमें न कोई बड़ा है न छोटा। जहाँ एक रहता है वहाँ दोनों भी उसके साथ ओतप्रोत रहते हैं। एकक्षण के लिये भी इनका परस्पर वियोग नहीं होता। ये तथ्य पुराण के इस प्रकरण में इतनी स्पष्टता से कहे गए हैं कि इनके सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं रहता और यही प्रतीति होती है कि श्रुतियों के प्राचीन अर्थ ही पुराण आदि स्मृतियों में भर दिए गए थे—

ब्रह्मत्वे सृजते लोकान् रुद्रत्वे संहरत्यपि।
विष्णुत्वे चाप्युदासीनस्तिस्रोऽवस्थाः स्वयम्भुवः॥
रजो ब्रह्मा तमो रुद्रो विष्णुः सत्त्वं जगत्पतिः।
एत एव त्रयो देवा एत एव त्रयो गुणाः॥
अन्योन्यमिथुना ह्येते अन्योन्याश्रयिणस्तथा।
क्षणं वियोगो न ह्येषां न त्यजन्ति परस्परम्॥
(४६।१७-१९)

इसी प्रसंग में आगे मन्वन्तर की काल संख्या बताई गई है। चौदह मन्वन्तरों का एक ब्राह्म दिन और उतने ही काल की ब्राह्मी रात्रि होती है। एक रात्रि और

१—यदा तु प्रकृतौ याति लयं विश्वमिदं जगत्।
तदोच्यते प्राकृतोऽयं विद्वद्भिः प्रतिसञ्चरः॥ ४६।३
स्वात्मन्यवस्थितेऽव्यक्ते विकारे प्रतिसंहृते।
प्रकृतिः पुरुषश्चैव साधर्म्येणावतिष्ठतः॥ ४६।४
तदा तमश्च सत्त्वश्च समत्वेन व्यवस्थितौ।
अनुद्रिक्तावनूनौ च तत्प्रोतौ च परस्परम्॥ ४६।६
तिलेषु वा यथा तैलं घृतं पयसि वा स्थितम्।
तथा तमसि सत्त्वे च रजोऽप्यनुसृतं स्थितम्॥ ४६।६

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एक दिन के सृष्टि प्रलयात्मक क्रम से ब्रह्मा का एक वर्ष बनता है और इस प्रकार के दिव्य वर्षों से उनकी शतसांवत्सरिक आयु या सौ वर्ष पूरे होते हैं। ब्रह्मा के सौ वर्षों को 'पर' कहा जाता है और पचास वर्षों को 'परार्ध' कहते हैं। ब्रह्मा की आयु का एक परार्ध बीत चुका है जिसके अन्त में पाद्म महाकल्प हुआ था। दूसरे परार्ध का पहला कल्प वाराहकल्प के नाम से अब चालू है। यहां यह उल्लेखनीय है कि ब्रह्मा के दिन के अन्त में जो प्रलय होती है वह आंशिक या नैमित्तिक प्रलय है और सौ वर्ष के अन्त में जो प्रलय होती है उसे नित्य प्रलय कहा है। आंशिक प्रलय की एक विशेषता है कि इसमें भूर्भुवः स्वः या पृथिवी अन्तरिक्ष द्यौ रूप जो अग्नीषोमात्मक या भूत-भौतिक ब्रह्माण्ड है उसी का लय होता है। महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक ये चार उसमें बने रहते हैं। भूर्भुवः स्वः इन तीनों का नाम रोदसी ब्रह्माण्ड है। इसी में मातृतत्त्व और पितृतत्त्व के सम्मिलन से भौतिक सृष्टि होती है। इससे ऊपर महर्लोक और जनलोक को क्रन्दसी ब्रह्माण्ड कहा जाता है जिस में भूतों से निरपेक्ष प्राणमयी सृष्टि होती है, उसे ही परमेष्ठी लोक कहते हैं। उसकी सत्ता आंशिक प्रलय में नष्ट नहीं होती। मह और जन से ऊपर दो लोक और हैं जिन्हें तपः और सत्य कहते हैं। उन्हीं की संज्ञा संयती ब्रह्माण्ड है। वहां भूत और प्राण दोनों संयत या शान्त अवस्था में मानसी सृष्टि में लीन रहते हैं।

अध्याय ४७ में ब्रह्मा के द्वारा निर्मित समस्त सृष्टि का एक प्रकार से वर्गीकरण किया गया है और कुल मिलाकर नौ सर्गों के नाम गिनाए गए हैं। पहला महत्तत्त्व रूप सर्ग है जो मन और बुद्धि का संसार है। दूसरा तन्मात्राओं का भूत सर्ग है। तीसरा इन्द्रियों का वैकारिक सर्ग है। चौथा वृक्ष-वनस्पति का स्थावर सर्ग है जो कि भूमण्डल में अधिकतम परिमाण में होने के कारण मुख्य सर्ग भी कहलाता है। यह संज्ञा या चेतना से नितान्त शून्य सृष्टि है, जिसमें आत्मतत्त्व एकदम ढका रहता है और न उसके भीतर प्रकाश होता है न बाहर। इसी को असंज्ञ सृष्टि कहते हैं। पाँचवाँ पशु आदिकों का सर्ग है, जिसे तिर्यक् स्रोत और तमोमय सृष्टि कहते हैं। छठा देवसर्ग है और सातवाँ मानवसर्ग है। देवसर्ग में चेतना ऊर्ध्वमुखी और मानवसर्ग में उसका स्रोत नीचे की ओर प्रवाहित होता है। यहाँ ऊर्ध्व का अर्थ केन्द्र की ओर और नीचे का अर्थ केन्द्र से बाहर की ओर समझना चाहिए। आठवाँ अनुग्रहसर्ग या भावों की सृष्टि है जो चार प्रकार की होती है अर्थात् विरोध, सिद्धि, शान्ति और तुष्टि। पुनः सात्विक और तामस रूप से उसके दो भेद होते हैं। महत्तत्त्व, तन्मात्राएँ और इन्द्रियां ये तीन प्राकृतसर्ग और शेष पाँच वैकृतसर्ग कहलाते हैं। नवाँ कौमारसर्ग है जो प्राकृत और वैकृत दोनों प्रकार का होता है। यह नवीं केवल प्राण सृष्टि है। इसमें स्वयं रुद्र असत् प्राण रूप से जन्म लेते हैं, इसलिए यह प्राकृत है। और पुनः उनसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्राण रूप सप्तमहर्षि अथवा सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार आदि चार चिरन्तन कुमार जन्म लेते हैं जो विकार भूत या वैकृत कहलाते हैं।

ऊपर संक्षेप में ही सृष्टि प्रक्रिया कही गई है। इसके बाद देव, पितर, असुर और मानवों की एवं यक्ष, राक्षस, नाग, पिशाच, गन्धर्व, पशु-पक्षी, मंत्र, छन्द आदि की सृष्टि कही गई है। इस प्रसंग में कई महत्वपूर्ण उल्लेख हैं। पहला यह है कि जिस समय प्रलय के बाद सृष्टि का संकल्प ब्रह्मा के मन में आता है उस समय वह सृष्टि प्रक्रिया प्राणियों के पूर्वकालीन अच्छे-बुरे कर्मों से भावित हो जाती है। इसलिए प्रलय या उपसंहार में भी प्राणियों को मुक्ति नहीं मिलती। दूसरे यक्ष और राक्षस शब्दों की व्युत्पत्ति ध्यान देने योग्य है। रक्ष् धातु से राक्षस और यक्ष् भक्षणे धातु से यक्ष शब्द की व्युत्पत्ति होती है।[1] इसी प्रसंग में तीसरा महत्त्वपूर्ण उल्लेख गायत्री आदि छन्द सृष्टि के विषय में है। **ऋग्वेद, गायत्री, छन्द, त्रिवृत्-स्तोम, रथंतरसाम, अग्निष्टोमयज्ञ** यह सृष्टि ब्रह्मा के प्रथम मुख या प्राची दिशा से हुई। **यजुर्वेद, त्रिष्टुप्छन्द, पञ्चदशस्तोम, बृहत्साम, उक्थ यज्ञ,** यह सृष्टि ब्रह्मा के दक्षिण मुख या दक्षिण दिशा से हुई।

१—रक्षाम इति तेऽभ्योऽन्ये य ऊचुस्ते तु राक्षसाः।
खादाम इति ये चोचुस्ते यक्षा यक्षणाद्द्विज ॥ (४८।२०)

वाल्मीकि रामायण में भी इस सम्बन्ध में कहा है—

ये सत्त्वाः सत्त्वकर्तारं विनीतवदुपस्थिताः।
किं कुर्म इति भाषन्तः क्षुत्पिपासाभयार्दिताः ॥
प्रजापतिस्तु तान्याह सत्त्वानि प्रसहन्निव।
आभाष्य वाचा यत्नेन रक्षध्वमिति मानदः ॥
रक्षामेति च तत्रान्ये यक्षाम इति चापरे।
भुंक्षिता भुक्षितैरुक्तस्ततस्तावाह भूतकृत् ॥
रक्षामेति च यैरुक्तं राक्षसास्ते भवन्तु वः।
यक्षाम इति यैरुक्तं यक्षा एव भवन्तु वः ॥

(वाल्मीकि रामायण ७।४।१०–१३)

अगस्त्य ने राम से कहा कि प्रजापति ने पहले जल की सृष्टि की। जो उसके रक्षक हुए वे राक्षस और जो उसके खाने वाले हुए वे यक्ष कहलाए। यक्ष भक्षहसनयोः धातु है। जो भूखे थे उन्होंने यक्षाम कहा और जो भूखे नहीं थे उन्होंने रक्षाम कहा। यह किसी पूर्वयुग की बात की ओर संकेत है जब राक्षस वर्ग के प्राणी सत्त्वगुण युक्त समझे जाते थे और उनकी तुलना में यक्ष क्रूर हिंसात्मक स्वभाव के थे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सामवेद, जगतीछन्द, सप्तदशस्तोम, वैरूपसाम, अतिरात्रयज्ञ, यह सृष्टि ब्रह्मा के पश्चिम मुख या पश्चिम दिशा से हुई। अथर्ववेद, अनुष्टुपछंद, एकविंशस्तोम, वैराजसाम, आप्तोर्यामयज्ञ, यह सृष्टि ब्रह्मा के उत्तर मुख या उत्तर दिशा से हुई (४८।३१-३४)।

चार श्लोकों में यहाँ वैदिक सृष्टि विद्या का निचोड़ दिया गया है। इन प्रतीकों की विस्तृत व्याख्या यहाँ संभव नहीं। केवल इतना पर्याप्त है कि सृष्टि-प्रक्रिया में मूल काल तत्त्व दिक्तत्त्व में और अव्याकृत दिक्तत्त्व व्याकृत देशतत्त्व में प्रकट होता है। देशतत्त्व चतुर्धा विभक्त स्वस्तिक है। इसमें सूर्य की प्राची दिशा उसका एक बिन्दु कल्पित करती है। तब उसी सम्बन्ध से प्राची, दक्षिणा, प्रतीची, उदीची ये चार दिशाएँ स्वतः हो जाती हैं। इस चतुर्धा विभक्त स्वस्तिक की सत्ता ही सृष्टि है।

यहाँ यह भी स्पष्ट कहा गया है कि सृष्टि में दो धाराएँ हैं हिंस्र-अहिंस्र, मृदु-क्रूर, धर्म-अधर्म, सत्य-अनृत। इन द्विविरुद्ध भावों की भावना से ही सब सृष्टि की रचना हुई है। प्रजापति को दोनों ही रुचते हैं। देव और असुर दोनों ही प्राजापत्य अर्थात् प्रजापति के पुत्र हैं। सृष्टि क्या है? इस प्रश्न के उत्तर में कहा गया है कि नानात्व ही सृष्टि है। एक तत्व का बहुभाव में आना यही सृष्टि है। वेद से ही सब नामरूपों की सृष्टि होती है (४८।४२)। इस कथन में प्रयुक्त वेद ग्रन्थराशि की संज्ञा नहीं किन्तु एक मौलिक तत्व है जो ज्ञान-घन होने से समस्त सृष्टि का मूल कारण है और जो आङ्गिरस और भार्गव या अग्नीषोम या सत्-असत् इन दोनों से विलक्षण कोई मौलिक तत्त्व है जिसे ब्रह्मनिःश्वसित कहा जाता है।

'पुटके पुटके मधु' वाला सत्त्व मुदित समाज

अध्याय ४९ में मानुषी सृष्टि का वर्णन करते हुए उस तथ्य की ओर संकेत किया है जिसे पश्चिमी राजनीति दर्शन में 'स्टेट ऑफ नेचर' कहते हैं और यहां सत्त्व सृष्टि कहा है। उस अवस्था में सब प्रजाएं स्वभावतः विषयों में तृप्त थीं। न उनमें इच्छाओं का प्रतिघात था, न द्वेष, न मत्सर। पर्वत कन्दराओं में और समुद्र के तट पर वे अनिकेत अवस्था में रहती थीं। यथाकाम विहार और सदा मुदित मन यह उनका लक्षण था। बिना आयास के उन्हें भोजन आदि की सामग्री प्राप्त होती थी। उनका यौवन सदा स्थिर रहता था। उनमें जुड़वां सन्तति समान रूप और आयुष्ययुक्त होती थी। इस प्रकार की आदर्श सुखमयी परिस्थिति में मानवसमाज के प्रथम विकास की कल्पना संस्कृत साहित्य में और भी कई जगह आती है। रामायण और महाभारत में प्रजाओं के सुखमय जीवन से भरे हुए उत्तर कुरु प्रदेश की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कल्पना की गई है। आदिराज पृथु के वर्णन में भी उस युग का उल्लेख आता है जब पुटके-पुटके मधु अर्थात् चारों ओर शहद के छत्तों से मनमाना शहद टपकता था। किन्तु मानव राग और द्वेष का पुतला है। अतएव वह सत्व स्थिति देरतक न टिक सकी और प्रजाएं मात्स्य न्याय या जीवन-संघर्ष से अभिभूत हो गईं।[1] लोभ और ममत्व ने उनके हृदयों को पकड़ लिया, अतएव वे नाश को प्राप्त होने लगीं। शीत और उष्ण, भूख और प्यास उन्हें सताने लगीं। पहले वृक्ष ही उनके घर थे (वृक्षास्ते गृहसंज्ञिताः—४९।२९), पर नई परिस्थिति में उन्होंने रक्षा के लिये नये विधान बनाए, नगरों का निर्माण किया और अंगुलों की माप से भांति-भांति की माप[2] बना कर दुर्गों की नींव डाली। और भी जन-सन्निवेश के लिये पुर, खेटक, द्रोणमुख, शाखानगर, कर्वटक, ग्राम, संघोष, आवसथ इत्यादि बस्तियों का क्रमशः निर्माण हुआ, और यों समस्त पृथिवी मानुषी आवासों से भर गई। इनमें से प्रत्येक के लक्षण भी यहां दिए गए हैं। उदाहरण के लिये घोष वह है जिसमें गोपाल या पशुपालक लोग अपने पशुसमूह को लेकर छकड़ों में इधर उधर बिचरते हुए जहां इच्छा होती है पड़ाव डाल लेते हैं।[3] पुर वह है जिसके चारों ओर खाई हो और खाई के भीतर ऊंचा परकोटा हो और जिसका विष्कम्भ चौथाई योजन या कम से कम उसका आधा हो। धीरे धीरे लोगों ने वृक्षों के नीचे का आवास छोड़ कर घर बनाना आरम्भ किया।[4] वृक्षों के नीचे जैसे शाखाओं का विभाग था वैसे ही घरों में भिन्न भिन्न शालाओं का निर्माण हुआ। फिर जब 'पुटके पुटके मधु' वाली अवस्था समाप्त हुई और अन्न मिलने में कठिनाई होने लगी और जो कल्पवृक्ष इच्छानुसार फल-फूल खान-पान का प्रबन्ध करते थे वे भी न रह गए तो प्रजाओं ने चिन्ता से व्याकुल होकर और भूख प्यास से पीड़ित होकर वार्ताशास्त्र

१—तेष्वेव जायते तेषां गन्धवर्णरसान्वितम्।
अमाक्षिकं महावीर्यं पुटके पुटके मधु ॥ ४९।३१

२—११ यवमध्य = एक अंगुल,
६ अंगुल = एक पद
२ पद = १ वितस्ति
२ वितस्ति = १ हस्त
४ हस्त = धनुर्दंड
२ सहस्रधनुः = १ गव्यूति
४ गव्यूति = १ योजन (४९।३८-४०)

३—शकटारूढभाण्डैश्च गोपालैर्विपणं विना।
गोसमूहस्तथा घोषो यत्रेच्छा भूमिकेतनः ॥ ४९।५०

४—गृहाकारा यथापूर्वं तेषामासन्महीरुहाः।
तथा संस्मृत्य तत्सर्वं चक्रुर्वेश्मानि ताः प्रजाः ॥ ४९।५२

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की साधना की। वृष्टि से मिलने वाले जल को अवरुद्ध करके नदियों में बांध बना कर सरोवर और सागर रचने शुरू किए। उसी जल की सहायता से ओषधियों की खेती होने लगी। शुरू में हल से जोते और बीज डाले बिना ग्राम्य और आरण्य अर्थात् गंवई और जंगली चौदह प्रकार के अन्न होते थे। ऋतु के अनुसार पेड़ों से कुछ फल मिल जाते थे और लोगों का उनसे काम चल जाता था [४९।५६-६०]। पर इस प्रकार की अवस्था देर तक न रही। राग और लोभ की वृत्ति ने प्रजाओं को जकड़ लिया। लोगों ने नदी क्षेत्रों में अधिक भूमि को दबोचना शुरू किया और जिसमें जितनी ताकत थी उसके अनुसार उसने अपना विस्तार कर लिया। इसे मात्स्यन्याय कहा गया है।[1] जब अन्न के लिये भी झगड़ा होने लगा तब सचमुच प्रजा क्षुधार्त होने लगीं और ब्रह्मा की शरण में गईं। ब्रह्मा ने सोचा कि अब पृथिवी जो पहले वसुन्धरा थी ग्रस्त हो गई है और उसके सब वरदान लुप्त हो गए हैं। अतएव ब्रह्मा ने पृथिवी का दोहन किया। जैसे गौ दुग्ध देती है वैसे ही पृथिवी खेती के द्वारा अन्न आदिक का प्रसव करने लगी। उस अन्न से बीज हुए और बीजों से सत्रह प्रकार के धान्य उत्पन्न हुए। प्रति वर्ष उनके पौधे जन्म लेते हैं और फल पकने पर मुरझा जाते हैं। खेती से सत्रह प्रकार के ग्राम्य धान्य हैं, चौदह प्रकार के जंगली धान्य हैं। उनमें सावां, तिन्नी, तिल, मकड़ा, गड़हेरुआ (गवेधुका) आदि भी हैं जो स्वयं होते हैं और यज्ञ में काम आते हैं। ब्रह्मा ने वार्ताशास्त्र के द्वारा कृषि का ऐसा उपाय निकाला कि ये ओषधियां बार बार फिर जन्म लेती हैं। यही स्वयम्भू ब्रह्मा की कर्मजा हस्तसिद्धि है, अर्थात् कर्म द्वारा मानुषी हाथों से प्राप्त होनेवाली सफलता है जो खेती का कृष्टपच्य रूप है। बीज बोना और उसके पकने पर अन्न उत्पन्न होना[2] यही वार्ताशास्त्र की कर्मजा सिद्धि है। फिर न्याय और गुणों के अनुसार मर्यादा की स्थापना हुई और लोगों के लिये उन-उन धर्मों का निर्माण किया गया। अधिकांश लोगों ने वर्णाश्रम धर्म के अनुसार जीवन निर्वाह की पद्धति अपनाई। कुछ ऐसे भी नैष्ठिक हुए जिन्होंने आजन्म ब्रह्मचर्य का मार्ग अपनाया। ऐसे अट्ठासी सहस्र ऊर्ध्वरेता ऋषि कहे जाते हैं।

१—रागलोभौ समासाद्य प्रजाश्चाकस्मिकौ तदा।
ततस्ताः पर्यगृह्णन्त नदीक्षेत्राणि पर्वतान् ॥
वृक्षगुल्मौषधीश्चैव मात्स्यन्यायाद् यथाबलम् ॥ ४९।६१-६२
तेन दोषेण ता नेशुरोषध्यो मिषतां द्विज।
२—ततः स तासां वृद्ध्यर्थं वार्तोपायं चकार ह ॥
ब्रह्मा स्वयम्भूर्भगवान् हस्तसिद्धिं च कर्मजाम्।
ततः प्रभृत्यथौषध्यः कृष्टपच्यास्तु जज्ञिरे ॥ ४९।७३-७४

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अगले तीन अध्यायों (अ० ५०–५२) में ब्रह्मा की जटिल सृष्टि का और भी विस्तार से वर्णन है। संक्षेप में उसे यों समझना चाहिए। ब्रह्मा ने अपने ध्यान की शक्ति से नौ मानस पुत्र उत्पन्न किए—भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अंगिरा, मरीचि, दक्ष, अत्रि, वसिष्ठ। फिर रुद्र, संकल्प और धर्म इन तीन को और रचा। पहले जो सनंदनादि ऋषि विरचित हुए थे उन्होंने वीतराग रहकर लोकसृष्टि की ओर ध्यान न दिया। तब ब्रह्मा ने एक महापुरुष उत्पन्न किया जो अर्धनारी और अर्धनर था। वही शरीर दो भागों में बँटकर पृथक् स्त्री और पृथक् पुरुष हो गया और फिर उसी से अनेक स्त्री पुरुष हुए। वह पुरुष स्वायंभुव मनु था और वह स्त्री शतरूपा थी। उन्होंने पति-पत्नी रूप व्यवहार किया। उनके दो पुत्र हुए, प्रियव्रत और उत्तानपाद। दो कन्याओं में से प्रसूति ने दक्ष से और ऋद्धि ने रुचि से विवाह किया। रुचि और ऋद्धि से यज्ञ और दक्षिणा का जन्म हुआ। उस मिथुन से बारह पुत्र हुए जो याम देवता कहलाते हैं।

दक्ष और प्रसूति से चौबीस कन्याएँ उत्पन्न हुईं। उन्हें धर्म ने अपनी पत्नी बनाया। दक्ष की ग्यारह कन्याएँ और थीं जिन्होंने नौ ऋषियों से एवं अग्नि और पितरों से विवाह किया। इनसे भी अनेक सन्तानें हुईं। अधर्म की सन्तति का भी यहाँ विस्तार से उल्लेख है। उसकी पत्नी हिंसा से अनृत नामक पुत्र और निर्ऋति नामक कन्या हुई। उनसे नरक और भय नामक पुत्र हुए और माया और वेदना दो कन्याएँ हुईं। माया से मृत्यु और वेदना से दुःख नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। मृत्यु से व्याधि, जरा, शोक, तृष्णा और क्रोध नामक पुत्र हुए। दुःख से उत्पन्न वह सब सन्तति है जो अधर्म का आचरण करती है। निर्ऋति मृत्यु की पत्नी थी। उसी मृत्यु ने अलक्ष्मी नामक एक और स्त्री से विवाह किया। अलक्ष्मी और मृत्यु के चौदह पुत्र हुए। विनाश के समय ये ही पुत्र मनुष्यों के मन और इन्द्रियों में प्रविष्ट हो जाते हैं।

उन पुत्रों में से एक का नाम दुःसह है जो बुभुक्षित, अधोमुखी, और फटे चीर पहने हुए मनुष्यों के घरों में वास करता है। वह अत्यन्त भयंकर है। जहाँ-जहाँ अलक्षण, आलस्य, दारिद्र्य आदि दुर्गुणों का निवास है वहाँ-वहाँ दुःसह भी निवास करता है। जहाँ देशाचार, जातिधर्म, समय (परम्परा प्राप्त व्यवहार) जप, होम, मंगल, यज्ञ, शौच, विधिवत् लोकयात्रा का पालन होता है वे पुण्य स्थान दुःसह के प्रकोप से सुरक्षित हैं। अध्याय ५१ में दुःसह के आठ पुत्र और आठ कन्याओं और उनकी अति भीषण सन्तति का वर्णन है। ये सब नैतिक, सामाजिक और भौतिक दोषों और रोगों की संज्ञाएँ हैं। इसी प्रसंग में जातहारिणी नामक एक कन्या का उल्लेख है। वह सूतिकागृह पर आक्रमण करके बालक या बच्चे को हर लेती है। सूतिकागृह को यत्नपूर्वक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उससे बचाना चाहिए। जातहारिणी का उल्लेख आयुर्वेद के ग्रन्थ काश्यप संहिता के रेवती कल्प में भी विस्तार से आता है। इसे ही बौद्धों में हारीती देवी के नाम से पूजा जाता था। वह राजगृह की एक नरभक्षिका देवी थी। पीछे बुद्ध ने उसका नैतिक उद्धार किया और वह बच्चों की रक्षा करनेवाली देवी बन गई। मथुरा के आस पास कुषाण युग में जातहारिणी या हारीती की पूजा-मान्यता का बहुत प्रचार था। वह कुबेर की स्त्री मानी जाने लगी। कुबेर और हारीती की अनेक मूर्तियां मथुरा की कुषाण कला में पाई गई हैं। समाज में जो धर्म और पापाचार के दो मार्ग हैं उन्हीं के रूपक धर्म और अधर्म की पुत्र-पुत्रियों के नाम से कल्पित किए गए हैं। यह ब्रह्मा की मानसी सृष्टि थी।

रुद्रसृष्टि

अध्याय ५२ में ब्रह्मा से अष्ट रुद्रों की उत्पत्ति कही गई है। रुद्र सर्ग की कल्पना प्राचीन वैदिक थी। ब्रह्मा ने अपने समान पुत्र उत्पन्न करना चाहा तो उनकी गोद में एक नीललोहित कुमार प्रकट हुआ। उत्पन्न होते ही वह गति करने लगा और रोया। ब्रह्मा ने पूछा—'तुम क्यों रोते हो?' उसने कहा—'मेरा नाम रक्खो।' ब्रह्मा ने उत्तर दिया—'तुम्हारा नाम रुद्र होगा।' तब उसने सात बार रुदन किया और उसके सात नाम हुए—भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र, महादेव। उसके इन सात रूपों के लिये ये सात स्थान या शरीर हुए—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, सूर्य-चन्द्रमा (सम्मिलित रूप) एवं दीक्षित ब्राह्मण या यजमान (५२।१-२)।

वस्तुतः यह विषय वैदिक था। उसकी यहां तीन कोटियां हैं, एक रुद्रतत्त्व या रुद्र का स्वरूप, दूसरे उसके सात नाम और तीसरे उसके सात किंवा आठ स्थान या शरीर। इन तीनों को इस प्रकार स्पष्टता से समझना चाहिए। प्राणतत्त्व का नाम रुद्रतत्त्व है। शतपथ ब्राह्मण में कहा है—सृष्टि के आरम्भ में असत् ही था। वह असत् क्या था? उस असत् तत्त्व की संज्ञा ऋषि थी। वे ऋषि कौन थे? प्राणों को संज्ञा ऋषि थी। उन्हें ऋषि क्यों कहा गया? उन्होंने गति की, या गति ही उनका स्वरूप था इसलिए वे ऋषि कहलाए।[1] 'ऋष' गतौ धातु तुदादिगण में पठित है; ऋषति, ऋषतः ऋषन्ति उसके रूप चलते हैं। इकारान्त 'ऋषि' शब्द की व्युत्पत्ति उसी से हुई है। अतएव प्राणों को ऋषि कहते हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि सृष्टि के आरम्भ में एक स्वयंभू

१—असद्वा इदमग्र आसीत्। तदाहुः किं तद् असद् आसीदिति
ऋषयो वाव ते अग्रे असदासीत् तद् आहुः के त ऋषय इति
प्राणा वाऽऋषयस्ते यत्पुराऽस्मात्सर्वस्मादिदमिच्छन्तः
श्रमेण तपसारिषंस्तस्माद् ऋषयः ॥ शतपथ ६।१।१।१

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मूल तत्त्व था। उसे ही ऋषितत्त्व, गतितत्त्व या प्राणतत्त्व कहते हैं। प्रत्येक प्राणी के भीतर जो एक मुख्य प्राण अग्नि के समान दहक रहा है और जो बाहर से भूतों को खींच कर अपनी शक्ति या तेज से अपने स्वरूप में परिवर्तित कर रहा है वह मुख्य प्राण ही इन्द्र या रुद्र भी कहलाता है। वह सबके भीतर बैठा हुआ धक्-धक् कर रहा है। जब तक वह जलता है तभी तक जीवन है। इन्धनात्मक होने के कारण ही उसे 'इन्ध' कहते हैं और 'इन्ध' की ही संज्ञा इन्द्र है। यह कहने की प्रतीकात्मक शैली थी। शरीर में जो दस इन्द्रियां हैं वे उस मुख्य प्राण या इन्द्र की शक्ति से ही सम्बन्धित या संचालित होने के कारण इन्द्रियां कही जाती हैं।

मूलभूत प्राण या अग्नि रुद्र भी कहलाता है[1]। वही नीललोहित-कुमार है। ज्ञान का वर्ण नील और कर्म का लोहित है। उस अग्नि की अभिव्यक्त रश्मियों के नील और लोहित ये ही दो छोर हैं। सूर्यरश्मियों की वर्णपट्टिका (स्पेक्ट्रम) में भी नील रश्मियाँ और लोहित रश्मियाँ दोनों सिरों पर हैं। अथर्ववेद में रुद्र के नील लोहित धनुष का उल्लेख आता है। यह रुद्र क्या है और क्यों इसकी यह संज्ञा है ? इस प्रश्न का उत्तर यों समझना चाहिए। मूलभूत अग्नि या शक्ति जब जागरण की अवस्था में आती है तब उसकी संज्ञा रुद्र होती है। शक्ति या अग्नि के जागरण का तात्पर्य है उसका सोम के लिए आकुल होना। अग्नि गतितत्त्व है, प्रत्येक गति का सापेक्ष रूप आगति है। गति ही आगति रूप में सोम है। अग्नि जब अपने केन्द्र में जागता है तो उसमें अशनाया-धर्म या बुभुक्षा उत्पन्न हो जाती है, अर्थात् वह चाहता है कि बाहर से कोई पोषण-तत्त्व उसे प्राप्त हो। अग्नि के इस पोष या अन्न को सोम कहते हैं। भूखे होना या केन्द्र का जागरण यही रुदन है। बालक जब भूखा होता है रुदन करता है। अग्नि जब रुद्ररूप में प्रकट हुआ तब देवों ने कहा 'इसमें अन्न का संभरण करना चाहिए तब यह शान्त होगा।' तब उन्होंने बुभुक्षित अग्नि में अन्न रूप सोम का संभरण किया और सोम पाकर अग्नि शिव बन गया। सोम के बिना अग्नि रुद्र है, सोम के साथ वही शिव है। शरीर के ही अग्नि को लें, यदि उसे सोम या अन्न न मिले तो वह अग्नि शरीर को भी जलाकर नष्ट कर दे। सोम के बिना अग्नि या प्राण-शक्ति केवल ध्वंसात्मक है। अग्नि और सोम की यही प्रक्रिया वृक्ष-वनस्पतियों में भी दिखाई पड़ती है। बीज में जो मूल स्पन्दन या गति-तत्त्व है वह पृथिवी के गर्भ में आर्द्रता या जल के संयोग से सक्रिय हो जाता है। वह अपने लिये निरन्तर अन्न या सोम का पोषण चाहता है। उसी से बीज का अंकुर निरन्तर बढ़ता हुआ पहले पोया और फिर बड़ा विटप बन जाता है। उसके शरीर का वाह्य वितान केवलमात्र अग्नि और सोम के स्पन्दन पर ही निर्भर

१—यो वै रुद्रः सोऽग्निः। शतपथ ५।२।४।१३

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है। अशनाया या सोमपान की इच्छा यही मध्यप्राणसंज्ञक इन्द्र या रुद्र का धर्म है, ज्ञान, कर्म और पंचभूत, इन सात अन्नों के लिए रुद्राग्नि ने सात बार रुदन किया। अव्यय या मन का अन्न ज्ञान, अक्षर या प्राण का अन्न कर्म और क्षर या भौतिक शरीर का अन्न पंचभूत हैं।

सात बार रुदन से उसके सात नाम हुए। मूलभूत प्राण एक ही था। वह सृष्टिप्रक्रिया के लिये सात रूपों में अभिव्यक्त हुआ। इन्हें ही सप्तर्षि या सात प्राण कहते हैं। नाम और रूप में प्रकट होना यही सृष्टि है। भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र, महादेव, अग्नि के ये सात रूप हैं [५२।७]। वस्तुतः ये सात नाम मूलभूत अग्नितत्त्व के उन सात रूपों से सम्बन्धित हैं जिनके बिना कोई भी अव्यक्त तत्त्व प्रत्यक्ष रूप में आ ही नहीं सकता। एक क्रम से इनको सात और दूसरे क्रम से इन्हें ही आठ कहा जाता है[1]। ये ही शिव की आठ प्रत्यक्ष मूर्तियाँ हैं। इन्हें ही कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तल के पहले श्लोक में शिव के आठ प्रत्यक्ष शरीर कहा है[2]। हममें से प्रत्येक का शरीर इन्हीं आठों के संघात या समष्टि का परिणाम है। ब्राह्मण ग्रन्थों में और वेदों में इन्हीं को सप्तपुरुष कहते हैं। पहले एक पुरुष या एक अग्नि के सात रूप बनते हैं और फिर सातों मिलकर एक होते हैं, तभी प्राणी की रचना होती है। यह तथ्य इस प्रकार है। एक मूलभूत अग्नि या शक्ति मन, प्राण, वाक् इन तीन रूपों में प्रकट होती है। मन को अव्ययपुरुष, प्राण को अक्षरपुरुष और वाक् या पञ्चभूतों को क्षरपुरुष कहते हैं। हम पहले कह चुके हैं कि वैदिक साहित्य में पञ्चभूतों की संज्ञा वाक् है। आकाश सूक्ष्मतम होने से सब भूतों का प्रतीक है और आकाश का गुण शब्द है। तालिका के रूप में इसे यों समझना चाहिए :—

१. अव्यय पुरुष	मन	१ यजमान [=होत्री=दीक्षित व्यक्ति]
२. अक्षर पुरुष	प्राण [प्राण+अपान]	२ सूर्य ३ चन्द्र
३. क्षर पुरुष	पंचभूत	४ पृथ्वी ५ जल ६ तेज ७ वायु ८ आकाश

कालिदास ने जिसे होत्री या हवन करने वाला कहा है वही इस शरीर-रूपी यज्ञ का यजमान अर्थात् मन है। मार्कण्डेय पुराण के दीक्षित ब्राह्मण का अभिप्राय उसी से है। ब्राह्मण ग्रन्थों में स्पष्ट कहा है कि शरीर में मन ही यजमान है (मनो यजमानस्य रूपम्। शतपथ १२।८।२।४)। प्रत्येक के व्यक्तित्व का जो

१—तान्येतान्यष्टौ (रुद्रः, सर्वः = शर्वः, पशुपतिः, उग्रः, अशनिः, भवः, महान्देवः, ईशान) अग्निरूपाणि। कुमारो नवमः॥ ६।१।३।१८

२—या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुः सर्ववीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आरम्भक तत्त्व है उसे हृदय कहते हैं। हृदय बिन्दु है जो वृत्त के केन्द्र की तरह सर्वथा अव्यक्त रहता है। उसी हृदय का जो व्यक्त रूप है वह मन है। इसी लिए मन को हृदय पर प्रतिष्ठित (हृत्प्रतिष्ठ) कहा जाता है। अग्निषोमात्मक स्पन्दन का नाम यज्ञ है। मानस के सक्रिय होने से ही उस यज्ञ का सूत्रपात या आरम्भ होता है। मन को ही संज्ञा या चेतना कहते हैं। असंज्ञ, अन्तःसंज्ञ और ससंज्ञ तीन प्रकार का सर्ग पहले कहा गया है। जो असंज्ञ है वह भी विराट् मन से रहित नहीं है, जैसे मिट्टी आदि पञ्च महाभूत। इनमें किसी एक बिन्दु पर प्राग के स्पन्दन या चेतना की अभिव्यक्ति नहीं देखी जाती, किन्तु विराट् शक्ति तत्त्व से ये भी विरहित नहीं हैं। मन पहली प्रत्यक्ष मूर्ति है, उसके बिना कुछ भी प्रत्यक्ष भाव में नहीं आता। दूसरी प्रत्यक्षमूर्ति प्राण या उसी के दो रूप प्राणापान हैं जिन्हें कालिदास और मार्कण्डेयपुराण के लेखक ने सूर्य और चन्द्र कहा है। सूर्य और चन्द्र प्राण अपान या उष्ण-शीत के प्रतीक हैं। प्राण और अपान एक ही प्राण के दो रूप हैं। अतएव रुद्राग्नि के कहीं सात नाम और कहीं आठ कहे गए हैं। इसी पुराण में रुद्र के सात नाम गिना कर फिर उसके आठ रूप या शरीरों के कथन की यही संगति है।[1]

वेद के समय से ही रुद्र के विषय में एक एवं अनेक रूपों की कल्पना पाई जाती है। 'एको रुद्रो न द्वितीयाय तस्थौ' यह भी मूल सिद्धान्त है। दूसरी ओर कहा गया है कि पृथिवी अन्तरिक्ष और द्युलोक में सहस्रों रुद्र हैं। दोनों उक्तियाँ ठीक हैं। एक और अनेक यही शक्ति का रूप है। 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' के अनुसार एक और बहुधा दोनों सत्य है। बहुधा या नानाभाव का नाम सृष्टि है। इसलिए यहाँ भी एक रुद्र की कई पत्नियाँ और उनके पुत्र-

---

१—रुद्रसर्गं प्रवक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु ॥ ५२।१
प्रादुरासीदथाङ्केऽस्य कुमारो नीललोहितः ।
रुरोद सुस्वरं सोऽथ द्रवंश्च द्विजसत्तम ॥ ५२।३
किं रोदिषीति तं ब्रह्मा रुदन्तं प्रत्युवाच ह ।
नाम देहीति तं सोऽथ प्रत्युवाच जगत्पतिम् ॥ ५२।४
रुद्रस्त्वं देव नाम्नाऽसि मा रोदीर्धैर्यमावह ।
एवमुक्तस्ततः सोऽथ सप्तकृत्वो रुरोद ह ॥ ५२।५
ततोऽन्यानि ददौ तस्मै सप्त नामानि वै प्रभुः ।
स्थानानि चैषामष्टानां पत्नीः पुत्रांश्च वै द्विज ॥ ५२।६
भवं सर्वं तथेशानं तथा पशुपतिं प्रभुः ।
भीममुग्रं महादेवमुवाच स पितामहः ॥ ५२।७
चक्रे नामान्यथैतानि स्थानान्येषाञ्चकार ह ।
सूर्यो जलं मही वह्नि र्वायुराकाशमेव च ॥ ५२।८
दीक्षितो ब्राह्मणः सोम इत्येतास्तनवः क्रमात् । ५२।९

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परिवार का उपबृंहण किया गया है। कुषाण और गुप्तयुग में कुमार कार्त्तिकेय को प्रमुख देवता मानकर उनके सम्बन्ध से कितनी ही मातृकाओं की कल्पना की गई थी। अमूर्त की मूर्त रूप में ख्याति ही इन कल्पनाओं का हेतु था। छह, सात, आठ, नौ या दस मातृकाओं की संख्या भी पाई जाती है। क्रमशः बढ़ती हुई यह संख्या सोलह और चौंसठ तक पहुँच गई थी। देवताओं के मूर्त रूपों का विकास और उनके पीछे प्राणतत्त्व या योग की परिभाषाएँ अध्ययन का पृथक् विषय है। यहां कहा गया है कि ब्रह्मा का जो अग्नि नामक ज्येष्ठ पुत्र था उसने अपनी पत्नी स्वाहा से तीन पुत्र उत्पन्न किए—शुचि, पावक और पवमान[1]। ये भी तीन प्रकार के सोम हैं जिनका सम्बन्ध क्रमशः द्युलोक, अन्तरिक्ष और पृथिवी से है। वैदिक तत्त्वों से ही पुराणों की इन कथात्मक कल्पनाओं का जन्म हुआ।

मन्वन्तर

अध्याय ५३ से मन्वन्तरों का विषय आरम्भ होता है जो अन्य प्रकरणों और कथाओं को अपने भीतर लेते हुए पुराण के अन्त तक चला गया है। मन्वन्तर चौदह हैं—१ स्वायम्भुवमनु, २ स्वारोचिषमनु, ३ औत्तममनु, ४ तामसमनु, ५ रैवतमनु, ६ चाक्षुषमनु, ये छ मन्वन्तर बीत चुके हैं। आजकल सातवें वैवस्वत मनु का अन्तर चल रहा है। भविष्य में ये सात मन्वन्तर और होंगे। ८ सूर्यसावर्णि, ९ दक्षसावर्णि, १० ब्रह्मसावर्णि, ११ धर्मसावर्णि, १२ रुद्र-सावर्णि (ये पाँच सावर्णि-मन्वंतर कहलाते हैं), १३ रौच्यमन्वन्तर, १४ भौत्य-मन्वन्तर। बारह हजार दिव्यवर्ष की एक चतुर्युगी होती है। ७१ चतुर्युगी काल का एक मन्वन्तर होता है। एक मन्वन्तर में ३०६७२०००० मानुषवर्ष का भोग माना गया है। कुल १४ मन्वन्तरों का उपभोगकाल एक सहस्र दिव्य चतुर्युगी मानी गई है, जिसमें ७१ चतुर्युगी के हिसाब से १४ मन्वन्तरों के लिये ९९४ दिव्य चतुर्युगी और ६ चतुर्युगी संध्याकाल माना गया है। इसे एक कल्प कहते हैं। यही ब्रह्मा का एक दिन है। एक मनु का जितने दिन अधिकार रहता है उसकी संज्ञा मन्वन्तर है। प्रत्येक मन्वन्तर में इन्द्र, देव, सप्तर्षि, मनु और मनुपुत्रों के नाम पृथक् पृथक् हैं। प्रायः अन्य पुराणों में भी यह विषय आता है। प्राचीन युग में अहोरात्रवाद नाम से एक दार्शनिक अभिमत था, जिसका गीता में और नासदीय सूक्त में उल्लेख आया है, उसे ही कालवाद भी कहते थे। इस दर्शन के अनुसार काल के दो स्वरूप हैं। एक महाकाल या संख्यातीत काल जो वर्ष आदि की गणना से असंस्पृष्ट है। वह काल सृष्टि का मूल कारण है। उसी

१—योऽसावग्निरभीमानी ब्रह्मणस्तनयोऽग्रजः।
तस्मात् स्वाहा सुतांल्लेभे त्रीनुदारौजसो द्विज ॥
पावकं पवमानं च शुचिं चापि जलाशिनम्। ५२।२७-२८

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का सापेक्षरूप संवत्सरात्मक काल है। इसे चक्रात्मक काल भी कहते हैं। जिसके महान् रथ का चक्र निरन्तर घूमता हुआ लव, निमेष, अहोरात्र, पक्ष, मास, अयन, वर्ष आदि कालखण्डों की अनन्त सृष्टि करता रहता है। यह काल दुर्धर्ष शक्ति है। इसी शक्ति से सृष्टिप्रक्रिया सम्भव होती है। काल के बिना पल भर के लिये भी सृष्टि की कल्पना सम्भव नहीं। सूर्य सापेक्षकाल का प्रतीक है और समस्त ब्रह्माण्ड का मध्यवर्ती केन्द्र है। सूर्य से यद्यपि हमारे सौर मण्डल के मध्यबिन्दु सूर्य का भी ग्रहण है, किन्तु केवल यही अन्तिम सूर्य नहीं है। इसकी परम्परा में सृष्टि का जो कोई अन्तिम विराट् सहस्रात्मक मण्डल है जो अभिव्यक्ति का पहला क्रम था उसी की संज्ञा सूर्य है। रहस्य-दर्शन की सांकेतिक भाषाओं में ब्रह्मतत्व का सर्वोत्तम निदर्शन सूर्य ही माना गया है।

सूर्य और सापेक्ष काल दोनों पर्यायवाची हैं। ऐसे सूर्य का जो हृद्देश या मध्य केन्द्र है उसी की संज्ञा मनु है। प्रत्येक पदार्थ का हृत्प्रतिष्ठ तत्त्व उसका मन या मनु कहलाता है। जब तक वह केन्द्र बिन्दु सकुशल रहता है तब तक सृष्टि भी काल की निरन्तर शक्तिधारा से सक्षेम आगे बढ़ती रहती है। जिस सृष्टि या छोटे बड़े संस्थान का हृदय-बिन्दु या मनस्तत्त्व उच्छिन्न हो जाता है उस वस्तु का स्वरूप भी नष्ट हो जाता है। इस विश्व के किसी अनन्त अव्यक्त परात्पर कारण की जो शक्ति व्यक्त त्रिगुणभावात्मक संस्थान में प्रवाहित होती है उस प्रवाह का माध्यम मनतत्त्व समझना चाहिए। मनस्तत्त्व का नाम ही मनु है। मनु और मन दोनों अभिन्न तत्त्व हैं। मनु का आधार अव्यय पुरुष का मन है। इस सृष्टि में अव्यय पुरुष, अक्षर पुरुष और क्षर पुरुष इन तीनों की अभिव्यक्ति हुई है। इन्हें ही क्रमशः सत्त्व-रज-तम, मन-प्राण-वाक (पंच भूत), या ज्ञान-क्रिया-अर्थ कहते हैं। जो मनु तत्त्व है वह अपने निर्विकल्प गुणातीत पक्ष में शाश्वत ब्रह्म का स्वरूप है। उसके अतिरिक्त त्रिगुणात्मक सृष्टि का जो समष्टि रूप है उसकी दृष्टि से उसे मनुप्रजापति कहते हैं। वह मनुतत्त्व जब क्षर ब्रह्म या भूत सृष्टि के रूप में अभिव्यक्त होता है या पृथिवी की ओर झुकता है तब उसे अग्नि कहते हैं। वही जब अक्षर ब्रह्म या प्राण शक्ति के रूप में अभिव्यक्त होता है या अन्तरिक्ष के साथ रहता है तब उसे प्राण कहते हैं। वही मनतत्त्व जब अव्यय ब्रह्म या इन्द्रात्मक सौर मण्डल के रूप में अभिव्यक्त होता है तब उसे इन्द्र कहते हैं। इन्हीं परिभाषाओं को मनुस्मृति के इस श्लोक में कहा गया है—

एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम् ।
इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम् ॥ मनु० १२।१२३

अर्थात भिन्न-भिन्न दृष्टियों से मनु के कई नाम-रूप हैं। पृथिवी लोक की दृष्टि इसे अग्नि कहते हैं, अन्तरिक्ष की दृष्टि से इसे प्राण कहते हैं; आदित्यलोक की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दृष्टि से इसे इन्द्र कहते हैं। इन तीनों लोकों की समष्टि अथवा भूतमात्रा, प्राणमात्रा, प्रज्ञामात्रा से संयुक्त जो विलक्षण वैश्वानरतत्त्व या चिन्मयजीवनतत्त्व है उसकी दृष्टि से मनु को प्रजापति और जो इन सब से परे निर्गुणतत्त्व है उसकी दृष्टि से शाश्वत ब्रह्म कहते हैं।[1] सौर मण्डल का केन्द्रीय हृद्यतत्त्व एक है। वही मनुतत्त्व का उक्थ या उत्थान बिन्दु है। किन्तु जब वह अपने महिमाभाव में आता है तब उस एक मनुतत्त्व का सहस्रात्मक वितान होता है। उस सहस्रधा विकास से ही सूर्य सहस्रांशु बनते हैं। सूर्य का वह मनुरूपकेन्द्र त्रिकल है, अर्थात् मन, प्राण, वाङ्मय है या सत्त्व, रज, तमरूप से त्रिगुणात्मक है। इसी त्रिपर्वा या त्रिकल अव्ययात्मक मनस्तत्त्व को वेदों में मनु कहा गया है। इसी के लिए कहा है—अहं मनुरभवं सूर्यश्च (ऋग्वेद ४।२६।१)। पुराणों के सूर्यवंशी वैवस्वत मनु का स्रोत यही है।

स्वायंभुव मनु के दस पुत्र हुए। उन्होंने सप्तद्वीपा पृथिवी का सन्निवेश किया और आपस में बांट लिया। स्वायम्भुव मनु के पुत्र प्रियव्रत के प्रजावती नाम की एक कन्या हुई जिसने प्रजापति कर्दम से विवाह किया। उसके द्वारा उत्पन्न सात नातियों को प्रियव्रत ने यह सारी पृथिवी बाँट दी। अग्नीध्र जम्बूद्वीप का राजा हुआ, मेधातिथि प्लक्षद्वीप का, वपुष्मान् शाल्मलि द्वीप का, ज्योतिष्मान् कुशद्वीप का, द्युतिमान् क्रौञ्च द्वीप का, भव्य शाकद्वीप का और सवन पुष्करद्वीप का।

सवन के महावीत और धातकी दो पुत्र हुए, जिन्हें पिताने पुष्करद्वीप का राज्य दो भागों में बाँट दिया। भव्य के सात पुत्र हुए—जलद, कुमार, सुकुमार, मनीवक, कुशोत्तर, मेधावी और महाद्रुम। शाकद्वीप में इस नाम के सात वर्ष या प्रदेश उनमें से प्रत्येक के आधिपत्य में आए। यह उल्लेख महत्त्वपूर्ण है, तथा वायु, मत्स्य, ब्रह्माण्ड, कूर्म, विष्णु आदि पुराणों में भी मिलता है। क्रौञ्चद्वीप के अधिपति द्युतिमान् के भी सात पुत्र हुए—कुशल, मनुग, उष्ण, प्राकर, अर्थकारक, मुनि और दुन्दुभि। इन्हीं नामों से क्रौञ्चद्वीप के सात वर्ष प्रसिद्ध हैं। कुशद्वीप में ज्योतिष्मान् के उद्भिद् वैष्णव, सुरथ, धृतमत्, पाकर, कापिल ये सात पुत्र और उनके नाम के सात वर्ष हुए। शाल्मलिद्वीप के अधिपति वपुष्मान् के श्वेत, हरित, जीमूत, वैद्युत, मानस, केतुमान् ये सात पुत्र और उनके नाम से सात वर्ष हुए। प्लक्षद्वीप के स्वामी मेधातिथि के शाकभव, शिशिर, सुखोदय, आनन्द, शिव, क्षेमक और ध्रुव ये सात पुत्र और सप्तवर्ष हुए। इन सप्तद्वीपों के सप्त पर्वत, सप्त वर्ष और सप्त नदियों के नामों की तालिका मत्स्य (अध्याय ११४), वायु (अध्याय ४५), विष्णु (अंश २, अध्याय ३) कूर्म पूर्वार्द्ध (अध्याय ४७), भीष्मपर्व (अध्याय १०) ब्रह्माण्ड (अध्याय ४९), वराह (अध्याय ५०) गरुड़ (अध्याय ५५) में दी गई है। यह वर्णन पुराणों में भुवन कोश के नाम से प्रसिद्ध है। किसी ऐसे समय इन नामों का संकलन हुआ होगा जब पुराण लेखकों के दृष्टिपथ में मध्य एशिया से लेकर

१ एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम्।
इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम्॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पश्चिम एशिया तक के भूगोल की जानकारी थी। अनुमान से जनपद युग के अन्त में पांचवी शती विक्रम पूर्व के लगभग इस प्रकार की स्थिति सम्भव ज्ञात होती है। एक तो भुवनकोश के अन्त में भारतीय जनपदों कीं जो लम्बी सूची है वह जनपद युग के विस्तृत भूगोल की तथ्यात्मक स्थिति का अनुमान कराती है। दूसरे यूनानी ऐतिहासिक हेरोदोतसने शकों के मूल निवास स्थान का जो वर्णन किया है और उसमें मध्य एशिया के पर्वत, नदी और जनपदों के जो नाम आए हैं उनमें से कुछ शाकद्वीप की सूची में पहचाने जा सकते हैं। जैसे कोमेदाई की पहचान कुमुदपर्वत के साथ, कोमेराई की कुमार पर्वत एवं कुमारी नदी के साथ, इक्षु नदी की वंक्षु या आक्सस के साथ एवं केस्पियन सागर की पहचान जहाँ तक शक प्रदेश का विस्तार था क्षीरोद समुद्र के साथ स्पष्ट है। यही समुद्र मार्को पोलो के भूगोल में शीरवान् नाम से प्रसिद्ध था जो क्षीरोद का ईरानी रूप है। पांच सौ विक्रम पूर्व के ही लगभग ईरान के सम्राट दारयवहु प्रथम के लेखों में अफ्रीका के एबीसीनिया प्रदेश को कुष देश के नाम से अभिहित किया गया है। वही पुराण की सप्तद्वीप सूची में कुशद्वीप है।

पिताने अग्नीध्र को जम्बूद्वीप का राज्य दिया। उसके नौ पुत्र हुए, जिन्हें जम्बूद्वीप के नौ वर्षों का राज्य सौंपा गया। उनके नाम और वर्षों के नाम एक से थे जैसे नाभि, किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलावृत वर्ष, हिरण्य, कुरु, भद्राश्व और केतुमाल। इन्हीं के नामों से वर्षों के नाम प्रख्यात हुए (तन्नाम्ना वर्षसंस्थितिः)। देशवाची नामों के मूल में उसी नाम के किसी पूर्व पुरुष की कल्पना पुराणों की शैली थी। अंग, वंग, कलिंग, पुंड्र, इन स्थानवाची नामों का सम्बन्ध भी राजाओं से जोड़ा गया और ऐसे ही मद्र देश के कुछ नामों का सम्बन्ध है।

अग्नीध्र के ज्येष्ठ पुत्र नाभि के पुत्र ऋषभ हुए। इन्हीं ऋषभ के पुत्र भरत हुए। भरत को राज्य देकर ऋषभदेव ने प्रव्रज्या ग्रहण की। जम्बूद्वीप के दक्षिण में हिम[1] नाम का वर्ष भरत को मिला था, जो कालान्तर में उनके नाम से भारतवर्ष कहलाया। इस विषय में यह बात स्पष्टता से जान लेनी चाहिए कि पुराणों में भारतवर्ष के नाम का सम्बन्ध नाभि के पौत्र और ऋषभ के पुत्र भरत से है (वायुपुराण ३३।५२)। दुःष्यन्त और शकुन्तला के पुत्र भरत से भारत नाम का सम्बन्ध पुराणकारों ने नहीं कहा।[2] भागवत में भी ऋषभपुत्र महायोगी भरत से ही भारत नाम की ख्याति मानी गई है—

१ मैंने अपनी 'भारत की मौलिक एकता' नामक पुस्तक में (पृष्ठ २२-२४) दौष्यन्ति भरत से भारत वर्ष लिखकर भूल की थी, इसकी ओर मेरा ध्यान कुछ मित्रों ने आकर्षित किया, उसे अब सुधार लेना चाहिए।

२ प्रियव्रत के अग्नीध्र, अग्नीध्र के नाभि, नाभि के ऋषभ, ऋषभ के भरत और भरत से भारत—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

येषां खलु महायोगी भरतो ज्येष्ठः श्रेष्ठगुण आसीत्, येनेदं वर्षं भारतमिति व्यपदिशन्ति। (भागवत ५।४।९)

अध्याय ५४ में सात द्वीपों के परिमाण के विषय में अतिसंक्षिप्त सूचना देकर जम्बूद्वीप के पर्वत और वर्षों का कुछ विस्तार से वर्णन किया गया है। हिमवान्, हेमकूट, निषद,[1] मेरु, नील, श्वेत और शृङ्गी ये सात वर्ष पर्वत जम्बूद्वीप में हैं। जम्बूद्वीप के बीच का भाग ऊँचा और आयताकार अर्थात् पठार की आकृति का कहा गया है। यही बीच में इलावृत वर्ष था। इलावृत के दक्षिण का भाग वेदूयर्ध कहलाता था। तीन वर्ष वेद्यर्ध में और तीन उसके उत्तर में स्थित थे। इलावृत वर्ष के बीच में मेरु पर्वत है। इलावृत की पहचान चीनी तुर्किस्तान के विपुल प्रदेश से की जा सकती है। इसी के बड़े रेगिस्तान को ऐरावत धन्व कहते थे। इसके पूर्व में भद्राश्ववर्ष चीन का बड़ा प्रदेश होना चाहिए और पश्चिम में जो केतुमाल द्वीप था वह पामीर पठार से लेकर कृष्ण सागर तक फैले हुए बड़े रूसी मैदान का एक भाग होना चाहिए।

इस भूगोल में मेरु पर्वत की स्थिति और उसकी पहचान इस प्रकरण की कुंजी है। जो संकेत यहाँ मिलते हैं उनसे यही सूचित होता है कि पामीर का पठार ही मेरु पर्वत था। यह समस्त प्रदेश अपनी सुवर्णराशि के लिए प्राचीन काल से प्रसिद्ध रहा है। मेरु से पूर्व की ओर बहने वाली नदी सीता की पहचान वर्तमान यारकंद नदी से की जाती है, जिसे चीनी भूगोल में सितो कहा जाता था। मेरु के पश्चिम की ओर बहने वाली नदी को स्वरक्षु कहा गया है। यह वही है जिसे अन्यत्र इक्षु और चक्षु भी कहा है। यही वर्तमान आक्सस नदी है जिसके नाम वंक्षु और वक्षु भी प्रसिद्ध थे। सीता और वक्षु के उद्गम जिस बीच के पर्वत में थे उस मेरु पर्वत की ठीक पहचान पामीर के ऊँचे पठार से ही संगत होती है। मेरु को जम्बूद्वीप के भूगोल का मध्यबिन्दु मान कर ही इस भौगोलिक वर्णन की कल्पना किसी समय हुई होगी, और उसी को चतुष्पत्र पार्थिव पद्म इस सूत्र में व्यक्त किया गया, अर्थात् पृथिवी के इस संस्थान की आकृति उस कमल के समान है जिसकी चार पंखुड़ियाँ चार दिशाओं में फैले हुए चार देश हैं—पूर्व में भद्राश्व वर्ष, दक्षिण में भारतवर्ष, पश्चिम में केतुमाल वर्ष और उत्तर में उत्तर कुरु। मेरु के पूर्व में देवकूट (थिएनशान) और जठर पर्वत, दक्षिण में हिमवान् और कैलास पर्वत (जिनकी पहचान स्पष्ट है), पश्चिम में ऋषभ और पारियात्र और उत्तर में शृङ्गवान् और जारुधि थे। मेरु के

हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं भरताय पिता ददौ।
तस्मात्तु भारतं वर्षं तस्य नाम्ना महात्मनः॥
ऋषभाद्भरतो जज्ञे ज्येष्ठः पुत्रशतस्य सः।
ततश्चभारतं वर्णमेतल्लोकेषु गीयते।
भरताय यतः पित्रा दत्तं प्रातिष्ठता वनम्॥
(विष्णुपुराण, अंश २१ अध्याय १२ श्लोक ३२)

[1] मार्कण्डेय में इसका पाठ 'ऋषभ' है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दक्षिण की ओर के भौगोलिक नाम भारतीय भूगोल में सुपरिचित रहे हैं, जैसे भारत वर्ष, कैलाश और हिमवान्, अलकनन्दा नदी, नन्दनवन, मानससर। इन नामों के अतिरिक्त अन्य दिशाओं में भूगोल की शेष कड़ियां अब धुँधली पड़ गई हैं। किन्तु ज्ञात होता है कि विक्रम पूर्व युग में उन नामों का आधार तथ्यात्मक था। सम्भव है चीनी, ईरानी और रूसी भाषाओं में सुरक्षित भौगोलिक नामों के अध्ययन से इस पर अधिक प्रकाश पड़ सके।

भारतीय भूगोल

अध्याय ५७ और ५८ में विस्तार से भारतीय भूगोल का वर्णन आया है। किन्तु यह स्मरणीय है कि ये दोनों वर्णन एक दूसरे से स्वतंत्र रूप में भिन्न-भिन्न युगों में विरचित हुए। अध्याय ५७ का जो भूगोल है उसमें भारत के सात कुल पर्वत, नदी और जनपदों की सूचियाँ हैं। यही प्राचीन पौराणिक भुवनकोशों का भूगोल था जो ब्रह्माण्ड (अध्याय ४९), कूर्म (पूर्वार्द्ध अध्याय ४६), मत्स्य (अध्याय ११४), वायु (अध्याय ४५) और वामन (अध्याय १३) नामक पुराणों में और महाभारत के भीष्मपर्व में आया है। समीक्षा की दृष्टि से इस वर्णन की कई विशेषताएँ हैं। एक तो इस वर्णन के आरम्भ और अन्त में प्रायः सभी पुराणों में भारतवर्ष की प्रशंसा के कुछ श्लोक पाये जाते हैं। दूसरे इसमें नदी और जनपद दोनों की सूचियां हैं। नदियों की सूचियाँ सप्त कुल पर्वतों के अनुसार हैं, अर्थात् प्रत्येक कुल पर्वत से निकलने वाली नदियों के नाम अलग-अलग कहे गए हैं। यह बात उन नामों की पहचान में सहायक है। जनपदों की नामावली भारतवर्ष के सात भाग मान कर दी गई है, अर्थात् १ मध्यदेश्य, २ उदीच्य, ३ प्राच्य, ४ दक्षिणापथ, ५ अपरान्त, ६ विन्ध्यपृष्ठ और ७ पर्वताश्रयी। भारतवर्ष के इस संस्थान को कार्मुक संस्थान या धनुषाकृति कहा गया है। यह ऐसा धनुष है जिसकी प्रत्यंचा या डोरी हिमालय के रूप में उत्तर में है और जिसका खिंचा हुआ दण्ड दक्षिण की ओर फैला हुआ है।

इसकी तुलना में अध्याय ५८ के भूगोल का ठाठ एकदम भिन्न है। एक तो उसमें नदियों के नाम नहीं हैं केवल जनपदों की सूचियाँ हैं। दूसरे उस वर्णन को कूर्म संस्थान कहा गया है।[1] कछुए की आकृति के अनुसार कूर्म संस्थान के नौ स्पष्ट विभाग माने गए हैं – जैसे (१) मध्यभाग, (२) मुख, (३) पूर्व-दक्षिणी पैर, (४) दक्षिण कुक्षि, (५) दक्षिण-पश्चिमी पैर, (६) पुच्छ या पृष्ठ भाग, (७) उत्तर-पश्चिमी पैर, (८) उत्तर की कुक्षि, (९) पूर्वोत्तरी पैर। इन्हीं नौभागों में सब जनपदों को बांटा गया है। इस भारत क्षेत्र रूपी कछुए का मुँह पूरब की ओर है। उसी हिसाब से इसके और भागों की आपेक्षिक स्थिति निश्चित हो जाती है।

अन्तिम विशेष बात जो इस कूर्म संस्थान को पहले वर्णन से अलग करती है यह है कि इसमें कितने ही नये जनपदों के नाम हैं जिनका उल्लेख कुषाण और

१ किन्तु कूर्मस्त्वया पूर्वं भारते भगवान् हरिः।
कथितस्तस्य संस्थानं श्रोतुमिच्छाम्यशेषतः ॥५८।२॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गुप्तयुग में पहली बार आता है और जो भारतीय इतिहास की बदली हुई परिस्थिति में अस्तित्व में आए थे। इस सूची में कुछ पुराने नाम भी हैं किन्तु अधिकांश नये नाम ही दिखाई पड़ते हैं। इन दोनों वर्णनों में भारतीय इतिहास के तिथिक्रम की दो अगली-पिछली तहें स्पष्ट पहचानी जा सकती हैं। इस भेद को न पहचान कर कई लेखकों ने इन दोनों वर्णनों के नामों को एक में मिला दिया है जिससे कितने ही शंकास्थल उत्पन्न हो जाते हैं।[1]

कार्मुक संस्थान (अध्याय ५७) और कूर्म संस्थान (अध्याय ५८) की सूचियों के विषय में एक बात और स्मरण रखनी आवश्यक है। जैसा ऊपर कहा गया है पहली सूची भुवनकोश के रूप में कई पुराणों का प्राचीन अंग थी। वहीं से मार्कण्डेय पुराण के लेखक ने गुप्तयुग में उसे प्राप्त किया। कूर्म संस्थान से मिलती हुई सूची केवल वराहमिहिर कृत बृहत्संहिता के नक्षत्र कूर्माध्याय (अध्याय १४) में आई है। पुराणों में मार्कण्डेय पुराण ही ऐसा है जिसमें नई और पुरानी दोनों सूचियाँ एक साथ रख ली गई हैं।

अध्याय ५७ के आरम्भ (१-१०) और अन्त (६०—६४) के कुछ श्लोक भारत प्रशस्ति के रूप में हैं जो कि अन्य पुराणों में भी भुवनकोश प्रकरण के अन्तर्गत पाए जाते हैं। इन श्लोकों की पृष्ठभूमि स्वर्णयुग का भारतवर्ष थी जब उसकी कीर्ति एक ओर चीन मंगोलिया तक और दूसरी ओर यूरोप पारसीक, बर्बर देश और रोम साम्राज्य के भूखण्डों तक सर्वत्र फैल गई थी। इस पृष्ठभूमि की कुछ व्याख्या हमने इस ग्रन्थ के आरम्भ में की है (पृष्ठ ४—६)। उस युग में भारत को पृथिवी के और सब देशों से श्रेष्ठ, यहाँ तक कि देवताओं के स्वर्ग से भी बढ़कर मान्य किया गया। भारतवर्ष का एक दूसरा नाम कर्मभूमि प्रसिद्ध हो गया। भारतवर्ष की संस्कृति सब कल्याणों का बीज समझी गई और इस देश के मनुष्य की यह भावना दृढ़ हुई कि मनुष्य की कर्मशक्ति से जो सिद्धि सम्भव है वह देवता और असुर भी प्राप्त नहीं कर सकते।[2]

---

१ अभी हाल में इन दोनों जनपद सूचियों को आधार मानकर दो ग्रन्थ लिखे गये हैं—

१—रोवर्ट शेफर, एथनोग्राफी आफ एन्शिएन्ट इण्डिया (१९५४)

२—शशिभूषण चौधरी, एथनिक सेटलमेंन्टस इन एन्शिएन्ट इन्डिया (कलकत्ता १९५५)

इन दोनों लेखकों को जनपद सूचियों के तिथिक्रम के भेद पर ध्यान न देने से नामों की पहचान और उनके ऐतिहासिक महत्त्व को खोजने में कठिनाई हुई है और कितनी ही भ्रान्तियां उत्पन्न हो गई हैं।

२—इस भारत प्रशस्ति के मुख्य सूत्र चार थे—पहला यह कि भारत के समान पृथिवी का कोई देश नहीं है; दूसरा यह कि भारत स्वर्ग से भी बढ़कर है और स्वर्ग के देवता भारत में मनुष्यरूप में जन्म लेना चाहते हैं; तीसरा यह कि भारत कर्म भूमि है, यहाँ की सिद्धियाँ कर्म के वशीभूत हैं; चौथा यह कि मानव जीवन के जितने कल्याण हैं सबके बीज भारत में हैं, यहाँ तक कि देवत्व, इन्द्रत्व, ब्रह्मत्व भी यहाँ सुलभ हैं। इन चारों कल्पनाओं के श्लोक इस प्रकार हैं:—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस प्रकरण में आए हुए एक महत्त्वपूर्ण उल्लेख का स्पष्टीकरण आवश्यक है। जैसा कहा जा चुका है प्राचीन परम्परा के अनुसार इस वर्ष का नाम भारतवर्ष था, किन्तु लगभग प्रथम शती विक्रमी से भारत के निवासियों ने पूर्व और पश्चिम के दोनों महासागरों पर अपने प्रभविष्णु अधिकार द्वारा बृहत्तर भारत का निर्माण किया। शनैः शनैः जावा, सुमात्रा (श्री विजय), मलय, कम्बुज, चम्पा, श्याम (द्वारावती), केडा (कटाहद्वीप), बोर्नियो (वारुणद्वीप) आदि द्वीपान्तरों में भारतीय संस्कृति, भाषा, धर्म और कला इस प्रकार छा गई कि ये द्वीपान्तरीय प्रदेश भारत के ही अङ्ग समझे जाने लगे। अतएव भारत की इस भौगोलिक सत्ता का अर्थ विस्तृत हो गया। उसमें न केवल भारत की भूमि वल्कि समुद्र के उस पार के द्वीप भी गिने जाने लगे। इसी स्थिति का उल्लेख पुराणकारों ने किया है—

'इस भारतवर्ष के नौ भाग जानने चाहिएं। उन्हें समुद्र एक दूसरे से अलग करता है। अतएव वे स्थलमार्ग से परस्पर अगम्य हैं। इन्द्रद्वीप, कशेरुमान्, ताम्रपर्णी, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्यद्वीप, गान्धर्वद्वीप और वारुणद्वीप ये आठद्वीप हैं और नवां यही द्वीप है जो समुद्र से घिरा हुआ है।'[1] भारतीय महासागर पर

१—न भारत समं वर्षं पृथिव्यामस्ति भो द्विजाः।
कः शक्नोति गुणान् वक्तुं भारतस्याखिलान् द्विजाः॥

२—देवानामपि विप्रर्षे सदा एष मनोरथः।
अपि मानुष्य माप्स्यामो देवत्वात्प्रच्युताः क्षितौ॥

३—भारतं नाम तद्देशं दक्षिणेन मयोदितम्।
तत्कर्मभूमि र्नान्यत्र सम्प्राप्तिः पुण्यपापयोः॥५५।२१-२२॥
कर्मभूमिरियं ब्रह्मन् फलभूमि रसौ मता। आरण्यकपर्व २४७।३५
प्रयाति कर्मभूर्ब्रह्मन् नान्या लोकेषु विद्यते ५७।६२
कर्मभूमिरियं स्वर्गमपवर्गं च गच्छताम्। विष्णुपु० अंश २।३।२
मनुष्यः कुरुते यत्तु तन्न शक्यं सुरासुरैः। ५७।६३

४—तदेतद् भारतं वर्षं सर्ववीजं द्विजोत्तम।
ब्रह्मत्वममरेशत्वं देवत्वं मरुतस्तथा॥५७।६०॥

१—भारतस्यास्य वर्षस्य नव भेदान् निवोध मे।
समुद्रान्तरिता ज्ञेयास्ते त्वगम्याः परस्परम्॥
इन्द्रद्वीपः कशेरुमांस्ताम्रपणी गभस्तिमान्।
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गान्धर्वो वारुणस्तथा॥५७॥
अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागर संवृतः।
योजनानां सहस्रं वै द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरात्॥ मार्कण्डेय ५७।५-७;
मत्स्य ११४।७-९; वायु १।४५।७८-८०; अग्नि २१९।५४-५६

इनकी सम्भावित पहचान इस प्रकार है—इन्द्रद्वीप, अण्डमनद्वीप। ताम्रपर्णीद्वीप, लंका। नागद्वीप, निक्कवरं या निकोवार (इसे ही नग्नद्वीप यानारिकेल द्वीप भी कहते थे। वारुणद्वीप, बोर्नियो।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस देश की प्रभुसत्ता का इतना स्पष्ट उल्लेख अपने साहित्य में दूसरा नहीं है। स्वर्णयुग के उत्साही सार्थवाह और नाविकों ने जिस बृहत्तर भारत को जन्म दिया था उसी का यहाँ उल्लेख है। हिन्देशिया के द्वीपों को उस समय मातृभूमि के साथ मिलाकर 'भारतवर्ष' इस भौगोलिक संज्ञा के अन्तर्गत मानने लगे थे। तब भारत के लिए एक नये नाम की आवश्यकता हुई। पुराण लेखक यहीं भारत में बैठकर लिख रहा था, अतएव उस नई संज्ञा का उल्लेख न करके 'अयंतु नवमस्तेषाम्' वाक्य के 'अयं' पद से उसका संकेत किया है। किन्तु नवीं शती में गुर्जर प्रतिहारों के राजकवि राजशेखर ने काव्य मीमांसा (अध्याय १७) में इन्हीं श्लोकों को उद्धृत करते हुए भारत के लिए कुमारीद्वीप नाम दिया है, जो कि 'अयं' इस पद की व्याख्या है। वामनपुराण में (१३।५६) और स्कन्दपुराण कुमारी खण्ड के अन्तर्गत भी इस क्षेत्र को कुमारीद्वीप कहा गया है। समुद्र पार के द्वीपों की समुदित संज्ञा उस समय 'द्वीपान्तर' प्रसिद्ध हुई। कलिङ्ग और द्वीपान्तर के साथ लवङ्ग के व्यापार का उल्लेख कालिदास ने किया है (रघुवंश ६।५७)। इस प्रकार गुप्तयुग के 'भारत' नाम में कुमारीद्वीप और द्वीपान्तर दोनों सम्मिलित थे। इसका सर्वोत्तम प्रमाण वर्तमान समय के चालू संकल्पमन्त्र में पाया जाता है।[1]

पर्वत

भारतवर्ष के इस भौगोलिक वर्णन में पहले पर्वतों के नाम हैं, फिर नदियों के, और अन्त में जनपदों के। प्राचीन भौगोलिक परिभाषा के अनुसार पर्वत दो प्रकार के होते हैं—१ वर्ष पर्वत और २ कुल पर्वत। वर्ष पर्वत एक वर्ष या बड़े भूखण्ड को दूसरे वर्ष से अलग करते हैं। कुल पर्वत वे हैं जो देश के भीतर ही उसकी प्रादेशिक सीमाओं को सूचित करते हैं। कुल पर्वतों की संख्या सात कही गई है—१ महेन्द्र, २ मलय, ३ सह्य, ४ शुक्तिमान्, ५ ऋक्ष, ६ विन्ध्य, ७ पारियात्र।

इनमें से कलिंग या उड़ीसा से शुरू होने वाली पूर्वी घाटी की पर्वत शृङ्खला का पुराना नाम महेन्द्र था। आज भी गंजम के समीप वह महेन्द्रमलै कहलाता है। 'मलय' दक्षिण भारत के पर्वतों की संज्ञा थीं, जिसमें नल्लमलै, अन्नमलै और एलामलै आदि कावेरी के दक्षिण की चोटियाँ सम्मिलित थीं।

१—भारत और कुमारीद्वीप इन दोनों संज्ञाओं का उल्लेख संकल्प मन्त्र में वचा रह गया है—

हरि ॐ.......कलि प्रथम चरणे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे भारते वर्षे कुमारिका खण्डे आर्यावर्तैकदेशे........

यहाँ जम्बूद्वीपे भरत खण्डे यह प्राचीन भोगोलिक संकेत था। जव भारत में नौ द्वीपों की गणना होने लगी तव गुप्तयुग के आसपास 'भारतेवर्षे कुमारिकाखण्डे' यह नया अंश जोड़ दिया गया और पुराना भी अपना जगह वना रहा, यद्यपि दोनों के साथ रहने में पुनरावृत्ति है। 'देखिए भारत की मौलिक एकता' पृष्ठ १२८-२९।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सह्याद्र उत्तर से दक्षिण तक फैला हुआ पश्चिमी घाट का प्रसिद्ध पर्वत है जो आज भी सारे महाराष्ट्र और कन्नड़ में इसी नाम से प्रसिद्ध है।

शुक्तिमान्, ऋक्ष, पारियात्र इन तीन नामों की निश्चत पहचान करना भारतीय भूगोल को समझने के लिये अत्यन्त आवश्यक है। शुक्तिमान् सह्याद्रि के उत्तरी छोर से कुछ पहले पूर्व की ओर बढ़ी हुई उसकी बाहियाँ ज्ञात होती हैं, जिसमें खानदेश की पहाड़ियाँ अजन्ता एवं काफी भीतर घुसा हुआ हैदराबाद गोलकुण्डा का पठार भी सम्मिलित है। वर्तमान खानदेश का पुराना नाम ऋषिक था। शुक्तिमान् पर्वत से निकलने वाली नदियों में ऋषिका नदी मुख्य है। ऋषिका ऋषिक जनपद में बहने वाली कोई नदी होनी चाहिए।

ऋक्ष पर्वत सह्याद्रि के ठीक उत्तरी छोर पर ताप्ती के दाएँ किनारे वर्तमान सतपुड़ा से लगाकर महादेव पहाड़ियों के पूर्वी सिलसिले तक की कुल पर्वत शृङ्खला का नाम था। मध्यप्रान्त की इस गाँठ से निकलने वाली नदियों में ताप्ती, वेण्या (वेनगंगा) इस पहचान को पुष्ट करती हैं। उड़ीसा की ब्राह्मणी और वैतरणी नदी का उद्गम भी ऋक्षपर्वत से था। इससे ज्ञात होता है कि छोटा नागपुर की पहाड़ियों का रांची तक बढ़ा हुआ सिलसिला ऋक्षपर्वत के ही अन्तर्गत माना जाता था।

ऋक्ष के पूर्वी छोर से उत्तर की ओर घूम कर नर्मदा के उत्तर की पर्वत शृङ्खला विन्ध्याचल है जिससे शोण, नर्मदा, महानदी, मध्यभारत की टौंस (तमसा) और धसान (दशार्ण) आदि नदियाँ जो शोण और सिन्ध के बीच में बिखरी हुई हैं निकलती हैं। भारतवर्ष के मध्यभाग के सब पर्वतों की पहचान जो दक्षिणी पठार की सीमाओं पर और उसके भीतर फैले हुए हैं प्रायः इन छः कुलपर्वतों के नामों में आजाती है।

अब केवल एक नाम 'पारियात्र' और एक ही पहाड़ी बच जाती है और वह है अड़ावला पहाड़ी। श्री पार्जीटर ने प्रमाणित किया है कि भूपाल से पश्चिम विन्ध्याचल के पश्चिमी भाग से लेकर राजपूताने के अड़ावला पहाड़ तक का सिलसिला पारियात्र था जैसा कि उससे निकलने वाली नदियों के नामों से निश्चित रूप में ज्ञात होता है। इनमें पर्णास (बनास नदी), चर्मण्वती (चम्बल), मही, पार्वती और वेत्रवती (बेतवा) मुख्य हैं जो अभी तक पुराने नामों से प्रसिद्ध हैं और इस कारण अड़ावला के साथ की पहचान का निश्चित संकेत देती है। व्याकरण के एक प्राचीन उदाहरण में कहा गया है कि विन्ध्याचल की शृंखला से उत्तर में पारियात्र पर्वत की शृङ्खला थी।[1]

१—उत्तरो विन्ध्यात्पारियात्रः (शाकटायन व्याकरण, सूत्र २।२।७५ पर उदाहरण)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सात कुल पर्वतों के अतिरिक्त सैकड़ों अन्य पर्वतों का उल्लेख करते हुए उनमें से निम्नलिखित नाम गिनाए गए हैं—

१—कोलाहल—महाभारत आदि पर्व ५७।३२ के अनुसार इस पर्वत का संबन्ध शुक्तिमती नदी के साथ था[1]। नन्दलाल डे के अनुसार इसकी पहचान बुन्देलखंड में भांडेर के पास की पहाड़ी से करनी चाहिए, जहाँ शुक्तिमती या केन का उद्‌गम हैं।

२—वैभ्राज—वायु पुराण में इसका पाठ वैहार है। उसकी पहचान राजगृह के समीप की पाँच पहाड़ियों में वैभार पर्वत से की जा सकती है।

३—मन्दर—यह प्राचीन अङ्ग जनपद या वर्तमान भागलपुर की मन्दार गिरि नामक पहाड़ी है। नन्दलाल डे ने अपने कोश में इसका विस्तृत विवरण दिया है। हिमालय में स्थित मन्दर पर्वत इससे पृथक् था।

४—दर्दुर—यह धुरदक्षिण में मलयगिरि के पास एक पर्वत था जिसका नाम प्राचीन भूगोल में भली भाँति ज्ञात था। कालिदास ने रघुवंश में मलय के साथ दर्दुर का उल्लेख किया है (४।५१)। सह्याद्रि का जो नीचे तक बढ़ा दक्षिणी छोर है वही दर्दुर होना चाहिए। उसका वर्तमान नाम नीलगिरि है जहाँ प्रसिद्ध उटकमण्ड (संस्कृत-उदकमण्डल) पहाड़ी स्थान है। इसकी सबसे ऊँची चोटी दूदवेत्ति कहलाती है, जो संभवतः दर्दुर पर्वत का ही रूप है। कावेरी की शाखा नदी भवानी इसी के दक्षिणी ढलान से निकलती है। दक्षिण भारत के मान-चित्र में दर्दुर और मलय की आपेक्षिक स्थिति सर्वथा स्पष्ट दिखाई देती है। दोनों के बीच में पालघाट का चौड़ा रास्ता है जो आज भी पूर्व की ओर से पश्चिमी तट को जाने के लिये एक-मात्र रेल का मार्ग देता है। पालघाट के दक्षिण में मलय पर्वत की स्थिति स्पष्ट है जिसका एक भाग आज भी एलामलै कहलाता है। आमने-सामने उठे हुए मलय और दर्दुर की पर्वत चोटियों की कालिदास ने दक्षिण दिशा के दो स्तनों से उपमा दी है।

५—रैवत—रैवतक नाम का प्रसिद्ध पर्वत सौराष्ट्र में था। पार्जिटर ने इसकी पहचान द्वारिका के समीप स्थित हालार की वरदा पहाड़ी से की है। आदि पर्व के अनुसार द्वारिका निवासी सहस्रों की संख्या में सपरिवार पैदल ही या वाहनों पर चढ़कर रैवत पर्वत पर गिरिमह नामक उत्सव मनाने के लिए एकत्र हुए थे। हरिवंश में भी रैवत की स्थिति द्वारिका के अति सन्निकट कही गई है। कुछ लोग रैवत की पहचान गिरनार से करते हैं जो कि द्वारिका से लगभग ११० मील है। इस दूरी के कारण यही संभावना है कि रैवत और गिरनार पृथक् पर्वत थे।

---

१. गिरिं कोलाहलं तं तु पदा वसुरताडयत्।
निश्चक्राम नदी तेन प्रहार विवरेण सा॥ ५७।३२-३३

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

६—दुर्जयन्त—वायु-पुराण में उज्जयन्त पाठ है (४५।६५) जिसका एक रूप ऊर्जयन्त भी मिलता है। यही दुर्जयन्त होना चाहिए। उज्जयन्त की निश्चित पहचान गिरनार पर्वत से है जिसकी तलहटी में प्रसिद्ध जूनागढ़ नगर स्थित है। इसी पहाड़ी पर अशोक, रुद्रदामन् और स्कन्दगुप्त के शिला लेख हैं।

७—अर्बुद—राजस्थान का आबू या अड़ावला पर्वत।

८—गोमन्त—यह गोवा के पूर्व में सह्याद्रि का एक लपेट ज्ञात होता है। हरिवंश में भी सह्याद्रि के विवर या घाटी में गोमन्त का उल्लेख है। यह करवीर पुर से तीन-चार दिन की दूरी पर था।

६—श्रीपर्वत—कृष्णा नदी के तट पर श्रीपर्वत या श्रीशैल कर्नूल जिले में प्रसिद्ध तीर्थ है जहाँ मल्लिकार्जुन शिव का मन्दिर है।

१०—चकोर—चकोर का उल्लेख गौतमीपुत्र की माता के नासिक वाले अभिलेख में आया है। सिल्वां लेवी के अनुसार चकोर तिआगुर था जिसका उल्लेख टालमी ने सातवाहन पुलमावी के राज्य में किया है। इसकी ठीक पहचान अनुसन्धेय है।

११—ऋष्यमूक—यह तुंगभद्रा के क्षेत्र का प्रसिद्ध पर्वत था जहाँ से निकलकर पम्पा नदी तुंगभद्रा में गिरती है।

इनके अतिरिक्त इस सूची में इतने नाम और हैं—वातस्वन, वैद्युत, मैनाक, स्वरस, तुंगप्रस्थ, नागगिरि, रोचन, पाण्डुराचल, पुष्पगिरि, कूटशैल, कृतस्मर, और तुंगप्रस्थ जो संभवतः तुंगभद्रा के प्रसवण में स्थित था। अन्य नामों की निश्चित पहचान अभी अन्वेषण का विषय है। पुराण लेखक ने इस प्रकार की छोटी पहाड़ियों (क्षुद्रपर्वताः) की संख्या ठीक ही सैकड़ों कही है जो अनेक जनपदों में यथास्थान फैली हुई हैं (शतशोऽन्ये च पर्वताः। ५७।१५)।

नदियाँ

इसके अनन्तर विभिन्न पर्वतों से निकलने वाली नदियों के नाम उनके उद्गम स्थानों के अनुसार गिनाए गए हैं :—

१—हिमाचल से निकलने वाली (हिमवत्पाद निःश्रिताः)—गंगा, यमुना, सरस्वती, दृषद्वती सिन्धु, चन्द्रभागा, शतद्रु, वितस्ता, इरावती, विपाशा, गोमती, गण्डकी, कौशिकी (बिहार की कोशी नदी) ये नाम आज भी प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त देविका पंजाब की प्रसिद्ध नदी थी जो जम्मू की पहाड़ियों से निकल कर स्याल कोट-शेखूपुरा जिलों में होती हुई देग के नाम से रावी में मिल जाती है। यह प्राचीन मद्र देश की मुख्य नदी थी।[1] आपगा नामक नदी भी रावी के

१. उमादेवीति मद्रेषु देविका या सरिद्वरा।
(विष्णु धर्मोत्तर पुराण खण्ड १, १६७।१५)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पश्चिम में बहने वाली मद्र देश की एक नदी थी जिसका उल्लेख वेद में आपया के नाम से आया है और जो इस समय अयूक या अयुक कहलाती है। वामन-पुराण में कुरुक्षेत्र के तीर्थों में आयगा का उल्लेख है (अ० ३४।७, ३६।२)। इस सूची की कुहू नदी सिन्धु की शाखा कुभा या काबुल नदी है। इसके किनारे रहने वाले जनों को कुहकाः कहा गया है। इस सूची की रंक्षु नदी का नाम वायुपुराण में इक्षु है जिसके चक्षु, वक्षु या वंक्षु नाम भी अन्यत्र मिलते हैं। यह निश्चय रूप से एशिया में पामीर से निकलकर पश्चिम की ओर बहने वाली महानदी वंक्षु या आक्सस थी जो कम्बोज, बाल्हीक और सुग्ध जनपदों को सींचती थी। गण्डकी के साथ निश्चिरा संभवतः अचिरवती या राप्ती ज्ञात होती है। धूतपापा और बाहुदा की पहचान निश्चित नहीं हैं। बाहुदा का उल्लेख और भी कितनी ही जगह आता है और जैसा पार्जिटर ने लिखा है यह रामगङ्गा होनी चाहिए।

२—पारिपात्र या पारियात्र पर्वत के क्षेत्र की नदियां-इस सूची में जो नाम आसानी से पहचाने जाते हैं वे ये हैं—सिन्धु (मध्यभारत की सिन्ध नदी); पारा (वर्तमान पार्वती नदी जो चम्बल में गिरती); चर्मण्वती (वर्तमान चम्बल); वेत्रवती (वर्तमान वेतवा जो बुन्देल खण्ड की प्रसिद्ध नदी है); विदिशा (वर्तमान वेश नदी जो वेत्रवती में मिली है और जिसके संगम पर विदिशा या भेलसा नगर है); मही (यह पारियात्र के दक्षिण-पूर्व के ढलान से निकल कर बांसवाड़ा के पास से बहती हुई खम्भात की खाड़ी से जा मिली है और गुजरात की प्रसिद्ध नदी है); क्षिप्रा नदी के किनारे प्रसिद्ध उज्जयनी नगरी थी। यह चम्बल की शाखा नदी है। यद्यपि क्षिप्रा और चम्बल दोनों का उद्‌गम विंध्य के उत्तरी ढलान से होता है फिर भी चम्बल की लपेट में क्षिप्रा को भी पारियात्र क्षेत्र के साथ जोड़ दिया गया है। इस सूची में एक नाम वेण्वासा है जिसका पाठ वायु और कूर्म में वर्णाश और वराह में पर्णा पाया जाता है। अवश्य ही यह पर्णाशा (आधुनिक बनास) नदी होनी चाहिए। बनास नाम की दो नदियां हैं। एक पारियात्र या अड़ावला के पूरब से बहती हुई चम्बल में जा मिली है। वह इस क्षेत्र की सबसे महत्त्वपूर्ण धारा है। दूसरी अड़ावला के पश्चिमी ढलान से निकल कर आबू के नीचे से बहती हुई कच्छ के रन्न में जा मिली है।

इस सूची के और नाम जिनकी पहचान पक्की नहीं है ये हैं—वेदस्मृति, वेदवती, वृत्रघ्नी, नन्दिनी, सदानीरा, यूपी और अवर्णी। वायुपुराण में अन्तिम नाम का पाठ अवन्ती है जो पार्जिटर के अनुसार महू के पास से निकल कर चम्बल में मिलने वाली अवन्ती होनी चाहिए। वह उज्जैन के पच्छिम होकर बही है।

३—विंध्यपादप्रसूता--इस सूची में वे नदियां हैं जो विंध्य पर्वत के चारों ओर के तटान्तों से निकलकर कई दिशाओं में बह जाती हैं। इनमें सुपरिचित

इसका उल्लेख पाणिनि (सू० ७।३।१) ने भी किया है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ५३)। वामनपुराण में भी उत्तर दिशा की नदियों में पयोष्णी के साथ देविका का उल्लेख आया है (८४।७)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नाम ये हैं—नर्मदा, शोण, दशार्णा, (आधुनिक धसान जो बेतवा की शाखा नदी है), मन्दाकिनी (वर्तमान मन्दाकिन जो चित्रकूट पर्वत के पास से बहती हुई यमुना की सहायक नदी पयस्विनी या पयसुनी में मिल जाती हैं), तमसा, (टोंस नदी जो इलाहाबाद के नीचे गंगा में मिली है), चित्रकूटा (यह अवश्य ही चित्रकूट पर्वत से सम्बन्धित उससे दक्षिण-पूर्व में बहने वाली छोटी नदी है जो करवी के पास यमुना में मिली है)। इस सूची में कुछ और भी महत्त्वपूर्ण नाम हैं जैसे शुक्तिमती यह शुक्तिमान् पर्वत से निकलने वाली नदी होनी चाहिए। आरण्यक पर्व के अनुसार चेदि देश की राजधानी शुक्तिमती के तट पर थी। आदि पर्व में उल्लेख है कि शुक्तिमती नदी कोलाहल गिरि के विवर में से अर्थात् उसके भीतर होकर उसे चीरती हुई निकलती है[1]। इस नदी की पहचान के विषय में मतभेद रहा है किन्तु जैसा श्री पाजटर ने लिखा है यह केवल केन नदी ही हो सकती है जो सागर दमोह, जबल पुर के प्रस्रवण क्षेत्र का पानी समेट कर बाँदा जिले में यमुना में मिल जाती है। यही ठेठ चेदि प्रदेश था। आदि पर्व के अनुसार कोलाहल पर्वत पति और शुक्तिमती उसकी पत्नी थी। शुक्तिमती के इस संकेत से कोलाहल पर्वत की पहचान भी लगभग निश्चित हो जाती है। यह पन्ना और बिजावर की वह पहाड़ी होनी चाहिए जिसके ठीक बीचोबीच से केन नदी ने रास्ता बनाया है मानां पर्वत माला किसी के प्रहार से टूटकर दो टुकड़ों में बट गई है और उस दरार (प्रहारविवर) से नदी को आगे बढ़ने का मार्ग मिल गया है।

श्लोक ५७।२१ का पाठ शोणो महानदश्चैव है, किन्तु वाराहपुराण में इसका शुद्ध पाठ शोणो ज्योतिरथा (८५।५) है । यह अतिश्रेष्ठ पाठ ही सार्थक है। ज्योतिरथा शोण की शाखा नदी है जो अब जोहिला कहलाती है। शोण की तरह यह भी अमरकण्टक के पच्छिमी ढलान से निकलती है। कालिदास ने रघुवंश में ज्योतिरथा का उल्लेख किया है (७।३६)। वहाँ भी वह शोण की सहायक नदी है किन्तु उससे परिचित न होने के कारण मल्लिनाथ ने ज्योतिरथा का पाठान्तर भागीरथी कर दिया । हेमाद्रि, वल्लभदेव, चारित्र्यवर्धन आदि प्राचीन टीकाकारों में ज्योतिरथा पाठ ही है। आरण्यक पर्व (८३।९) में शोण और ज्योतिरथा के संगम को तीर्थ कहा है (शोणस्य ज्योतिरथ्यायाश्च संगमे निवसञ्शुचिः)। शोण के साथ महानद विशेषण लगाकर इस श्लोक का पाठान्तर करनेवाले लेखक ने सुरथा नाम ज्योतिरथा के स्थान पर रक्खा ज्ञात होता है।

1—पुरोपवाहिनीं तस्य नदीं शुक्तिमतीं गिरिः।
अरौत्सीत् चेतनायुक्तः कामात्कोलाहलः किल ॥
गिरिं कोलाहलन्तं तु पदा वसुरताडयत् ।
निश्चक्राम नदी तेन प्रहार विवरेण सा ॥
(आदि पर्व, पूना, ५७।३२-३३)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कर्मोदा नदी के विषय में पार्जिटर ने कर्मनोदा अनुमान किया है और उसे कर्मनाशा माना है जो ठीक जान पड़ता है। पिप्पलिश्रोणि, पिशाचिका, विपाशा, वञ्जुला, सुमेरुजा, शकुली, त्रिदिवा आदि नामों की पहिचान निश्चित नहीं है।

विंध्याचल से निकलनेवाली नदियों में शिप्रा, पयोष्णी, निर्विध्या, तापी, निषधवती, वेण्या, वैतरणी, सिनीवाली, कुमुद्वती, करतोया, महागौरी, दुर्गा और अन्तःशिरा नाम हैं।

इनमें से कुछ नाम जैसे शिप्रा, पयोष्णी (पयस्वनी) निर्विध्या, तापी, वेण्या, वैतरणी ज्ञात हैं और शेष अज्ञात है।

गोदावरी भीमरथा, कृष्णा, वेण्या, तुंगभद्रा, वाह्या (पाठान्तर-वरदा), कावेरी, ये सह्य पर्वत की नदियाँ हैं।

कृतमाला, ताम्रपर्णी, मलय पर्वत से निकलती है एवं पुष्पजा और सूत्पलावती भी उसी की नदियाँ हैं।

उड़ीसा के महेन्द्र पर्वत से जन्म लेनेवाली नदियों के नाम ये हैं—पितृसोमा, ऋषिकुल्या (इसी नाम से प्रसिद्ध नदी जिसके तट पर गंजम नगर है), इक्षुका, त्रिदिवा, लांगूलिनी (वर्तमान लांगूलीया जिसके तट पर श्रीकाकुलम् स्थित है), वंशकरा (आधुनिक वंशधरा जिसके तट पर कलिंगपट्टन है)।

मार्कण्डेय की इस नदी सूची के संशोधित पाठ तैयार करने की आवश्यकता है। अन्त में पुराण लेखक ने नदियों के दो विभाग किए हैं—प्रावृट् कालवहा (अर्थात् बरसाती पानी से उमड़नेवाली) और सदाकालवहा (सदा बहनेवाली) और यह भी कहा है कि क्षुद्र नदियाँ तो सहस्रों हैं जिनकी कोई संख्या नहीं हो सकती।

जनपद-सूची

इसके अनन्तर श्लोक ३२ से ५७ तक सात गुच्छों में देश के जनपदों की नामावली दी गई है। ये सात भाग इस प्रकार हैं—(१) मध्यदेश (२) उदीच्य (३) प्राच्य (४) दक्षिणापथ (५) अपरान्त (६) विन्ध्यपृष्ठ (७) पर्वताश्रयी। इनके जनपदों के नाम ये हैं—

(१) मध्यदेश—मत्स्य, अश्वकूट, कुल्य, कुन्तल, काशि, कोशल, अथर्व, अर्कलिंग, मलक, वृक। इनमें काशि, कोशल और मत्स्य सुविदित हैं। कुन्तल का पाठ दूसरे पुराणों में कुन्तयः है जो ग्वालियर का कोंतवार प्रदेश था। कुल्य कुलूत का बिगड़ा हुआ रूप ज्ञात होता है। अश्वकूट का पाठान्तर मत्स्यपुराण में किरात है जो अश्वमुख भी कहे जाते थे। अथर्व का पाठान्तर मत्स्य में आवन्त, अर्थात् अवन्ति जनपद है और श्री दिनेश चन्द्र

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सरकार के अनुसार मार्कण्डेय की कुछ प्रतियों में अर्बुद (आबू पहाड़ का प्रदेश) है जो ठीक ज्ञात होता है। अर्कलिंग भी भ्रष्ट पाठ है। उसके स्थान पर शुद्ध पाठ भुलिंग था जो कि साल्व जनपद का एक प्रदेश था। दूसरे पुराणों में वही पाठ पाया जाता है। मलक के स्थान पर मूल पाठ मगध का। मार्कण्डेय के लेखक ने भुवनकोश की यह सूची मत्स्य, वायु आदि प्राचीन पुराणों से ली थी। उसमें इसका पहला श्लोक छोड़ दिया है जिसमें कुरु, पांचाल, साल्व, जांगल, शूरसेन, भद्रकार, बोध और पटच्चर, इतने नाम अधिक थे। इनकी भौगोलिक पहचान हमने अपने 'पाणिनिकालीन भारतवर्ष' में दी है। मध्यदेश का विस्तार सह्य पर्वत की गोदावरी नदी के उत्तर से मगध आबू और कुरुक्षेत्र तक गुप्तयुग में माना जाता था। उस प्रदेश को यहाँ पृथिवी भर में सुन्दर कहा गया है (पृथिव्यामिह कृत्स्नायां स प्रदेशो मनोरमः)।

(२) उदीच्य जनपद—वाल्हीक, वाटधान, आभीर, कालतोय, अपरान्त, शूद्र, पल्लव, (शुद्ध पाठ-पह्लव), चर्मखण्डिक, गान्धार, यवन, सिन्धु, सौवीर, मद्रक, शतद्रुज (सतलज के उपरले क्षेत्र के त्रिगर्त आदि प्रदेश) कलिंग (शुद्ध पाठ कुणिंद, सतलज से यमुना की शाखा टोंस नदी तक का प्रदेश, वर्तमान देहरादून जिला), गबल (शुद्ध पाठ-यवन), पारद (हिंगुला देवी का स्थान), हार भूषिक (शुद्ध पाठ हारहूरक); इसका दूसरा रूप हारहूण भी मिलता है, कन्धार का प्रदेश जहाँ काले रंग की दाख होती है), माठर (शुद्ध पाठ-रमठ, गजनी का प्रदेश), बहुभद्र (पाठान्तर फाण्टकार), कैकेय (शाहपुर, खिउड़ा का प्रदेश), दशमालिक (पाठान्तर दशमानक या दशनामक, सम्भवतः आफगानिस्तान का रोह प्रदेश, जो कि मध्यकालीन नाम था; सभापर्व में लोहित प्रदेश के दशमंडल राज्यों का उल्लेख है—सभा० २४/१६, जहाँ इस समय कोहिस्तान का इलाका है। निश्चित रूप से वही यहाँ अभिप्रेत हैं।), काम्बोज (पामीर पठार), दरद (कश्मीर का उत्तर पच्छिमी भाग), बर्बर (सिंधु-सागर संगम के पास का प्रदेश), हर्षवर्धन (पाठान्तर-अंगलौकिक), चीन, तुखार, बाह्यतोनर (पाठान्तर-बाह्यतोदर एवं क्षतोदर ; गान्धार देश के आचार्यों को संघभद्र के अभिधर्म प्रदीप में और वसुबन्धु के अभिधर्म कोश में बाह्यक, बहिर्देशक और बाहिर्देशिक कहा गया है। ज्ञात होता है सिन्धु के उस पार के या पश्चिमी गान्धार के लोग बाह्यतोनर या बाहरी लोग कहलाने लगे थे); आत्रेय, (पाठान्तर-क्षत्रयः, संभवतः खथराई, जिनका उल्लेख यूनानी लेखकों ने किया है), भरद्वाज, पुष्कल (गन्धार की पश्चिमी राजधानी पुष्कलावती के निवासी), कुशेरुक (पाठान्तर-दसेरक), लम्पाक (अफगानिस्तान का लघमान प्रदेश), शूलकार (पाठान्तर-स्तनप एवं तलगान), चूलिक (मध्य एशिया का शूले प्रदेश), जागुड़ (गजनी का प्रदेश, दक्षिणी अफगानिस्तान), औपध (अज्ञात), अनिभद्र (पाठान्तर-अलिभद्र), किरातों की अनेक जातियाँ (रामपुर बशहर का इलाका), तामस (पाठान्तर-तोमर), हंसमार्ग (उत्तरी काश्मीर का हुंजा प्रदेश), काश्मीर, तुंगन (शुद्ध पाठ-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तंगण, उत्तरी गढ़वाल और पश्चिमी तिब्बत के निवासी), शूलिक (मध्य एशिया का प्रदेश, पाठान्तर कुलूत = त्रिगर्त कांगड़ा), कुहक (कुहा या काबुल नदी के तटवासी), ऊर्ण (स्वात प्रदेश में ऊनासर के निवासी), दर्व (पाठान्तर-दार्व, जम्मू का डोगरा प्रदेश) ।

(३) प्राच्यदेश के जनपद—अद्धारक (दूसरे पुराणों में शुद्ध पाठ अंग और बंग है), मुदकर (शुद्ध पाठ-मुद्‌गरक = मुंघेर), अन्तरगिर्य (हिमालय की भीतरी शृंखला के निवासी), बहिगिर (हिमालय की बाहरी शृंखला के निवासी[१]) प्रवंग (बंग जनपद का कोई भाग), रंगेय (संभवतः बंगाल का रक्त मृत्तिका प्रदेश), मानद (पाठान्तर मलद, मालदा प्रदेश), मानवर्तिक (संभवतः वर्धमान, पाठान्तर-मल्यवर्तक), ब्रह्मोत्तर (पाठान्तर-सुह्मोत्तर, दक्षिण-पश्चिम बंगाल का राढ़ प्रदेश जिसकी राजधानी ताम्रलिप्ति थी), प्रविजय, भार्गव, ज्ञेयमल्लक, प्राग्ज्योतिष, मद्र (मत्स्य पुराण में पाठान्तर पुण्ड्र), विदेह, ताम्रलिप्तक, मल्ल, मगध (इसकी गिनती कभी मध्यदेश में, कभी प्राच्य जनपदों में होती थी), गोमन्द (पाठान्तर-गोनर्द) ।

(४) दक्षिणापथ—पुण्ड्र (शुद्धपाठ-पाण्ड्य), केवल (शुद्धपाठ-केरल), गोलांगूल (मार्कण्डेय की ही कुछ प्रतियों में पाठ चोल है, वही वायु, ब्रह्माण्ड, मत्स्य और वामन पुराणों में है । इसका दूसरा अंश कुल्य या कुल्य है जिसकी पहिचान समुद्रतट स्थित कूलम् से की जा सकती है), शैलूष (पाठान्तर-सेतुक, सेतुबन्ध रामेश्वर के निवासी), मूषिक (हैदराबाद की मूसी नदी के तटवासी), कुसुम (पाठान्तर-कुमार, कन्याकुमारी), नामवासक (पाठान्तर वनवासक, उत्तरी कनाड़ा जिले में वनवासी नामक स्थान के निवासी), महाराष्ट्र, माहिषक (मैसूर के महिष विषय के निवासी), कलिंग, आभीर (शुद्धपाठ-कावेर, कावेरी तटवासी), सह-वैशिक्य (पाठान्तर-सहचैषोक या सहैषीक), आढ़क्य (पाठान्तर-आटव्य संभवतः बस्तर में इन्द्रवती नदी का प्रदेश), शबर (बस्तर की शबरी नदी के निवासी जो गंजम और विशाखापत्तन तक फैले हैं), पुलिंद, विंध्यमौलेय (पाठान्तर-विंध्यमालेय या विंध्यमूलीक, विंध्याचल के दक्षिणी पूर्वी जंगलों में रहनेवाले), वैदर्भ (आधुनिक बरार), दण्डकवन, पौरिक (कोंकण प्रदेश की पुरी नामक स्थान के रहनेवाले), मौलिक (मूलक, वर्तमान औरंगाबाद जिला), अश्मक (गोदावरी के दक्षिण अहमद नगर एवं साथ के जिलों का प्रदेश जिसकी पुरानी राजधानी गोदावरी के तट पर प्रतिष्ठान या पैठण थी), भोगवर्धन, नैषिक (संभवतः ऋषिक का पाठान्तर, वर्तमान खानदेश का प्राचीन नाम ऋषिक था), कुन्तल (कन्नड़प्रदेश, जिसकी राजधानी बनवासी थी), अन्ध (पाठन्तर-अन्ध्र, कृष्णा और गोदावरी के बीच का आन्ध्रप्रदेश) उद्भिद, वनदारक (पाठान्तर-नलकालिक) ।

१—अन्तर्गिर वहिर्गिर को पहचानने के लिये देखिये पाणिनिकालीन भारतवर्ष—(पृ० ४३-४४)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(५) अपरान्त या पश्चिम के जनपद—सूर्यारक (शुद्धपाठ-शूर्पारक, बम्बई के निकट आधुनिक सोपारा), कालिबल (पाठान्तर-कोलवन), दुर्ग, चानीकट (पाठान्तर तालिकट), पुलिन्द (पाठान्तर-पुलेय), सुमीन (पाठान्तर-सुराल) रूपप (पाठान्तर-रूपक या रूपस), श्वापद (पाठान्तर-तामस), कुरुमिन्, कठाक्षर (पाठान्तर-परस्कर, संभवतः पारस्कर या थरपारकर प्रदेश इसका एक पाठान्तर कारस्कर भी है), नासिक्य, उत्तरनर्मद, भींरुकच्छ (पाठान्तर-भरुकच्छ या भृगुकच्छ), माहेय (मही नदी के काँठे के लोग), सारस्वत (गुजरात की सरस्वती नदी के काँठे के निवासी), काश्मीर (अन्य पुराण सूचियों में शुद्ध पाठ कच्छीय है), सुराष्ट्र (वर्तमान सौराष्ट्र) आवन्त्य (शुद्धपाठ-आनर्त), आर्बुद (आबू पर्वत) ।

(६) विध्यपृष्ठ के निवासी—सरज (वायु, ब्रह्माण्ड और मत्स्य में पाठान्तर-मालव । वायु की एक प्रति में मलद पाठ भी है ।) करूष (बिहार में शाहाबाद जिले के निवासी), केवल (शुद्ध पाठ मेकल, वर्तमान अमरकण्टक प्रदेश), उत्कल (उत्तरी उड़ीसा), उत्तमर्ण, दशार्ण (पूर्वी मालवा में धसान नदी का प्रदेश जिसे आकर भी कहते थे । इसकी राजधानी विदिशा थी), भोज (संभवतः विदर्भ), किष्किन्धक, तोशल (भुवनेश्वर के पास का वर्तमान धौली जिसका प्राचीन नाम तोसली था), कोशल, दक्षिण कोशल (दक्षिण में रायपुर, विलासपुर, सम्बलपुर), त्रैपुर (त्रिपुरी, अर्वाचीन तेवर, जबलपुर के निवासी), वैदिश (विदिशा या भेलसा के निवासी), तुम्बुर-तुम्बुल (संभवतः तुम्बवन, आधुनिक तुमैन ग्वालियर राज्य) पटु, नैषद, नलकच्छ या नरवर, अन्नज (शुद्ध पाठान्तर-अनूप, नर्मदा के तटका प्रदेश जिसकी राजधानी माहिष्मती या मान्धाता थी), तुष्टिकार (शुद्धपाठ-तुण्डिकेर), वीरहोत्र (शुद्धपाठ वीतिहोत्र), अवन्ति ।

७—पर्वताश्रयी—प्राचीन भारतवर्ष में पर्वताश्रयी या पहाड़ी जनपदों के दो समूह थे। एक कुल्लूकाँगड़ा से लेकर जम्बू के डोगरा प्रदेश तक और दूसरा काश्मीर के पुंछ हजारा से लेकर आफगानिस्तान के पहाड़ी इलाकों तक। यहाँ इन दोनों को एक ही सूची में गिनाया है।

नीहार, हंसमार्ग (उत्तरी काश्मीर का हुंजा प्रदेश), कुरवः (उत्तर कुरु जनपद, मध्यएशिया में चीनी तुर्किस्तान का भाग), गुरुगण (पाठान्तर तंगण वस्तुतः मध्यएशिया के परतंगण), खस, कुन्तप्रावरण (पाठान्तर—कर्ण प्रावरण और कुथप्रावरण), ऊर्ण (पाठान्तर हूण), दार्व (डोगरा प्रदेश), सकूत्रक (पाठान्तर—सुहुहूक या सहुहूक), त्रिगर्त (कुल्लू काँगड़ा), गालव (पाठान्तर-मालव), किरात (रामपुर बशहर के निवासी), तामस (पाठान्तर—तामर या तोमर) ।

इस प्रकार अध्याय ५७ में प्राचीन भुवन कोश की सूची के अनुसार जनपद सूची पाई जाती है। इनमें से तीन-चौथाई नाम भारतीय इतिहास में जाने-पहचाने हैं। जनपद एक सांस्कृतिक भौगोलिक इकाई की संज्ञा होती थी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अफगानिस्तान से कामरूप तक और हिमालय से दक्षिण तक जनपदों का तांता फैला हुआ था और संभवतः कोई भी भूभाग ऐसा न था जो जनपद के रूप में विकसित न हुआ हो। जिस प्रकार प्राचीन यूनान में पुर राज्यों का संगठन और महत्त्व था, उसी प्रकार का विस्तार लगभग उसी युग में भारत में जनपदों का था। इनमें से कुछ राजाधीन और कुछ गणधीन थे (जनपदों के विशेष परिचय के लिये देखिए हमारी पुस्तक पाणिनिकालान भारत वर्ष, पृ० ४१८-४३४, ४५७-४६५)।

कूर्मसंस्थान के अनुसार देश सूची

जैसा पहले कहा जा चुका है यह एक नई सूची थी जिसका संकलन गुप्तयुग में किसी समय किया गया। यह नई सूची नारदीय पुराण (पूर्व भाग, ५६।७३९-३५) भी पाई जाती है। वराहमिहिरकृत बृहत्संहिता अध्याय १४ (नक्षत्र कूर्माध्याय) की सूची से भी यह बहुत मिलती है। इन जनपदों में मुख्य इस प्रकार हैं—

१—कूर्म का मध्य या पृष्ठ भाग—वेदमन्त्र (यह नाम अन्यत्र नहीं है। संभवतः वेदश्रुति या विसुई नदी का प्रदेश), विमाण्डव्य (संभवतः विजनौर का मंडावर प्रदेश), साल्व, नीप (रघुवंश ६।४६ के अनुसार शूरसेन का राजा नीप वंशी था), शक (ये अवन्ती के शक क्षत्रप होने चाहिएँ), उज्जिहान (रामायण अयोध्या काण्ड ७३।८ में उज्जिहाना का वर्णन है, संभवतः बदायूँ जिले का उझानी), घोषसंख्य (व्रज भूमि और हरियाना प्रदेश), खश, सारस्वत (कुरुक्षेत्र की सरस्वती नदी का प्रदेश), मत्स्य (जयपुर, अलवर, भरतपुर), शूरसेन (मथुरा प्रदेश सहित), धर्मारण्य (गया के पास एक वन), ज्योतिषिक (कामरूप) गौरगिरि, (गौरीशंकर प्रदेश) गुडाश्मक, (पत्थर के ढोंके लुढका कर युद्ध करने वाले पर्वतीय गण, संभवतः उत्सव संकेत गण जिनका स्थान रामपुर वशहर के किन्नर प्रदेश में था), कंक (शकों की एक शाखा जो मध्यदेश में आकर बस गई थी। भागवत में इनका उल्लेख है), मारुत, कालकोटि (इसका शुद्ध पाठ काल कुट्ट होना चाहिये जिसका उल्लेख अष्टाध्यायी और महाभारत में है), पाषण्ड, कापिङ्गल, कुरु, उदुम्बर (जालन्धर, पठानकोट के प्रदेश का एक राज्य जिनके सिक्के पाए गए हैं), गजाह्व (हस्तिनापुर), विदेह, पांचाल।

२—कूर्ममुख के जनपद—मगध, गिरि (हिमालय की भीतरी बाहरी शृङ्खला के निवासी, अन्तर्गिरि बहिर्गिरि), मैथिल, प्राग्ज्योतिष, लौहित्य (ब्रह्मपुत्र की पूर्वीशाखा नदी लोहित्य), सामुद्र (पूर्वी समुद्र तटवासी या गंगासागर संगम के लोग जिन्हें पुरुपादक कहा गया है), कशाय (संभवतः खासी पहाड़ी के निवासी), ताम्रलिप्त, वर्धमान, कोशल चन्द्रेश्वर (बंगाल का चन्द्रद्वीप, बारीसाल), सूर्पकर्ण, व्याघ्रमुख, खर्मक, कर्वटाशन।

३—कूर्म का दक्षिणपाद—कलिंग, वंग, जठर, कोसल, मृषिक (शुद्ध पाठ मूषिक या ऋषिक), चेदि, विंध्यवासी लोग, विदर्भ, नारिकेल, धर्मद्वीप, ऐलिक,

२०

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

व्याघ्रग्रीव, महाग्रीव, त्रैपुर (जबलपुर का त्रिपुरी प्रदेश), कैष्किन्ध्य, हेमकूट, निषध, कटक स्थल (उड़ीसा का कटक प्रदेश), दशार्ण, निषाद, पर्णशवर (शबरों की अवान्तर जंगली जाति), काकुलालक (उड़ीसा के श्री काकुल के निवासी) ।

४—कूर्म की दक्षिण कुक्षि या दाहिना पार्श्व—लंका, कालाजिन, शैलिक आन्ध्र में श्री शैल के निवासी), निकट, महेन्द्र, मलय, दर्दुर, कर्कोटक वन, भृगुकच्छ, कोंकण, आभीर (दक्षिण के आभीर राज्य जिनके सिक्के और शिलालेख पाए गए हैं), वेण्या तटवासी, अवन्ती, दासपुर (शुद्ध पाठ दशपुर या मन्दसोर के निवासी), आकणिन (शुद्ध पाठ ऐरिकिण या एरन के निवासी) महाराष्ट्र कर्णाट, गोनर्द, चित्रकूट (चित्तौर), चोल, कोलगिरि (समुद्रगुप्त की प्रयागप्रशस्ति तथा अश्वमेध पर्व में उल्लिखित), क्रौंचद्वीप, कावेरी, ऋष्यमूक, नासिक या नासिक्य, कृष्णद्वीप (कृष्णा नदी का प्रदेश), पिशिक, औखावन, कर्मनायक (संभवतः कुडग प्रदेश के कम्बुनायक, कम्बु या कोम्बु = जिला), दक्षिण कौरुष, ऋषिक, ऋषभ (श्री पर्वत और कावेरी के मध्य में ऋषभ पर्वत के निवासी, छत्तीसगढ़ में शक्ति रियासत का ऋषभ या उसभ तीर्थ), सिंहल, कांची, तेलंग, ताम्रपर्णी ।

५—कूर्म का दक्षिण-पश्चिमी पाद—काम्बोज, पह्लव, बड़वामुख (संभवतः अश्वमुख या किन्नर), सिंधु (पंजाब का सिंधसागर दोआब), सौवीर (वर्तमान सिंध प्रदेश), आनर्त (द्वारका प्रदेश), वनितामुख, द्रावण, अगिग, शूद्र, कर्णप्राधेय, बर्बर, किरात, पारद (बलूचिस्तान के पारदायन या पारदीनी प्रदेश के लोग), पाण्ड्य, पारशव, कल, धूर्तक, हैमगिरिक, सिन्धुकालकवैरत, (संभवतः सिंधु सागर संगम के काले कैवर्त लोग), सौराष्ट्र, दरद, द्राविड, महार्णव ।

६—कूर्म के पुच्छ प्रदेश के निवासी—अपरान्तिक, हैहय, शान्तिक विप्रशस्तक, कोकंकण, पंचदक, वमन अवर, तारक्षुर, अंगतक, शर्कर (सिंध का रोड़ी सख्खर प्रदेश), शाल्मवेश्मक, गुरुस्वर, फल्गुणक, वेणुमती नदी के निवासी, फल्गुलुक, घोर, गुरुह, कल एकेक्षण, वाजिकेश, दीर्घग्रीव, चूलिक, अश्वकेश ।

७—कूर्म का उत्तर-पश्चिमी वामपाद—माण्डव्य, चण्डखार, अश्वकालनत, कुन्यत, लडह, स्त्रीवाह्य, बालिका, नृसिंह, वेणुमती नदी तटवासी, आलूक—ये सभी नाम प्रायः अज्ञात हैं । संभवतः पाठ शुद्ध होने से कुछ पता चले ।

८—कूर्म की वामकुक्षि या उत्तरी पार्श्वभाग—कैलाश, हिमवान्, धनुष्मान्, वसुमान्, क्रौञ्च (अल्मोड़े का क्रौंच रन्ध्र या हिमालय में प्रवेश करने वाला हंसमार्ग) कुरुवक, क्षुद्रवीण, रसालय, कैकेय, भोगप्रस्थ (हिमालय की एक राजधानी), यामुन (यमुना का उपरला प्रदेश), त्रिगर्त (कुल्लू कांगड़ा), अग्नीज्य, सार्दन, अश्वमुख, प्राप्त, चिविड, दासेरक, वाटधान, शवधान, पुष्कल, अधम कैरात, तक्षशिला, अम्बाला, मालव, मद्र, वेणुक, वदन्तिक, हूण, कोहलक, माण्डव्य, भूतियुवक, शातक, हेमतारक, यशोमत्य, गान्धार, यौधेय, दासमेय, राजन्य, श्यामक (चितराल रियासत) क्षेमधूर्त (व्याकरण साहित्य में इनका उल्लेख आता है), पिंगल, मानकलह ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

९—कूर्म का पूर्वोत्तरपाद—किन्नरराज्य (सतलज का कनौर प्रदेश), पशुपाल (कांगड़ा का गद्देरन प्रदेश), कीचक (मध्य एशिया की शैलोदा नदी के तट जहाँ कीचक नाम का बाँस होता है), काश्मीर, अभिसार (हजारा), द्वद, (संभवतः शुद्ध-पाठ दरद), त्वंगन (शुद्धपाठ तंगण), कुलट (शुद्ध पाठ कुलूत), वनराष्ट्रक, सैरिष्ठ, ब्रह्मपुरक (काँगड़ा की ब्रह्मोर रियासत), किरात, कौशिक (कौशिकी नदी), नन्द (नन्दा या नन्दाकना नदी के तटवासी), पह्लव, लोलन, दार्व (दार्व या डोगर प्रदेश के निवासी), दामरक (संभवतः कश्मीर के डामर), कुरट, अन्नदारक, एकपाद, खस, यवन, स्वर्गभौमान्यवद्यक (जो पृथिवी पर रहते हुए स्वर्ग से कम न हों, संभवतः उत्तर कुरु जनपद के लोग), हिंग, चीरप्रावरण त्रिनेत्र (संभवतः ललाटाक्ष जनपद) पौरव, गन्धर्व (गान्धार प्रदेश का गुप्तकालीन नाम) ।

कूर्म संस्थान का समाहार करते हुए कहा गया है कि इन नौ भागों में तीन-तीन नक्षत्र क्रमशः शुभ और अशुभ फल देते हैं और बारह राशियाँ भी अपना फल दिखलाती हैं। जप होम, दान स्नान, अक्रोध अद्रोह, मैत्री, उपवास इन उपायों का आश्रय लेना चाहिए। वितण्डावाद और रूक्षवाक्य का त्याग करना चाहिए। इस प्रकार जो मनुष्य संयम से रहते हैं उनके नक्षत्रों से उत्पन्न होने वाले घोरफल शान्त हो जाते हैं। जो पाप रहित है उन्हें कभी भय नहीं होता (नैकत्रापि ह्यपापानाम् भयमस्तिकदाचरन, ५८।६१)। इस प्रकार भारतवर्ष में भगवान कूर्म का विस्तार मैंने कहा है। जहाँ अचिन्त्य शक्ति वाले नारायण हैं वहीं प्रत्येक नक्षत्र के अधिपति देव आकर निवास करते हैं।

इसके बाद भारत से बाहर के कुछ द्वीपों का वर्णन दिया गया है जो और पुराणों की अपेक्षा संक्षिप्त है। इनमें पहला भद्राश्व वर्ष है, जहाँ हयग्रीव रूप में विष्णु की पूजा होती है। यह देवपर्वत सुमेरु के पूर्व में है। भद्राश्व की पहचान चीन देश से जान पड़ती है। चीन देश का सबसे विशिष्ट चिन्ह ड्रैगन (Dragon) है। उसी का संस्कृत पर्याय भद्र अश्व या भद्राश्व जान पड़ता है।

सुमेरु के पश्चिम केतुमाल वर्ष कहा गया है। जिसकी सबसे पक्की पहचान उस देश में वंक्षु नदी (वर्तमान ऑक्सस) कही गई है। यहाँ विष्णु की पूजा वराह के रूप में होती है। वस्तुतः कम्बोज या पामीर पठार से सासानी ईरान तक गुप्त युग में वराह की मान्यता प्रचलित थी।

देवकूट सुमेरु के उत्तर में उत्तरकुरु द्वीप है। वहाँ की बड़ी नदी भद्रसोमा है। वहाँ विष्णु की पूजा मत्स्यरूप में होती है। चन्द्रद्वीप और भद्रद्वीप ये दो वहाँ के बड़े भूभाग हैं। इनमें से चन्द्रद्वीप चीन के उत्तर का वह प्रदेश है जहाँ से कुषाण जाति के पूर्वजों का निकास हुआ था जिसके कारण सम्राट कनिष्क को इतिहास में चन्द्रवंशी कहा गया है। उत्तरकुरु के विषय में एक बहुप्रचलित धारणा भारतीय साहित्य में पाई जाती है। उसका उल्लेख यहाँ भी हुआ है। उसके अनुसार वहाँ युगल या स्त्री-पुरुष का जोड़ा जन्म लेता है। वे सदा सुखी रहते हैं। उनके लिए

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वस्त्र, आभूषण, अन्न और पान की सब आवश्यकताएँ कल्पवृक्षों की शाखाओं से पूरी हो जाती हैं।

इसके अतिरिक्त हरिवर्ष, इलावृत, रम्यक और हिरण्यमय वर्षों का अध्याय ५६, ६० में संक्षिप्त उल्लेख करके क्रौष्टुकि ने प्रश्न किया कि अब मैं मनवन्तरों की कथा सुनना चाहता हूँ।

स्वारोचिष मनु

इस प्रसंग में दूसरे स्वारोचिषमनु की कथा कही गई है। हिमालय में वरूथिनी नाम की अप्सरा से एक गन्धर्व ने विवाह किया। उनसे स्वरोचिष् नामक नामक पुत्र हुआ। उसने मनोरमा नाम की एक कन्या को आयुर्वेद के प्रताप से रोगमुक्त किया एवं उसके साथ की दो कन्याओं से भी विवाह किया तथा किसी वनकुमारी से विवाह करके द्युतिमत् नामक पुत्र को उत्पन्न किया। वही स्वारोचिष-मनु कहलाया।

इस प्रसंग में अष्टांग आयुर्वेद का उल्लेख अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यहाँ कहा है कि ब्रह्ममित्र ने अष्टांग आयुर्वेद का अध्ययन किया जिसकी परम्परा टूट चुकी थी (ब्रह्ममित्रोऽष्टधा छिन्नमायुर्वेदमधीतवान्, ६३।३९)। वर्तमान चरकसंहिता में जो अष्टांग आयुर्वेद का वर्णन पाया जाता है वह सर्वांश में प्राचीन नहीं था। उसमें चिकित्सा स्थान के अन्तिम तीसवें अध्याय में स्पष्ट लिखा है कि चरक द्वारा प्रतिसंस्कृत जो प्राचीन अग्निवेश तंत्र था उसमें सातवाँ कल्पस्थान, आठवाँ सिद्धिस्थान और सातवें चिकित्सास्थान के तीस अध्यायों में से अन्तिम सतरह अध्याय विद्यमान नहीं थे। उन्हें कपिलबलके पुत्र दृढ़बल ने, जिसका जन्म पंचनदपुर में हुआ था, अनेक तन्त्रों से खोजकर पूरा किया। (चरक संहिता, चिकित्सा स्थान, अध्याय ३०, श्लोक २८९, २९०-सिद्धि स्थान अध्याय १२, श्लोक ६८-६९)।*

---

*अस्मिन् सप्तदशाध्यायाः कल्पाः सिद्धय एव च।
नासाद्यान्तेऽग्निवेषस्य तन्त्रे चरक संस्कृते ॥ तानेतान् कापिल बलिः शेषान् दृढ़ बलोऽकरोत्।
(चिकित्सास्थान अ० ३०, २८९-२९०)

अखण्डार्थम् दृढ़बलो जातः पञ्चनदे पुरे
कृत्वा बहुभ्यस्तन्त्रेभ्यो विशेषोञ्छ शिलोच्चयम्।
सप्तदशौषधाध्याय सिद्धि कल्पैरपूरयत्
इदमन्यून शब्दार्थं तन्त्रं दोषविवर्जितम् ॥
(सिद्धिस्थान अध्याय १२ श्लोक ६८-६९)

ज्ञात होता है दृढ़बल का एक नाम ब्रह्ममित्र भी था और वह अथर्व वेदी ब्राह्मण था।

ब्रह्ममित्रोष्टधा छिन्नमायुर्वेद मधीतवान्
त्रयोदशाधिकारम् च प्रगृह्याथर्वणो द्विजः।
(मार्कण्डेय अध्याय ६३ श्लोक ३९)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पद्मिनी विद्या

स्वरोचिष् की कथा के प्रसंग में गुप्त युग के भोग प्रधान समृद्ध जीवन की एक झाँकी दी गई है। कहा है कि यह सारा जगत् भोगात्मक है। भोग भोगने के लिए आयु का कोई भाग अनुपयुक्त नहीं हैं। मनुष्यों की चेष्टा या कर्मों का फल जीवन में भोग भोगना है :—

अकालः कोपि भोगानाम् सर्व भोगात्मकम् जगत् ।
यज्ञाः क्रियन्ते भोगार्थम् ब्राह्मणैः संयतात्मभिः ॥
दृष्टादृष्टांस्तथा भोगान् वाञ्छमाना विवेकिनः ।
दानानि च प्रयच्छन्ति पूर्ण धर्मांशश्च कुर्वते ॥

इन भोगों को प्राप्त करने के लिए पुष्कल धन की आवश्यकता होती है। यथेष्ट धन संचय का साधन पद्मिनी विद्या है। अध्याय ६८ में उस पद्मिनी विद्या का विस्तार से वर्णन किया गया है। इस अध्याय को सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर पता चलता है कि गुप्तों के स्वर्ण युग में धन कमाने के जो मुख्य पेशे थे उन्हीं का नाम 'पद्मिनी विद्या' थी।

पद्मिनी विद्या के अन्तर्गत निम्नलिखित आठ निधियाँ मानी जाती थीं :—

१—पद्म—जिसके पास यह निधि होती हैं उसके पुत्र-पौत्र आदि की वंश परम्परा में भी धन ठहरता है। वह पुरुष' दाक्षिण्य सार' होता है, अर्थात् अनुकूलता के साथ दान देने में उसकी रुचि सदा बनी रहती है। यह सात्विक निधि है और इसका आधार सतोगुण है। सोना, चाँदी, ताँबा आदि धातुओं का संचय और उनका क्रय-विक्रय इस निधि की विशेषता है। जिसके पास यह निधि होती है वह बड़े-बड़े यज्ञ करके दक्षिणा देता है एवं सभा-मण्डप और देवालयों का निर्माण कराता है। जिसे सर्राफे का व्यवहार कहा जाता है। वही यह निधि थी।

२—महापद्म—इस निधि का स्वामी भी सतोगुणी होता है। वह पद्मराग आदि रत्नों का संचय करता है और मोती, मूँगे आदि का क्रय-विक्रय करता है। वह योग साधन करने वाले व्यक्तियों के लिए घर आदि की व्यवस्था करता है। उसके पुत्र-पौत्र आदि वंशजों में सात पुश्त तक यह निधि उसे नहीं छोड़ती। यहाँ उन जौहरियों की ओर संकेत है जो देश-विदेश से नानाप्रकार के मँहगे रत्न लाकर उनका व्यापार करते थे। उज्जैनी, पाटलिपुत्र, काशी, मथुरा आदि महास्थानों में इस प्रकार के व्यापारियों की दूकानें रत्नों के ढेरों से भरी रहती थीं।

यहाँ कहे हुए १३ अधिकार चिकित्सा स्थान के आरम्भ में आए हैं। कुषाण युग के बने हुए आयुर्वेद के बहुत से छोटे मोटे ग्रन्थ मध्य एशिया से प्राप्त हुए हैं। उन्हीं की चुनी हुई सामग्री लेकर दृढ़बल ने शिलोञ्छ शैली से अपने शास्त्र को पूरा किया। चरक संहिता का वर्तमान रूप उसे गुप्त युग में प्राप्त हुआ। इस तथ्य पर यहाँ महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(३) मकरनिधि—इस निधि का स्वामी बाण, धनुष, तलवार, ढाल, आदि सैनिक शस्त्रास्त्रों का व्यापार करता है। राजाओं से उसकी मित्रता होती है। यह निधि एक पीढ़ी तक ठहरती है। प्रायः दस्युओं से या संग्राम में उसका नाश हो जाता है।

(४) कच्छपनिधि—जिसके पास यह निधि होती है प्रायः वह पुण्य के कार्य करता है, और मकान आदि भी बनवाता है, पर वह किसी का विश्वास नहीं करता। कछुए की तरह वह अपने ही भीतर अपनी सारी विभूति को समेटे रहता है। न किसी को देता है, न स्वयं भोग करता है, और धन को धरती में गाड़ कर रखता है। यह भी एक पीढ़ी तक ही रहती है क्योंकि उसके बाद बेटे-पोते खुलकर सब उड़ा डालते हैं। यहाँ बाप-दादों से मिले हुए पुश्तैनी धन की ओर संकेत है। कंजूस स्वामी अपने जीतेजी उस धन को जुगोता है।

(५) मुकुन्दनिधि—इसके स्वामी का स्वभाव रजोगुणी होता है। इसका अधिपति संगीत और ललित कलाओं का प्रेमी होता है। वह जीवन में वीणा, वेणु, मृदङ्ग आदि वाद्यों का आनन्द उठाता है और नृत्य एवं गान करनेवाले लोगों को अपना धन बाँटता हुआ रात दिन भोग भोगता है। ठेठ नागरिक रईस की प्रवृत्तियों द्वारा वह जीवन यापन करता है। यह निधि भी एक पीढ़ी तक ही ठहरती है।

(६) नन्दनिधि—इसके स्वामी का स्वभाव कुछ रजोगुणी और कुछ तमोगुणी होता है। वह धातु, रत्न एवं धान्य आदि का संग्रह एवं व्यापार करता है। उसके यहाँ नाते रिश्तेदार और अतिथि आदर पाते हैं। वह थोड़ा भी अपमान नहीं सह सकता और प्रशंसा से प्रसन्न होता है। वह जिसे प्यार करता है उसकी ओर बहुत सुकुमार भाव दिखलाता है। उसके घर में बहुतसी स्त्रियाँ होती हैं। यह निधि सात पुश्त तक रहती है। यह जमींदार, ताल्लुकेदार, ठिकानेदार, भोगिक, सामन्त, और रजवाड़ों का वर्णन है।

(७) नीलनिधि—इसका स्वामी सतोगुणी और रजोगुणी स्वभाव का होता है। वह नाना भाँति के वस्त्र, कपास, धान्य, फल-पुष्प, मोती, मूँगा, शंख, शुक्ति, काष्ठ आदि का संग्रह और क्रय विक्रय करता है। वह तड़ाग, पुष्करिणी, बनवाता है एवं नदियों के बाँध बगीचे और वृक्षों की व्यवस्था करता है। यह निधि तीन पुश्त तक ठहरती है।

८—शंख-निधि—इस निधि के स्वामी का स्वभाव कुछ रजोगुणी पर विशेषतः तमोगुणी होता है। यहएक पुश्त रहती है। इसका स्वामी कंजूस होता है। वह अकेले खाता और पहनता है और सो भी न बढ़िया अन्न खाता है और न बढ़िया वस्त्र पहनता है। वह केवल अपने पोषण में इतना डूब जाता है कि मित्र, स्त्री, पुत्र, पुत्रवधू, भाई आदि को भी नहीं देता।

ये आठ निधियां मनुष्यों के धन की एवं सम्पत्ति की अर्थदेवता हैं। ये जिसे देख लेती हैं वह उसी स्वभाव का बन जाता है। पद्मिनी विद्या के अन्तर्गत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इन आठ निधियों की अधिष्ठात्री देवता लक्ष्मी जी हैं। (पद्मिनी नाम या विद्या लक्ष्मी तस्याश्च देवता, ६८।४) यह पद्मिनी-श्री या पद्मा-श्री देवी सबके ऊपर आधिपत्य करती है। गुप्त युग में पद्मिनी या पद्म के ऊपर विराजमान लक्ष्मी देवी की मूर्त्ति घर-घर में लिखी जाती थी। उसकी आकृति गुप्त सम्राटों की स्वर्णमुद्राओं के एक ओर पाई जाती है। और भी अनेक मिट्टी की मोहरों पर यह आकृति पाई गई है। वस्तुतः समस्त देश की संस्कृति में धन की अधिष्ठात्री पद्मा देवी की आराधना से अपार धन राशि का संचय हुआ, जिसके कारण वह युग स्वर्ण युग कहलाया।

तीसरे औत्तम मनु की कथा

अध्याय ६९ से ७३ तक तीसरे औत्तम नामक मनु की कथा है। कहानी का सम्बन्ध उत्तानपाद के पुत्र उत्तम नामक राजा के साथ जोड़ दिया गया है। उसकी रानी बहुला बहुत ही शीलवती थी। किसी छोटी-सी बात पर राजा ने रुष्ट होकर उसे निकाल दिया। एक बार उसके पास एक ब्राह्मण आया जिसकी पत्नी को कोई हर ले गया था। राजा ने उसे दूसरी स्त्री देने को कहा, किन्तु ब्राह्मण ने निवेदन किया—हे राजन्, भार्या की रक्षा करनी चाहिए। उत्तम श्रुति वाक्य हमने सुना है। पत्नी की रक्षा करने से सन्तान की रक्षा होती है। पत्नी में अपनी आत्मा ही पुत्र रूप में जन्म लेती है। इसलिये उसकी रक्षा अपनी ही रक्षा है। उसकी रक्षा न की जाय तो समाज में वर्णसंकर हो जाता है और धर्म की हानि हो जाती है। उसके बिना नित्य क्रियाओं के लोप से मेरा तो पतन ही हो जायगा। आपको आय का छठा भाग देने वाली मेरी सन्तान भी उसी से जन्म लेगी। अतएव कृपया मेरी पत्नी को ढूँढ़ कर दीजिए (६९।३५-४०)।

राजा ने ब्राह्मण की इच्छा पूरी करने का वादा किया। जंगल में उन्हें एक ऋषि मिले। उन्होंने राजा को फटकारा कि तुम ब्राह्मण की स्त्री ढूँढ़ने के लिये तो वन में चले आए, पर क्या तुम अपनी उस रानी को भूल गए जिसे तुमने स्वयं वन में निकाल दिया था। ब्राह्मण की वह पत्नी तो दुःशील थी, पर रानी धर्मशीला थी। दूसरों को तुम सद्धर्म में लगाते हो पर स्वयं उससे विचलित होते हो। यह सुनकर राजा लज्जित हो गया।

उसे ऋषि से ही पता चला कि ब्राह्मणपत्नी को उत्पलावती का कोई राक्षस हर ले गया था। संभवतः यह उत्पलावती गान्धार की पश्चिमी राजधानी पुष्कलावती का दूसरा नाम हो। राजा ने राक्षस का पता लगाकर उसे ब्राह्मण-पत्नी को हर लाने का कारण पूछा। राक्षस ने जो उत्तर दिया उससे ज्ञात होता है कि मार्कण्डेय पुराण के लेखक ने उस युग के लिये राक्षसपने की एक नई परिभाषा दी है।

राक्षस ने कहा—"हे राजन्, जो मनुष्य को खा जाते हैं वे कोई दूसरे राक्षस होंगे। हम वैसे नहीं हैं। हम केवल सुकृत या पुण्य का फल ले लेते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं। जो पुरुष या स्त्री हमारा मान या अपमान करता है उसके स्वभाव का हम अपहरण कर लेते हैं। हम जन्तुखादक या जीवों को खाने वाले नहीं हैं। जिनकी शान्ति या क्षमागुण को हम ले लेते हैं वे क्रोधी बन जाते हैं। जिनके बुरे स्वभाव को हम ले लेते हैं वे गुणवान् बन जाते हैं। हमारे अपने ही घरों में अप्सराओं जैसी रूपवती स्त्रियाँ मौजूद हैं। उनके रहते हुए मानुषी स्त्रियों में हमें आसक्ति कहाँ ?[१] वह ब्राह्मण यज्ञों में रक्षोघ्न मन्त्र पढ़कर हमारा उच्चाटन करता था और हमें भूखों मारता था। इसलिये हमने पत्नी के बिना उसे अधूरा बना दिया है जिससे वह यज्ञ के लायक न रह जाय।" यह बात सुनकर राजा का मन शोक से भर गया और उसे लगा कि मैं भी तो रानी के बिना अधूरा ही रह गया हूँ। ब्राह्मण के बहाने यह मेरी ही निन्दा कर रहा है। बिना पत्नी के मुझ पर बड़ा संकट आया है। राक्षस ने राजा से कहा—"हम आपके राष्ट्र में रहते हैं। कुछ कार्य की आज्ञा दीजिए।" राजा ने कहा—"तुम दूसरों के दुष्ट स्वभाव का परिवर्तन करते हो ऐसा तुमने कहा, तो इस ब्राह्मण-पत्नी का भी दुःशील अपनी शक्ति से दूर करो"। इस प्रकार घोर दुःशील से मुक्त हुई ब्राह्मणी ने राजा से कहा—"हे राजन्, अपने उस महात्मा पति से जो मेरा वियोग हुआ यह मेरे अपने कर्मों का फल है। राक्षस तो निमित्त मात्र है। राक्षस का दोष नहीं और न मेरे पति का है। यह मेरा ही दोष है कि मैंने अपने सुकृत का त्याग किया।" तब उस राक्षस ने ब्राह्मणी को पतिगृह में पहुँचा दिया।

घर लौट कर राजा शोक और चिन्ता में डूब गए और सोचने लगे कि अब क्या करूँ। तब उन्होंने उसी त्रिकालज्ञ मुनि के पास जाकर पूछा। ऋषि ने उत्तर में पत्नी की महिमा का बखान किया—मनुष्यों के धर्म अर्थ और काम का प्रबल कारण पत्नी है। विशेषतः धर्म का हेतु वही है। तुमने रानी को छोड़कर धर्म को छोड़ दिया। बिना पत्नी के मनुष्य किसी काम का नहीं रहता, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र वह किसी भी वर्ण का क्यों न हो। तुमने अपनी रानी का त्याग करके अच्छा नहीं किया। जैसे पत्नी के लिये पति को छोड़ना ठीक नहीं वैसे ही पति को पत्नी का त्याग अनुचित है।[२]

---

१ न वयं मानुषाहारा अन्ये ते नृप ! राक्षसाः ।
सुकृतस्य फलं यत्तु तदश्नीमो वयं नृप ! ॥
स्वभावञ्च मनुष्याणां योषिताञ्च विमानिताः ।
मानिताश्च समश्नीमो न वयं जन्तुखादकाः ॥
यदस्माभिर्नृणां क्षान्तिर्भुक्ता क्रुध्यन्ति ते तदा ।
भुक्ते दुष्टे स्वभावे च गुणवन्तो भवन्ति च ॥
सन्ति नः प्रमदा भूप ! रूपेणाप्सरसां समाः ।
राक्षस्यस्तासु तिष्ठत्सु मानुषीषु रतिः कथम् ॥ (मार्कण्डेय ७०।१६-१९)

२ पत्नी धर्मार्थकामानां कारणं प्रबलं नृणाम् ।
विशेषतश्च धर्मश्च सन्त्यक्तस्त्यजता हि ताम् ॥
अपत्नीको नरो भूप ! न योग्यो निजकर्मणाम् ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

राजा ने पश्चात्ताप पूर्वक कहा—"भगवन्, यह मेरे कर्मों का फल है कि उस अनुकूल रानी के प्रतिकूल बनकर मैंने उसका परित्याग कर दिया। उसके वियोग की ज्वाला मुझे जला रही है। मुझे ज्ञात नहीं कि वह अब कहाँ है।" ऋषि ने कहा—"उसे पाताल का नागराज अपने यहाँ ले गया है और उसने उसे अपनी नन्दा नाम की पुत्री के साथ रख दिया है।"

राजा अपने नगर को लौट आया। वहाँ उसकी उस ब्राह्मण से भेंट हुई जिसकी शीलवती स्त्री को राक्षस लौटा गया था। ब्राह्मण ने राजा से रानी को वापस लाने के लिए आग्रहपूर्वक कहा। राजा ने उत्तर दिया—"यदि वह फिर आ भी जाय तो मेरे प्रतिकूल रहकर दुःख का ही कारण बनेगी सुख का नहीं, क्योंकि उसकी मैत्री मेरे साथ नहीं है। हे विप्र! कुछ ऐसा यत्न करो कि वह मेरी वशगामिनी बन जाय।" इसके उत्तर में ब्राह्मण ने कहा कि—"हाँ, मित्रविन्दा नामक एक ऐसी इष्टि है जो मैत्री की इच्छा रखने वाले लोग किया करते हैं। जिनमें प्रीति न हो उन दो में प्रीति जोड़ने वाली यह इष्टि है। विशेषतः पत्नी और पति में परस्पर प्रेम उत्पन्न करने वाली है।" यह कहकर ब्राह्मण ने राजा को वह इष्टि कराई और इस प्रकार राजा का मैत्रीभाव रानी को प्राप्त हुआ।

इसका भाव यह है कि सती स्त्री को आत्मानुकूल बनाने के लिए उसमें मैत्रीभाव का आरोपण करना चाहिए। पत्नी के साथ मैत्री या सख्य सम्बन्ध जोड़ना यही इस कहानी का उद्देश्य है। गुप्तयुग की स्वर्ण संस्कृति में जीवन के इस महँगे सत्य का अनुभव कर लिया गया था। कालिदास ने रघुवंश में अज और इन्दुमती के सम्बन्ध का वर्णन करते हुए इस सत्य की ओर संकेत किया है :—

> गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ।
> करुणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वां वद किन्नु मे हृतम्॥
>
> (रघुवंश ८।६८)

अर्थात् तुम मेरे लिए गृहिणी थीं, सचिव थीं, सखी थीं और ललित कलाओं के अभ्यास में प्रिय शिष्या थीं। पत्नी के साथ यही घनिष्ठ सख्य भाव यहाँ अभिप्रेत है।

जब रानी नागराज के यहाँ से लाई गई तो उसने मुदित होकर प्रेमपूर्वक अपने पति से कहा—'महाराज, मुझपर प्रसन्न होइए।' राजा ने उसका आलिंगन करके कहा—'प्रिये, मैं तो तुम पर प्रसन्न ही हूँ, फिर ऐसा क्यों कहती हो।' रानी ने कहा—'यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो इतना मेरे लिए और कीजिए। नागराज की पुत्री अपने पिता के शाप से मूक हो गई है। उसे पुनः वाग्वैभव प्रदान कराइए।' राजा ने ब्राह्मण से उसका उपाय पूछा। ब्राह्मण ने कहा—'हाँ,

---

> ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वैश्यशूद्रोऽपि वा नृप॥
> त्यजता भवता पत्नीं न शोभनमनुष्ठितम्।
> अत्याज्यो हि यथा भर्ता स्त्रीणां भार्य्या तथा नृणाम्॥ (मार्कण्डेय ७१।९-११)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इसके लिए भी सारस्वती इष्टि उपाय है।' तब उस ब्राह्मण ने सारस्वतसूक्त का जाप किया और उससे नागराज की कन्या को पुनः वाक्शक्ति प्राप्त हो गई और उसने अपनी सखी को वरदान दिया कि तुम्हारा पुत्र मन्वन्तराधिप मनु होगा। वही उत्तम का पुत्र औत्तम नामक तीसरा मनु हुआ। इस रोचक उपाख्यान के मूल में पति-पत्नी के सुन्दर सम्बन्ध निर्माण करने की कल्पना है। पति को चाहिए कि पत्नी के साथ मैत्री भाव बनाए और पत्नी को उचित है कि पति के प्रति अपनी वाणी को मधुर और सरस रक्खे।

अध्याय ७४ में स्वराष्ट्र नामक राजा की कथा है, जिसका पुत्र तामस नामक चौथा मनु हुआ।

अध्याय ७५ में दुर्गम नामक राजा की रेवती नामक स्त्री से रैवत नामक पाँचवें मनु के जन्म की कथा है।

अध्याय ७६ में विक्रान्त राजा के पुत्र चाक्षुष मनु के जन्म की कथा है जिन्होंने आत्मशुद्धि के लिये तपश्चर्या का मार्ग ग्रहण किया। इन कहानियों को पढ़ने से ऐसा जान पड़ता है कि पहले सात मनुओं के नामों की सूची पुराण लेखक के सामने थी। उसी पर विस्तार की कुछ रंगत चढ़ाने के लिये नई-नई विचित्र कहानियों का एक खोल चढ़ा दिया गया। इन कहानियों का उद्देश्य तो स्पष्ट है, किन्तु प्राचीन चन्द्र या सूर्यवंशों से या उनके राजाओं से इन आख्यानों का कोई पुराना सम्बन्ध न था। स्पष्ट ही ये नई रचनाएँ ज्ञात होती हैं। मित्रविन्दा इष्टि वाली औत्तम मनु की कहानी में तो फलश्रुति भी दी हुई है, जिससे उसका नव निर्माण सूचित होता है (७३।४०-४१)।

सातवें वैवस्वत मनु

सातवें वैवस्वत मनु की कथा अध्याय ७७ से ८० तक कही गई है। त्वष्टा की पुत्री संज्ञा का विवाह सूर्य से हुआ। उससे दो पुत्र हुए। एक वैवस्वत मनु दूसरे यम। एक कन्या यमुना का जन्म भी संज्ञा से हुआ। सूर्य का तेज अत्यधिक था। उसे न सह सकने के कारण संज्ञा दुःखी रहती थी। उसने अपने पिता प्रजापति त्वष्टा के घर जाने का निश्चय किया और अपने स्थान में अपना छायामय शरीर रखकर उससे कहा कि तुम बच्चों के साथ और सूर्य के साथ मेरे समान ही व्यवहार करना और पूछने पर भी मेरे जाने की बात न कहना। छाया ने उसे ऐसा ही आश्वासन दिया।

संज्ञा अपने पिता के घर जब कुछ दिन रह चुकी तो त्वष्टा ने कहा—'तुम्हारे धर्म का लोप हो रहा है। बन्धु-बान्धवों के यहाँ स्त्रियों का अधिक दिन रहना ठीक नहीं। तुम मेरे लिये पूज्य हो और मैं तुमसे प्रसन्न भी हूँ, पर तुम्हारा पतिगृह में जाना ही ठीक है।' संज्ञा पिता की बात मानकर वहाँ से चल दी पर सूर्य के यहाँ न जाकर वह उत्तर कुरुदेश में चली गई और घोड़ी का रूप धारण करके तप करने लगी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इधर सूर्य ने छाया में दो पुत्र और एक पुत्री उत्पन्न की। छाया का व्यवहार मनु और यमयमी के साथ अच्छा न था। इस पर सूर्य ने उससे कारण पूछा और बात खुल गई। तब सूर्य त्वष्टा के यहाँ गए और संज्ञा के बारे में प्रश्न किया। त्वष्टा ने कहा—'हाँ, वह आई अवश्य थी पर मैंने तो उसे आपके ही यहाँ भेज दिया।' तब सूर्य ने ध्यान धरकर देखा और संज्ञा को उत्तर कुरुदेश में अश्वा के रूप में तप करते हुए पाया। संज्ञा की यह इच्छा थी कि मेरे पति किसी प्रकार सौम्य रूप को प्राप्त हो जायँ। इस लक्ष्य को जानकर सूर्य ने प्रजापति त्वष्टा से कहा—'आप मेरे तेज का तक्षण कर दीजिए।' विश्वकर्मा ने संवत्सर रूपी खराद पर चढ़ाकर सूर्य के अधिक तेज को छाँट दिया जिससे सूर्य का रूप अत्यन्त सुन्दर और दर्शनीय बन गया। यह देखकर देवता और देवर्षि सूर्य की स्तुति करने लगे—'ऋक् यजु साम रूप त्रयीविद्या के अधिष्ठाता आपको प्रणाम है। आप समस्त सामगानों के स्रोत, ज्ञान के धाम और तमका नाश करने वाले हैं। आप शुद्ध ज्योतिस्वरूप हैं। आप सबके कारण हैं। प्रकाश आपका रूप है। संध्या, दिवस और रात्रि के भी आप ही कारण हैं। आपके भ्रमण से चराचर सहित समस्त ब्रह्माण्ड भ्रमण करता है। आपकी रश्मियों से स्पृष्ट हो कर सब पवित्र बनते हैं। ऋचाएँ यजु और साम आपके शरीर से उत्पन्न होते हैं। आप ही ऋङ्मय यजुर्मय और साममय होने के कारण त्रयीमय हैं। पर और अपर ब्रह्म का रूप आप ही हैं। मूर्त और अमूर्त, स्थूल और सूक्ष्म आपके ही रूप हैं। काल आपका स्वरूप है जो सबके क्षय का कारण है। हे भगवन्, आप प्रसन्न होकर अपने तेज को शान्त कीजिए' (७८।२-१४)।

सूर्य का यह स्तोत्र शुद्ध वैदिक पृष्ठभूमि से लिया गया है। ज्योति और तम दोनों का विधाता सूर्य ही है। सूर्य की गति से ब्रह्माण्ड को गति प्राप्त होती है। विश्व में प्राण का जो स्पन्दन है उसका कारण सूर्य ही है। ऋग्वेद में गतितत्त्व को रजस् या अक्षर कहा है। यहाँ दो प्रकार के रजस् हैं, एक कृष्ण रजस् दूसरा शुक्ल रजस्—

आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्मयेन सविता रथेन देवो याति भुवनानि पश्यन्
(ऋग्० १।३५।२)

रात्रि के गर्भ में विलीन हुए सूर्य को धक्का देकर पुनः प्रकट करने वाली शक्ति शुक्ल रजस् है और उसे ही पुनः तम की ओर ले जाने वाला वेग कृष्ण रजस् है। शुक्ल और कृष्ण का द्वन्द्व ही अमृत और मृत्यु का जोड़ा है। इस द्विविरुद्ध भाव से ही विश्वरचना संभव हुई है।

इस स्तोत्र में सूर्य को त्रयीविद्या का पर्याय कहा है। ऋक्-यजुः साम का सम्मिलित रूप सूर्य है। वस्तुतः यह वैदिक तत्त्व ज्ञान का मूलभूत दृष्टिकोण था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विश्व की प्रत्येक रचना में सूर्य की ही शक्ति है। वही सूर्य की छाया है। उसका जो व्यास या विष्कम्भ या विस्तार है वह ऋक् कहा जाता है। उस पिण्ड का जो घेरा या मण्डल है उसे साम कहते और मण्डल का जो केन्द्र है उसे यजुमूर्ति कहा जाता है। केन्द्र के भीतर जब गति और आगति का स्पन्दन प्रारम्भ होता है तभी प्रत्येक वस्तु का स्वरूप बनता है। गति और स्थिति रूप याजुष पुरुष ही सूर्य का सच्चा रूप है। यही वह रस है जो वस्तु के मण्डल में भरा रहता है। रस का अभिप्राय द्रुति भाव या गति है। ऋक्-यजु-साम की यह व्याख्या प्राचीन ब्राह्मण ग्रन्थों को इष्ट थी—

ऋग्भ्यो जातां सर्वशो मूर्तिमाहुः सर्वा गतिर्याजुषी हैव शश्वत्।
सर्वं तेजः सामरूप्यं ह शश्वत् सर्वं हेदं ब्रह्मणा हैव सृष्टम्॥

तैत्तिरीय ब्रा० ३।१२।९।१; गोपथ १।२।६

अर्थात् मूर्ति या पिण्ड ऋग्वेद से, गति यजुर्वेद से और तेजोमण्डल सामवेद से उत्पन्न होता है। प्रत्येक वृत्त या चक्र में इन तीनों का होना अनिवार्य है। तभी उसका स्वरूप बनता है। केन्द्र, व्यास और परिधि कहें या यजु, ऋक् और साम कहें एक ही बात है। यही त्रयीविद्या है। (त्रयी वै विद्या ऋचो यजूंषि सामानि)। त्रयीविद्या को ही यज्ञ कहते हैं (सैषा त्रयीविद्या यज्ञः, शतपथ १।४।४।३)। इसीलिये सूर्य को यज्ञनारायण कहा जाता है। त्रयीविद्या त्रिक का ही दूसरा नाम है। भारतीय धर्म, दर्शन, वैदिक और पुराणतत्त्व सबका मूल त्रयीविद्या या त्रिक है। वेद में अव्यय पुरुष, अक्षर पुरुष और क्षर-पुरुष, पुराणों में ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूपी त्रिदेव एवं दर्शन में सत्व, रज, तम नामक तीन गुण त्रिक या त्रयीविद्या के ही रूप हैं। ये ही भूर्भुवः स्वः नामक तीन व्याहृतियाँ हैं। भारतीय साहित्य में त्रिकों की अनेक समानान्तर सूचियाँ हैं। मन, प्राण, वाक् एवं प्राण, अपान, व्यान त्रिक या त्रयीविद्या के ही रूप हैं। जहाँ प्राण या जीवन की अभिव्यक्ति है वहीं प्रत्येक चेतन केन्द्र में त्रयीविद्या का स्पन्दन या संस्थान समझना चाहिए। जैसे विराट् जगत् में सूर्य है वैसे ही शरीर में प्रत्येक घटक कोश है, जिसमें गतितत्त्व की अभिव्यक्ति होती है। गति, आगति और स्थिति इन तीनों के मिलने से गति का जन्म होता है। स्थिति के धरातल पर गति और आगति का मर्यादित या नियमित स्पन्दन यही जीवन है। जिस संस्थान में स्थिति तत्त्व या केन्द्र की अभिव्यक्ति है उसी का निश्चित स्वरूप विकसित होता है। जहाँ केन्द्र है उसे ही सत्य कहते हैं। सूर्य के नियमित संस्थान में एक निश्चित केन्द्र है जो उसकी समस्त गति को नियन्त्रित रखता है। इसलिये सूर्य को लोक में सत्यनारायण भी कहा जाता है।

तद् यत् तत्सत्यं त्रयी सा विद्या, शत० ९।१।१८।

कहा है कि प्राचीन ऋषि सृष्टि की व्याख्या समझाने के लिये सूर्य की ओर देखते और कहते थे—सैषा त्रय्येव विद्या तपति (शत० १०।५।२।२)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस प्रकार त्रयीविद्या या त्रिक का अपरिमित विस्तार भारतीय साहित्य में पाया जाता है। सूर्य उस विद्या का सर्वोत्तम प्रतीक है।

खराद पर चढ़ाकर सूर्य के तेज का तक्षण किये जाने की कल्पना का क्या रहस्य है? इसका तात्पर्य यह है कि सूर्य का वर्तमान स्वरूप यज्ञमय है। यज्ञ वह है जिसमें देवतत्त्व और अमृततत्त्व का आविर्भाव और उपलब्धि होती है। सूर्य का वर्तमान स्वरूप शक्ति का ही नियमित रूप में आविर्भाव है। उसमें प्रकाश और ताप की जो रश्मियाँ हैं उनका क्रम, स्वरूप और गति सुनिश्चित है। इन्हें ही इन्द्र की गौएं कहते हैं जो प्रतिक्षण या प्रतिदिन ब्रह्माण्ड में विचरण करती हैं। एक सूर्य क्या ऐसे कोटानुकोटि सूर्य हैं और उन सब की रश्मियों का ऐसा ही नियम है।

किन्तु सूर्य के निर्माण से पूर्व की जो अवस्था थी उसमें शक्ति का धू-धू करता हुआ आसुरी रूप था। उसमें शक्ति की तरंगें व्यथा से भरी हुई थी। वे परस्पर विरोधभाव में प्रवृत्त होती थीं। उन्हें किसी केन्द्र के चारों ओर नियमित या दृढ़ बनाने वाले यज्ञ का विकास तब तक नहीं हुआ था। यज्ञ या सत्य का विकास ही अव्यवस्थित विश्व में व्यवस्थित सूर्य का जन्म है। सूर्य के जन्म से पूर्व की अवस्था उन नीहारिकाओं से बनी थी जिनमें सब कुछ कुहासा या धुआँ जैसा व्याप्त रहता है और सूर्य जैसी अग्नि का समृद्ध तेज प्रकट नहीं होता। ऋग्वेद में अग्नि की प्रशंसा में बहुत ही ठीक कहा है :—

आविरभवत् सूर्यो नॄन्, १।१४६।४

अर्थात् विश्व का मूलभूत अग्नितत्त्व ही सूर्य के रूप में प्रकट हुआ है। समिन्धन या दहकना या प्रचण्ड रूप से जलना यही सूर्य का लक्षण है। समिन्धन के कारण ही सूर्य को इन्द्र भी कहते हैं; लेकिन सूर्य के बाहरी आग्नेय रूप से हमें भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए। इस आग्नेय रूप के पीछे सूर्य की देवतात्मा शक्ति है। जो चैतन्य तत्त्व विश्व का हेतु है वही सूर्य का है। इसीलिए सूर्य को देव कहा जाता है। सूर्य ब्रह्म या परमात्म-शक्ति का सर्वोत्तम प्रतीक है। वह आत्ममूर्ति है। विश्व साहित्य में सूर्य से बढ़कर ब्रह्म का कोई उत्तम प्रतीक नहीं है—

त्वमेवं ब्रह्मणो रूपं परश्चापरमेव च।
मूर्तामूर्तस्तथा सूक्ष्मः स्थूलरूपस्तथा स्थितः॥
(मार्कण्डेय ७८।१३-१४)

जब त्वष्टा ने सूर्य का तक्षण किया तो उसका यही अर्थ है कि जो सूर्य से पूर्व की अवस्था थी उसके भीतर से यज्ञमय सत्यात्मक सूर्य का विकास हुआ जिसमें गतियों के समस्त स्वरूप निश्चित हैं। इस प्रकार के सूर्य के स्वरूप निर्माण करने वाली जो शक्ति त्वष्टा के पास है उसका नाम संवत्सर है। यहाँ स्पष्ट कहा है कि संवत्सर की खराद पर चढ़ाकर ही विश्वकर्मा ने सूर्य के रूप को छाँटा (७७।४२)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संवत्सर काल की संज्ञा है। विश्व की रचना को नियमित करने में काल ही मुख्य है। काल का नियमित प्रवाह सूर्य की नियमित गति है। संवत्सर, काल, सूर्य और प्रजापति एक दूसरे के पर्याय हैं। कहा है कि प्रजापति ने जब सृष्टि रचने की इच्छा की तो वे स्वयं संवत्सर बन गए और जितने चराचर प्राणी हैं सबको संवत्सर की कुक्षि में रख दिया। सब पर संवत्सर का अनुशासन है और सबको वसन्त, ग्रीष्म और शरद् रूपी उसके तीन चरणों के साथ चलना ही पड़ता है। यही चक्रवत् गति जीवन है।

सूर्य के स्तोत्र के प्रसंग में आगे कहा है कि त्वष्टा ने सूर्य का जो तक्षण किया उसके १५ भाग हुए। उन १५ से रुद्र का त्रिशूल, विष्णु का चक्र, अग्नि की शक्ति, कुबेर का विमान और विश्व के जितने आयुध और शक्तियाँ हैं बनीं। उस तेज का सोलहवाँ भाग स्वयं सूर्य में प्रतिष्ठित है :—

तत्तेजः पञ्चदशधा शातितं विश्वकर्मणा।
ततश्च षोडशं भागं बिभर्ति भगवान् विभुः॥

(७८।२०)

वस्तुतः यहाँ वेद के षोडषी पुरुष की ओर संकेत है।[1]

आगे कथा है कि सूर्य अश्व का रूप रखकर उत्तर कुरुदेश में गए और वहाँ उन्होंने अश्वा के रूप में संज्ञा को देखा और उससे दो अश्विनी कुमार एवं रेवन्त को जन्म दिया। संज्ञा पति के नये रूप से प्रसन्न हुई।

संज्ञा, छाया, अश्व, अश्वा, अश्विनी ये सब वैदिक सृष्टि विद्या के प्रतीक थे जिन्हें कथा के रूप में ढाला गया (दे० बृहद्देवता ६।१६२-७७)। ऊपर कहा जा चुका है कि सूर्य आग्नेय पिण्ड की संज्ञा नहीं किन्तु उसके मूल में अन्तर्निहित विज्ञानमय जो चैतन्य है वही सूर्य या सविता देवता है। विज्ञान के साथ आनन्द भी जुड़ा हुआ है। पंचकोशों में आनन्द और विज्ञान मुक्ति साक्षी हैं। वे ही अमृत के रूप हैं। उन्हीं की शक्ति संज्ञा या चिति (कांशसनेस) को कहते हैं। इनके अतिरिक्त

---

१. यस्मान्न जातः परोऽन्योऽस्ति य आविवेश भुवनानि विश्वा।
प्रजापतिः प्रजया संरराणस् त्रीणि ज्योतींषि सचते स षोडशी॥ यजु० ८।३६, ३२।५

यजु ८।३५ में छः वार इन्द्र को षोडशी कहा गया है (इन्द्राय त्वा षोडशिने)। जिसमें अव्यय की पाँच कला, अक्षर की पाँच कला, क्षर की पाँच कला और स्वयं प्रजापति की सोलहवीं कला हो उसे षोडशी पुरुष कहते हैं। अव्यय की पाँच कलाएँ अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय ये पाँच कोश हैं। अक्षर की पाँच कलाएँ पंचप्राण हैं। क्षर की पाँच कलाएँ पंचभूत हैं। प्रजापति स्वयं सोलहवीं कला है जिसे अमृतात्मा या गूढ़ोत्मा भी कहते हैं। प्रजापति जिस प्रजा को वनाता है उसमें ये सोलह कलाएँ अवश्य रहती हैं, अर्थात् वह षोडशी पुरुष का रूप है (षोडशकलं वा इदं सर्वं)। जो रचना में सीमित हो जाता है वह १५ कलाओं का क्षेत्र है और जो उसका आधार है वह अव्यक्त असीम आत्मा सोलहवीं कला है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अन्नमय और प्राणमय कोश नीचे की या स्थूल कोटि में हैं। इन्हें मर्त्य कहते हैं। बीच में मनोमय कोश है। जब मन विज्ञान और आनन्द के साथ जुड़ा रहता है तब वह अमृत और मुक्ति-साक्षी होता है। वही मन जब अन्न और प्राण के साथ युक्त होता है तो वह मर्त्य या सृष्टि-साक्षी बन जाता है। इस प्रकार सूर्य में अमृत और मर्त्य इन दोनों सृष्टियों का स्रोत है। इसी के लिए कहा है :—

निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।

आनन्द और विज्ञान का नाम जहाँ संज्ञा है वहीं अन्न और प्राण का संकेत छाया है। धूप और छाँह दोनों से मिली सृष्टि सूर्य की रचना है। अमृत का संकेत आतप या धूप और मर्त्य का संकेत छाया या छाँह है। दृश्य और स्थूल या छाया को जब हम देखते हैं तो यह निश्चित प्रमाण है कि उसके मूल में अव्यक्त अमृत सृष्टि है जिसका प्रतीक आतप है। छाया और आतप के दृष्टान्त से ही ब्रह्मवेत्ता लोग सृष्टि के द्वन्द्व की व्याख्या किया करते हैं।[1]

संज्ञा ज्ञान या बुद्धितत्त्व का नाम है। छाया क्रियाशक्ति का प्रतीक है। बुद्धि या ज्ञानशक्ति के अनुसार ही क्रिया शक्ति होती है। दोनों सूर्य या सविता के दो रूप हैं।

बुद्धि या ज्ञान के अनेक नाम हैं। मनस्तत्त्व या चितितत्त्व इसी के पर्याय हैं। मनस्तत्त्व को ही मनु कहा जाता है। सूर्य का वैदिक नाम विवस्वान् भी है क्योंकि यह उस यज्ञ रूपी वस्त्र को बुनता है जिसके सात तन्तु या धागे हैं। मन ही सप्त होता यज्ञ का विधान करने वाला है। प्रत्येक यज्ञ अपनी सृष्टि का वस्त्र है। ये सात धागे कौन से हैं? मन, प्राण और पंचभूत इन सात तन्तुओं से ही प्रत्येक यज्ञ का वितान होता है। ये ही सप्त होता है। इन्हीं के लिये मनु अपनी आहुति देते हैं।[2] मनस्तत्त्व ही प्रत्येक यज्ञ का यजमान है। वही अपनी शक्ति से प्राण और पंचभूतों का विकास करता हुआ इस शरीररूपी वस्त्र को बुनता है। विवस्वान् सूर्य की यह यज्ञमयी प्रवृत्ति ही वैवस्वत मनु का रूप है। मन, प्राण और पंचभूत इनका क्रमिक अन्तर या उपभोग प्रत्येक प्राणी में होता रहता है। येही सात मन्वन्तर हैं। ये सातों एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। सूर्य की सप्त रश्मियों के समान इनकी सदा सत्ता है। काल का कोई क्षण ऐसा नही जिसमें सात मन्वन्तरों का विधान न हो।

---

१. ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके गुहां प्रविष्टौ परमे परार्धे।
छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः॥
(कठोपनिषत् ३।१)

२. येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्त होतृभिः।
त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये॥
(ऋग्वेद १०।६३।७)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संज्ञा या बुद्धितत्त्व जैसे मन या ज्ञान शक्ति के साथ सम्बद्ध है वैसे ही प्राण या क्रियाशक्ति छाया के साथ। जो छाया मात्र है उसे ही आतप का सवर्ण या सदृश कहा जाता है। जिस प्रकार विवस्वान् सूर्य के पुत्र वैवस्वत मनु हैं वैसे ही उनकी छाया से जन्म लेने वाले सावर्णि मनु हैं जो आठवें मनु कहे जाते हैं। आठवें से लेकर चौदहवें मनु तक सभी सावर्णि संज्ञक हैं, क्योंकि वे सब सूर्य के मर्त्यरूप या क्रियाशक्ति या छाया के प्रतीक हैं।

विवस्वान् सूर्य से वैवस्वत मनु का जन्म हुआ। पहले राजा वैवस्वत मनु हुए। नियमों का विधान करने वाला राजा या सम्राट् होता है। जो राजा है उसी की शक्ति प्रजाओं में आती है। राजा सूर्य है तो प्रत्येक जन उस सूर्य की एक-एक रश्मि हैं। विश्व के लिये सूर्य द्वारा स्थापित जो विधान है वही वैवस्वत मनु के द्वारा सब प्रजाओं के लिये सर्वत्र ओत-प्रोत हो गया है। राष्ट्रों के विधान उसी मूलभूत विश्वविधान के अंग हैं।

कथा में आया है कि सूर्य की संज्ञा में तीन सन्तति हुईं—मनु, यम और यमी। मनु मन या बुद्धि का प्रतीक है तो यम यमी प्राण-अपान के प्रतीक हैं। इसी प्रकार संज्ञा के अश्वा रूप से दो अश्विनीकुमार और एक रेवन्त हुए। अश्व और अश्वा भी महत्त्वपूर्ण प्रतीक हैं। गतितत्त्व की संज्ञा अश्व है। अश्नोति व्याप्नोति गच्छति इत्यश्वः। विराट् विश्व में आदित्य या सूर्य की संज्ञा अश्व है—

असौ वा आदित्यो अश्वः (तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।९।२३।२)

अथ योऽसौ सूर्यः तपति एषोऽश्वः (ऐतरेय० ६।३५)

गतितत्त्व एवं अग्नितत्त्व समानार्थक हैं। अतएव अग्नि को भी अश्व कहा जाता है—

अग्निरेष यदश्वः (शतपथ ६।३।३।२२)। देवतत्त्व शक्ति का ही रूप है एवं अश्व को देववाहन कहा जाता है। अग्नि अश्व या गति के रूप में देवों का प्रत्येक संस्थान में आवाहन करता है—

अश्वो न देववाहनः। अश्वो ह वा एष अग्निः भूत्वा देवेभ्यो यज्ञं वहति (शतपथ १।४।१।३)। अग्नि एवं उसी का रूपान्तर सूर्य दोनों ही अश्व हैं। जितनी गति या स्पन्दन है सबका साधन अग्नि है। सूर्यरूप अश्व के मेध से विश्व की रचना और अस्तित्व संभव हो रहा है। या इसको यों स्पष्ट समझना चाहिए कि प्रत्येक भूत संस्थान को जिसे शरीर कहते हैं चलाने के लिए कुछ शक्ति चाहिए। वह शक्तितत्त्व ही अश्व है। उसकी उपलब्धि ही अश्वमेध है। मानवी शरीर में इस प्रकार की अश्वशक्ति प्रकृति ने अनिवार्यतः रक्खी है जो प्राणापान या श्वास-प्रश्वास के द्वारा भौतिक देह को चलाती है। समस्त शरीर की दृष्टि से यह अश्व एक है, पर उसी की शक्ति के सैकड़ों सहस्रों अंश हो जाते हैं और उन अंशों से ही शरीर के एक-एक घटक कोश का स्पन्दन एवं एक-एक अंग का संचालन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संभव होता है। प्राणि-शरीर की रचना में अश्वमेध प्रकृति का विचित्र विधान है। सूर्य से सम्बन्धित यह अश्वमेध न होता रहे तो प्राणि-शरीर एक क्षण के लिये भी जीवित नहीं रह सकता।

सूर्यरूपी अश्व की शक्ति ही अश्वा है जिसके साहचर्य से प्राणापान रूप दो अश्विनिकुमार जन्म लेते हैं। वस्तुतः सूर्यरूपी अश्व की एक संज्ञा दध्यङ्ङाथर्वा भी है। जिसके पास अथर या आज़र (प्राचीन फारसी में अग्नि की संज्ञा) है वही अथर्वा है। दध्यङ् या दधीचि उसे कहते हैं जो दधि तत्त्व अर्थात् पंचभूतों का निर्माण करता है। अग्नि की शक्ति से ही भौतिक रचना होती है। यही दध्यङ् अथर्वा रूपी अश्व का कार्य है। मूल वैदिक तत्त्व का कथाओं के रूप में विस्तार हुआ है। उसी से दधीचि की कथा निकली है। अश्विनिकुमारों को दैवी वैद्य कहा गया है जिन्हें इन्द्र से सोम या मधुविद्या का रहस्य प्राप्त हुआ था। शरीर में जो प्राण-अपान या श्वास-प्रश्वास की क्रिया है उसी से सोम या मधु का भक्षण किया जाता है। शरीर में हम जो अन्न लेते हैं उस सबको प्रकृति मधु या फल-शर्करा के रूप में परिवर्तित करती है। श्वास-प्रश्वास के द्वारा वही मधु भस्म होकर शरीर को ईन्धन या संचालन शक्ति प्रदान करता है। यही प्रत्येक शरीर में अश्विनिकुमारों का रूप है। उनका भी मूल हेतु सूर्य का ब्रह्माण्डव्यापी स्पन्दन ही है।

बड़वारूपी संज्ञा की तीसरी सन्तान को रेवन्त कहा गया है जो यक्षों का अधिपति है (गुह्यकाधिपतित्वे च रेवन्तोऽपि नियोजितः, ७८।३१)। सूर्य के पुत्र इस रेवन्त का क्या अर्थ है? रेवन्त सदा अश्व पर आरूढ रहता है। मृगया में इसे अभिरुचि है। उसी के लिये यह कुत्तों को साथ रखता है। यह सब भी प्रतीकात्मक भाषा है। इन्द्रियों के साथ रमण करनेवाला इन्द्रियानुगामी मन ही रेवन्त है। विज्ञान या बुद्धिरूपी सूर्य ही इसकी सवारी का अश्व है। मन की बिखरी हुई जो चंचल वृत्तियाँ हैं वे ही मृग हैं जिन्हें प्राप्त करने के लिये यह प्रतिक्षण शब्द करते हुए अपने कुत्तों को छोड़ता रहता है। विभिन्न मनोभाव ही ये दुष्ट कुत्ते हैं।

संज्ञा ने जिस छाया का निर्माण किया था उससे भी सावर्णि, शनैश्चर और तपती ये तीन सन्तानें हुईं। इनमें सावर्णि मन की इच्छा शक्ति है जो बुद्धितत्त्व के अनुसार प्रवृत्त होती है, किन्तु बुद्धि विज्ञान है और मन प्रज्ञान है। विज्ञान निश्चयात्मक, एक और अखण्ड होता है। उसे ही संकल्प कहते हैं। इसके विपरीत प्रज्ञान परिवर्तनशील अनेक और विकल्पात्मक होता है। संकल्प और विकल्प का भेद ही विज्ञान और प्रज्ञान का अन्तर है। प्रज्ञानरूपी मन के प्रभाव में आया हुआ जो प्राण का मन्दगामीरूप है वही शनैश्चर है। कभी कभी क्रियाशील हो उठने की उसकी जो प्रवृत्ति है वही तपती है। इस प्रकार वैदिक मनु विद्या और सूर्य विद्या के प्रतीकों को ही पुराणों में उपबृंहित किया गया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है। उसी का एक नमूना मार्कण्डेय पुराण का यह प्रसंग है। मनु तत्त्व, बुद्धि और सूर्य वस्तुतः एक ही अव्यक्त ब्रह्म के व्यक्तरूप हैं। इसके लिये मनुस्मृति का यह श्लोक सदा स्मरण रखना चाहिए—

> एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम् ।
> इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम् ॥
> (मनु० १२।१२३)

संवत्सर का ही दूसरा नाम है सृष्टि। संवत्सर के मध्य में सूर्य प्रतिष्ठित है। सूर्य के मध्यबिन्दु का नाम मनु है। अव्यय अमृतात्मा पुरुष का आधार विज्ञानात्मक मन है। मनु और मन दोनों अभिन्न हैं। वह मनु जिस समय पृथिवी के क्षर तत्त्व की ओर झुकता है तब उसे अग्नि कहते हैं। वह जब अक्षर पुरुष या अन्तरिक्ष के साथ रहता है तब उसे प्राण कहते हैं। वह जब सूर्य के अव्यय पुरुष या विज्ञान के प्रति अभिमुख होता है तब उसे इन्द्र कहते हैं। जब उसमें इन तीनों की समष्टि होती है तब उसे मनु प्रजापति कहते हैं। त्रिलोकी की दृष्टि से मनु प्रजापति हैं। त्रिलोकी से बहिर्भूत, अव्यय के अनुगत मनु का जो अपना असंग रूप है वह शाश्वत ब्रह्म कहा जाता है। इन्हीं पाँचों का ऊपर के श्लोक में संकेत है। एक मनु तत्त्व का ही सहस्रधा विकास होता है। वेद की अहर्गण विद्या पुराणों की मन्वन्तर विद्या है।

इस प्रकार पहले स्वायंभव मनु से लेकर सातवें वैवस्वत मनु तक की कथा इस पुराण में आई है।

देवी-माहात्म्य

अध्याय ८१ से ९३ तक का प्रकरण लोक में दुर्गा सप्तशती के नाम से प्रसिद्ध है। दुर्गा या देवी विश्व की मूलभूत शक्ति की संज्ञा है। विश्व की मूलभूत चिति शक्ति ही यह देवी है। देवों की माता अदिति इसी का रूप है। यही एक इडा, भारती, सरस्वती इन तीन देवियों के रूप में विभक्त हो जाती है। वेदों में जिसे वाक् कहा जाता है वह भी देवी या शक्ति का ही रूप है। वसु, रुद्र, आदित्य इन तीन देवों या त्रिक के रूप में उस शक्ति का संचरण होता है। ऋग्वेद के वागाम्भृणी सूक्त (१०।१२५) में इस शक्ति की महिमा का बहुत ही उदात्त वर्णन पाया जाता है—

मित्र और वरुण, इन्द्र और अग्नि, दोनों अश्विनिकुमार इनको मैं ही धारण करती हूँ। विश्वेदेव मेरे ही रूप हैं। वसु, रुद्र, आदित्य इस त्रिक का संचरण मेरे ही द्वारा होता है। ब्रह्मणस्पति, सोम, त्वष्टा, पूषा और भग इनका भरण करने वाली मैं हूँ। राष्ट्र की नायिका मुझे ही समझो। मैं ही वसुओं का संचय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करनेवाली वसुपत्नी हूँ। जितने यज्ञीय अनुष्ठान हैं सबमें प्रथम स्थान मेरा है। सबका ज्ञान मेरा स्वरूप है। देवों ने मुझे अनेक स्थानों में प्रतिष्ठित किया है। अपने अनेक आवास स्थानों में मैं अपने पुष्कलरूप से भर रही हूँ। जो देखता, सुनता और सांस लेता है वह मेरी ही शक्ति से अन्न खाता है। यद्यपि लोग इसे नहीं जानते पर वह सब मेरे ही अधीन हैं। यह सत्य है जो मैं तुमसे कहती हूँ। इसे सुनो। देव और मनुष्य दोनों को जो प्रिय है उस शब्द का उच्चारण मुझ से ही होता है। मैं जिसका वरण करती हूँ उसे ही उग्र, ब्रह्मा, ऋषि और मेधावी बना देती हूँ। रुद्र के धनुष में मेरी ही शक्ति प्रविष्ट है जो ब्रह्मद्रोही का हरण करती है। मनुष्यों के लिये संघर्ष का विधान करने वाली मैं ही हूँ। मैं ही द्यावा पृथिवी के अन्तराल में प्रविष्ट हूँ। पिता द्युलोक का प्रसव करने वाली मैं ही हूँ। मेरा अपना जन्मस्थान जलों के भीतर पारमेष्ठ्य समुद्र में है। वहाँ से जन्म लेकर मैं सब लोकों में व्याप्त हो जाती हूँ। मेरी ऊँचाई द्युलोक का स्पर्श करती है। झंझावात की तरह श्वास लेती हुई मैं सब भुवनों का आरम्भण या उपादान हूँ। द्युलोक और पृथिवी से भी परे मेरी महिमा है (ऋग्वेद १०।१२५)।

इस सूक्त में जिस वाक् तत्त्व का वर्णन है वह देवी का ही रूप है। प्रायः समझा जाता है कि ऋग्वेद में पुरुष संज्ञक देवों का प्राधान्य है किन्तु तथ्य यह है कि मित्र, वरुण, इन्द्र, अग्नि आदि जितने प्रधान देव हैं उन सबको जन्म देने वाली मूलभूत शक्ति देवमाता अदिति है। उसका वर्णन सैकड़ों प्रकार से ऋग्वेद में आता है। वही अमृत की अधिष्ठात्री और यज्ञों की विधात्री विश्वरूपा कामदुघा शक्ति है, जिसे गौ भी कहते हैं। द्यौ, अन्तरिक्ष और पृथिवी, माता, पिता और पुत्र, विश्वेदेव और पंचजन, देश और काल सब उस अदिति के ही रूप हैं। उसके वरदानों का कोई अन्त नहीं है। वह वाक् शक्ति मूलरूप में एकपदी या अपदी है, अर्थात् वह शुद्ध स्थिति तत्त्व है। स्थिति ही उसकी पर या अव्यक्त अवस्था है, किन्तु उसी से त्रिगुणात्मक विश्व जन्म लेता है जो उसका अवर या मूर्त रूप है।

वैदिक शक्तितत्त्व की यह परम्परा पुराणों में भी आई है। यह पुराण विद्या का एक महत्वपूर्ण अंग है। देवी भागवत के अनुसार, शक्तिः करोति ब्रह्माण्डम् (१।८।३७), अर्थात् शक्ति ब्रह्माण्ड को रचती है। वेदों में जिसे ब्रह्म कहा है वही परमात्मिका शक्ति है :—

ते वै शक्तिं परां देवीं परमाख्यां परमात्मिकाम् ।
ध्यायन्ति मनसा नित्यं नित्यां मत्वा सनातनीम् ॥

(देवी भागवत १।८।४७)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विष्णु में सात्विकी शक्ति, ब्रह्मा में राजसी शक्ति और शिव में तामसी शक्ति का रूप है। निर्गुण शक्ति ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव के रूप में सगुण रूप धारण करती है। शक्ति से युक्त होकर ही देवता अपना-अपना कार्य करते हैं। ब्रह्म का विवेक सर्वगत शक्ति का ही रूप है (एवं सर्वगता शक्तिः सा ब्रह्मेति विविच्यते)। ब्रह्मा में सृष्टि शक्ति, विष्णु में पालन शक्ति, रुद्र में संहार शक्ति, सूर्य में प्रकाशिका शक्ति, अग्नि में दाह शक्ति, वायु में प्रेरणा शक्ति ये सब आद्या शक्ति के ही रूप हैं। जो शक्ति से हीन है वह असमर्थ है। शिव भी शक्ति के बिना शव बन जाते हैं। यही सर्व शास्त्रों का निश्चय है।

पुराणों में इस शक्ति के अनेक नाम हैं। इसे ही अम्बिका, दुर्गा, कात्यायनी, महिषासुरमर्दिनी कहा गया है। प्रस्तुत देवीमाहात्म्य किसी विशिष्ट मेधावी मनस्वी की रचना है। इसमें अत्यन्त उदात्त शैली में देवी की महिमा का वर्णन किया गया है। गुप्त कालीन संस्कृत भाषा की जो नई शक्ति थी उसका विलक्षण परिचय इस माहात्म्य के कई स्तोत्रों में दिखाई पड़ता है। देवी के साथ जिन असुरों के युद्धों का यहाँ वर्णन है वे भी सहेतुक और प्रतीकात्मक संज्ञाएँ हैं।

यहाँ कई प्रश्नों का उत्तर समझ लेना आवश्यक है। एक तो यह कि देवी तत्त्व क्या है और परमेश्वर की शक्ति का वर्णन देवी रूप में क्यों किया गया। दूसरा प्रश्न यह है कि रात्रि, तम और असुरों का क्या स्वरूप और महत्त्व है और देवी से उनका संघर्ष क्यों होता है।

पहले प्रश्न का उत्तर इस प्रकार है—विश्व और उसकी प्रत्येक रचना एक-एक शाखा या टहनी के समान है जो पंचपर्वा होती हैं, अर्थात् प्रत्येक टहनी में पाँच पोरियाँ हैं। उनमें से तीन पोरियाँ दिखाई पड़ती हैं। ये हैं पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौ। इनसे ऊपर या इनके गर्भ में दो और हैं, उनमें पहली स्वयंभू और दूसरी परमेष्ठी कही जाती है। ये दोनों अव्यक्त हैं। दोनों ही तम का स्वरूप हैं, क्योंकि इनमें व्यक्त सृष्टि स्फुट नहीं है। इन्हें ही नासदीय सूक्त में 'तम आसीत् तमसा गूढमग्रे' कहा गया है। आरम्भ में तम के गर्भ में तम छिपा हुआ था, अर्थात् परमेष्ठी ने स्वयंभू का आवरण कर रक्खा था। स्वयंभू अज्ञेय अव्यक्त सृष्टि का मूल बीज या पितृतत्त्व है। परमेष्ठी उससे उत्पन्न महिमाभाव, महत्तत्त्व या माता है। इसे ही गीता में 'मम योनिर्महद् ब्रह्म' कहा है। स्वयंभू अग्नि है। परमेष्ठी सोम, जल या समुद्र है जिसे 'आपो नाराः' भी कहा जाता है। स्वयंभू बीजप्रद पितृतत्त्व है और परमेष्ठी मातृतत्त्व है। स्वयंभू सत्य और परमेष्ठी ऋत है। इन्हीं के दाम्पत्य भाव से सृष्टि होती है। स्वयंभू स्थिति तत्त्व है। उसका कोई चरित्र नहीं। परमेष्ठी गति तत्त्व है। वहाँ से ही सब चंचल गतियों और चरित्रों का विकास होता है। स्वयंभू देव है और उसी की शक्ति को देवी कहा जाता है। परमेष्ठी वरुण और अन्धकार का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रूप है। वहाँ ही सब असुरों का जन्म माना जाता है। असुरों और देवों के प्रतिद्वन्द्वी भाव की जन्मभूमि वही है। स्वयंभू अवर्णनीय तम है, वास्तविक रात्रि परमेष्ठी है। देवी, माता, रात्रि, सोम, असुर इन सबका संबंध परमेष्ठी से है।

मनुष्य शरीर में ही हम इन पाँचों को समझ सकते हैं। स्थूल शरीर पृथिवी रूप है। पंचप्राण युक्त या पंच इन्द्रियों का अनुगामी मन अन्तरिक्ष है। विज्ञानात्मिक बुद्धि सूर्य रूप है। बुद्धि से ऊपर महान् आत्मा है। वह परमेष्ठी का रूप है। महान् या विश्वात्मा ही परमेष्ठी है। उससे ऊपर या उसके भीतर अव्यक्त आत्मा या स्वयंभू है।

स्वयंभू गर्भित परमेष्ठी की शक्ति का ही नाम देवी है। उसीके विकास से सूर्य और पृथिवी का जन्म होता है। सूर्य और पृथिवी का तात्पर्य भौतिक पिण्ड नहीं, वे तो प्रतीक या संकेत मात्र हैं, किन्तु उनका अर्थ वे माता-पिता हैं जिनसे प्रत्येक प्राणी जन्म पाता है। द्यौः पिता, पृथिवी माता—यही जन्म होने का सूत्र है। इस प्रकार प्रत्येक रचना के दो माता पिता होते हैं। एक अव्यक्त या अमृत रूप जिन्हें स्वयंभू-परमेष्ठी का जोड़ा कहते हैं। दूसरे व्यक्त और मर्त्य जिन्हें सूर्य-पृथिवी का जोड़ा कहा जाता है। स्वयंभू देव की शक्ति से विकासित परमेष्ठी रूपिणी देवी सारे विश्व की मूल शक्ति है। उसे ही वाक् शक्ति भी कहते हैं। उसी देवी का चरित्र असुर के युद्धों के रूप में इस प्रकरण का विषय है।

यहाँ यह भी समझ लेना चाहिए कि आठवें मनु सावर्णि की कथा आरम्भ करते ही देवी महात्म्य या देवी का चरित्र क्यों रक्खा गया। ऊपर कहा जा चुका है कि जो अहः या शुक्ल तत्त्व है वह स्वयंभू मनु से लेकर वैवस्वत मनु तक रहता है। वह प्रकाश, ज्योति और ज्ञान का समय है। उसे उद्भास काल या सूर्य के ऊपर उठने का समय कहा जाता है। मानुषी दिन में मध्याह्न के बाद सूर्य नीचे आने लगता है। वह उसका निम्राभ काल है। उसका संबंध विशेषतः रात्रि या तम से है। वहीं से पहले सात मन्वन्तरों की छाया के रूप में दूसरे सावर्णि मनुओं का काल प्रारम्भ हो जाता है। जो प्रक्रिया मनुष्य के एक अहोरात्र चक्र में होती है वही ब्रह्मचक्र या ब्रह्मा के दिव्य वर्ष सहस्र रूप आयुष्य काल में होती है। सात मन्वन्तर मुक्त कोटि में हैं। अतएव इन्हें प्रत्यक्ष का विषय कहना चाहिए। आठवें सावर्णि अमुक्त मन्वन्तरों के प्रतिनिधि हैं। वे परोक्ष काल या रात्रि के प्रतीक हैं। इस कारण सावर्णि के साथ ही देवी चरित्र का संबंध रक्खा गया। रात्रि में ही असुर प्रबल होते हैं। यह सारा चरित्र कालरात्रि से संबंधित है।

ज्ञान या विवेक का प्रतीक दिन है और अज्ञान या मोह का प्रतीक रात्रि है। असुरों के साथ युद्ध और उनके विनाश की कथा विवेक की मोह पर विजय की कथा है। असुर तत्त्व कहीं बाहरी सत्ता नहीं। ये तो अपने ही भीतर उत्पन्न

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होने वाले मोह के नये-नये रूप हैं जिनसे ज्ञान ढक जाता है। इस कहानी के आरम्भ में इसका स्पष्ट संकेत है। मेधा ऋषि शुद्ध विज्ञान या विवेक के प्रतीक हैं जिन्हें कभी मोह नहीं होता। राजा सुरथ और समाधि वैश्य दोनों को दो तरह का मोह हुआ। एक को लोकैषणा और दूसरे को वित्तैषणा या धन का। इस मोह को दूर करने के लिए मेधाऋषि ने भगवान् की चित्-शक्ति का माहात्म्य सुनाया। वह एक ओर प्रत्येक के हृदय में रहती है और दूसरी ओर विश्व के नाना रूपों में प्रकट होती है।

दूसरे प्रश्न की उत्थापना रात्रि, तम और असुरों के विषय में है। इसका उत्तर यह है कि भारतीय दृष्टि से यह विश्व देवों और असुरों के संघर्ष का परिणाम है। वैदिक भाषा में इसे दैवासुरम् कहते हैं। वेद, ब्राह्मण, पुराण और काव्य, इन चारों में दैवासुरम् संग्राम का विविध वर्णन पाया जाता है। सृष्टि का मूल कोई एक विलक्षण तत्त्व है, उसे अज या अजन्मा कहा जाता है। उससे कोई रचना नहीं होती। शुद्ध स्थिति-भाव उसका रूप है। उसे ही अज एकपाद् कहते हैं। जिसमें पाद् या गति न हो वह गतिहीन स्थिति तत्त्व ही अपाद् कहलाता है। अपाद और एकपाद, दोनों का एक ही संकेत है। बाजीगर बकरे को मरू पर खड़ा करके उसके चारों पैरों को जोड़ देता है वही अज एकपाद या गतिहीन स्थिति भाव है। स्थिति को ही निद्रा भाव कहा जाता है। शेषशायी विष्णु इसी स्थिति भाव के प्रतीक हैं। सृष्टि के लिए उनका जागरण या क्षोभ आवश्यक है। गति के उदय से ही विश्व की रचना संभव होती हैं। इसी का उल्लेख सप्तशती के आरम्भ में किया गया है कि निद्रा विष्णु के शरीर से बाहर हो गई और मधुकैटभ नामक असुरों का जन्म हुआ। गति क्रियात्मक शक्ति का ही नाम है। गति के साथ आगति का जोड़ा है। यही द्विविरुद्ध भाव है जिससे 'एक' तत्त्व 'बहुधा' बनता है। बहुधा भाव या नानात्व से ही विश्व का आविर्भाव होता है। गति-अगति को ही देव और असुर, दिन और रात्रि, ज्योति और तम इत्यादि अनेक द्वन्द्वों के रूप में हम पाते हैं। इनमें जिन्हें असुर कहते हैं उनका सम्बन्ध तम, मृत्यु और अनृत से है। पंचभूत, प्राण और मन प्रत्येक धरातल पर आसुरी संघर्ष जारी है। उसकी शान्ति के बिना मानव का कल्याण नहीं। इस संघर्ष में देवों की विजय अंतिम रूप से निश्चित है। अतएव देवी उनकी सहायक बनती है। किन्तु जब तक असुर देवों पर आक्रमण नहीं करते तब तक वह उनकी सत्ता को भी सहन करती है।

कथा का स्वरूप

सप्तशती के इस प्रकरण में तेरह अध्याय हैं (अध्याय ८१—९३)। इसके तीन भाग माने जाते हैं :—

(१) पूर्वचरित्र—इसमें मधुकैटभ का वध है।

(२) मध्यम चरित्र—इसमें महिषासुर का वध है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(३) उत्तर चरित्र—इसमें शुंभ निशुंभ, उनके सेनापति चंडमुंड और रक्तबीज के साथ संग्राम और उनके वध का वर्णन है।

कथा का संक्षिप्त ठाठ इस प्रकार है—सुरथ नाम का राजा था। उस पर कोलाविध्वंसी नामक शत्रुओं ने आक्रमण किया। वह हार गया, और अकेला घोड़े पर चढ़ कर वन में चला गया। वहाँ उसने मेधा ऋषि का आश्रम देखा। वहाँ भी वह मोहवश अपने पुर, प्रजा, कोष, हाथी आदि के विषय में चिंता करने लगा। उसी आश्रम में उसने समाधि नाम के एक वैश्य को देखा। वह कोई धनी था जिसके धन का अपहरण करके स्त्री पुत्रादिक ने उसे घर से निकाल दिया था। पर वह उन्हीं की चिन्ता में डूबा हुआ था। दोनों को मोह की व्याधि थी। दोनों ऋषि के पास गए और मेधा ने उनका वृत्तान्त सुन कर देवी के माहात्म्य द्वारा उनका उद्बोधन किया। राजा सुरथ को सत्तातंत्र में और समाधि वैश्य को अर्थतंत्र में फँसे होने के कारण मोह हुआ। मनुष्य के मन की यही दो वृत्तियाँ प्रधान हैं जिनमें उद्बोधन की आवश्यकता होती है।

ऋषि ने समझाया—"कोई प्राणी दिन में अंधे होते हैं, अर्थात् देवमार्ग और कल्याण की बात नहीं देखते। कोई रात्रि में अंधे होते हैं और विषयों के दोषों को नहीं देखते। किन्तु कुछ मनुष्य ऐसे हैं जो दिन और रात में एकसी दृष्टि रखते हैं और दोनों को देखते हैं। यही सच्ची ऋषि दृष्टि है जो परमार्थ और संसार दोनों को पहचानती है।[1] यह विष्णु की महामाया है जो मनुष्य, पशु-पक्षी सबको मोहित कर रही है और जो ज्ञानी हैं उनके चित्त में भी बलपूर्वक मोह उत्पन्न कर देती है। वही जगत् को रचती है और प्रसन्न होकर वही मुक्त करती है। संसार के बंधन का कारण वही है और मुक्ति का कारण भी वही सनातनी परा विद्या है।[2]"

यह सुन कर राजा ने प्रश्न किया—'हे भगवन् जिसे आप महामाया कहते हैं वह देवी कौन-सी है? उसका जन्म, कर्म, स्वभाव और स्वरूप क्या है? वह सब कहिए।'

---

१. दिवान्धाः प्राणिनः केचिद् रात्रावन्धास्तथापरे।
केचिद्दिवा तथा रात्रौ प्राणिनस्तुल्यदृष्टयः॥
(८१।३३)

२. महामाया हरेश्चैतत्तया संमोह्यते जगत्।
ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा॥
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति।
तया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम्॥
सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये।
सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी
संसारबंधहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी॥
(८१।४१-४४)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस प्रश्न के उत्तर में ऋषि ने कहा—'वह देवी नित्य है। किन्तु देवकार्य के लिए जब वह जन्म लेती है तो उसे उत्पन्न हुआ माना जाता है।' प्रलय में जब विष्णु योगनिद्रा में लीन हो गए तब मधुकैटभ नाम के दो असुर विष्णु के नाभि कमल में स्थित प्रजापति ब्रह्मा को मारने के लिए तैयार हुए। तब ब्रह्मा ने विष्णु के जागरण के लिए देवी की स्तुति की।

यह स्तुति अत्यंत उत्कृष्ट है। इसमें वैदिक और लौकिक नामों और विशेषणों के द्वारा शक्ति का वर्णन किया गया है। स्वाहा, स्वधा, वषट्कार, स्वर, अक्षर, प्रणव की तीन मात्राएँ, चौथी अर्धमात्रा, सावित्री, ये सब देवी के रूप कहे गए हैं। वही जगत को रचती, पालती और अंत में उसका संहार करती है। महाविद्या, महामाया, महामेधा, महास्मृति, महामोहा और महासुरी उसी महादेवी की संज्ञाएँ हैं। तीन गुणों से युक्त प्रकृति वही है। कालरात्रि, महारात्रि और मोहरात्रि उसी देवी की अवस्थाएँ हैं। बुद्धि, श्री और ईश्वरी वही है। ह्री, लज्जा, पुष्टि, तुष्टि, शान्ति और क्षमा उसी के रूप हैं। वही सौन्दर्य की अधिष्ठात्री है, वही पर और अपर से भी परे है। सत् और असत् दोनों से वह पूर्ण है। विष्णु के शरीर में निद्रा रूप से प्रविष्ट हे देवी, तुम अपना उदार प्रभाव प्रकट करो और उन्हें प्रबोधित करो। यह सुन कर वह देवी विष्णु के शरीर से बाहर आई और विष्णु जागे। उन्होंने उठ कर मधुकैटभ नामक उन दो असुरों से युद्ध किया। प्रसन्न होकर असुरों ने विष्णु से वर माँगने को कहा। विष्णु ने यह माँगा कि तुम दोनों मेरे लिए वध्य हो जाओ। और ऐसा ही हुआ।

इसके बाद मध्यम चरित्र में महिषासुर के जन्म, उपद्रव, देवों की पराजय एवं चंडिकारूपी देवी द्वारा उसके वध की कथा है। उस वध से प्रसन्न हुए देवताओं ने देवी की अत्यंत भव्य स्तुति की—जिसने आत्म शक्ति से इस जगत् का वितान किया है, उस देवी को प्रणाम है। देव और ऋषियों से पूज्य उस अम्बिका का प्रभाव अतुल है। उसे विष्णु, ब्रह्मा और शिव भी नहीं कह सकते। पुण्यात्मा पुरुषों के घरों में वही श्री है, पापियों के यहाँ उसी का रूप दरिद्रता है। बुद्धि, श्रद्धा, उसी के रूप हैं। हे देवी, यह जगत् तुम्हारा अंश मात्र है। तुम्हीं अव्यक्त परम प्रकृति हो। यज्ञों में स्वाहा, और पितृ कार्यों में स्वधा तुम्हीं हो। मोक्षार्थी मुनियों की पराविद्या एवं ऋक्-यजु-साम की त्रयी विद्या तुम्हीं हो। संसार के दुःख दारिद्र्य को मिटाने वाली वार्ताविद्या भी तुम्हीं हो।

इसके अनंतर देवी के उत्तर चरित्र में शुंभ निशुंभ के साथ युद्ध का वर्णन है। आरंभ में देवों के द्वारा विष्णु-माया का वह प्रसिद्ध स्तोत्र है जिसमें देवी को 'नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः' कहकर बारबार संबोधित किया गया है, और उसके विभिन्न रूपों को प्रणाम किया गया है :—

या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उस विष्णुमाया के अनेक रूप हैं। चेतना या चिति, बुद्धि, निद्रा, क्षुधा, छाया, शक्ति, तृष्णा, क्षमा, जन्म, लज्जा, शान्ति, श्रद्धा, कान्ति, लक्ष्मी, वृत्ति, स्मृति, दया, तुष्टि, भ्रान्ति, व्याप्ति, एवं मातृ तत्त्व, ये सब उसी के रूप हैं। अंत में कहा है—

> चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद्व्याप्य स्थिता जगत्।
> नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥
>
> ८५।३४

जब देव इस प्रकार स्तुति कर रहे थे तो वहाँ पार्वती गंगा में स्नान करने आईं। उन्होंने पूछा—'यह किसकी स्तुति हो रही है?' तब उनके शरीर से एक शक्ति उत्पन्न हुई जो शरीर कोशों से जन्म लेने के कारण कौशिकी कहलाई। उसके बाहर आ जाने से पार्वती का रंग काला हो गया और वे 'कालिका' नाम से प्रसिद्ध हुईं।

तब उसके रूप को देखकर शुंभ निशुंभ के सेनापति चण्ड मुण्ड ने अपने स्वामी से उसका वर्णन किया। शुंभ ने अपना दूत देवी के पास भेजा। पर देवी ने कहा—जो मुझे संग्राम में जीतकर मेरा दर्प दूर करेगा वही मेरा पति होगा। इस पर शुंभ-निशुंभ ने धूम्रलोचन असुर को युद्ध के लिए भेजा पर वह देवी की हुङ्कार से ही भस्म हो गया। इस पर शुंभ-निशुंभ ने चण्ड-मुण्ड को युद्ध के लिए भेजा। किन्तु वे भी काली या चण्डिका देवी से परास्त हुए। चण्ड-मुण्ड का नाश करने के कारण काली चण्डिका नाम से प्रसिद्ध हुईं। इसके अनन्तर स्वयं शुंभ-निशुंभ से देवी का युद्ध हुआ। इसी प्रसंग में सप्तमातृकाओं का वर्णन है, जिनसे रक्तबीज नामक असुर का युद्ध हुआ। अंत में चामुण्डा द्वारा वह मारा गया। सबसे अंत में शुंभ और निशुंभ देवी के साथ संघर्ष करते हुए मृत्यु को प्राप्त हुए। असुरों की पराजय से प्रसन्न हुए देवों ने नारायणी नाम से देवी की अर्थ-गर्भित स्तुति की। तब फलश्रुति के साथ यह प्रकरण समाप्त किया गया।

दुर्गासप्तशती का आध्यात्मिक अर्थ

देवी माहात्म्य में असुरों के साथ देवी के युद्धों की कहानी जान पड़ती है। किन्तु पुराणविद्या की दृष्टि से इसके मूल में वैदिक अध्यात्म विद्या के प्रतीक छिपे हुए हैं। उनकी व्याख्या इस प्रकार है[1]—

मारीच कल्प के अनुसार प्रथा है कि आरंभ में ऋग्वेद के रात्रिसूक्त (१०।१२७) का पाठ किया जाता है, बीच में सप्तशती का और अंत में ऋग्वेद के

---

१. यह व्याख्या हमें जयपुर के स्वनामधन्य श्री पंडित मोतीलाल जी शास्त्री से, जो पंडित मधुसूदन जी के शिष्य थे, २५-२६-२७ दिसम्बर १९५७ को मौखिक प्रवचनों के रूप में प्राप्त हुई, जो लगभग उन्हीं के शब्दों में यहाँ दी जाती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देवी सूक्त (१०।१२५) का। ब्रह्म, क्षत्र और विट् के सम्मिलन से सृष्टि होती है। ब्रह्म, तम या मोह से अतीत है किन्तु क्षत्र और विट् को उद्बोधन की आवश्यकता होती है। राजा सुरथ और समाधि वैश्य उन्हीं के रूप हैं। एक में सत्तातंत्र, दूसरे में अर्थतंत्र के कारण मानव मोह को प्राप्त होता है।

रात्रिसूक्त में सौर संवत्सर से पहले का चरित्र है। दो रात्रियाँ जाननी चाहिएँ। एक निरपेक्ष, दूसरी सापेक्ष। अहः या दिन के साथ जो रात्रि है वह सापेक्ष है। सर्व प्रथम ऋत और सत्य इन दोनों का दाम्पत्यभाव होता है। ये ही विश्व के प्रथम पति-पत्नी हैं। स्वयंभू सत्य है। वही वेदत्रयी या त्रयी विद्या है। परमेष्ठी ऋतात्मक है। वही अथर्व या सुब्रह्म वेद है। त्रयी विद्या अर्थात् ब्रह्म एवं अथर्व अर्थात् सुब्रह्म इन दोनों के दाम्पत्यभाव का परिणाम रात्रि है। त्रयी पुरुष-भाव है। वह अग्नि है। अथर्व जायाभाव है। वह सोम है। इसी ऋत-सत्य के सम्मिलन से रात्रि का जन्म होता है, जिसके लिए अघमर्षण सूत्र में 'ततो रात्रि रजायत' कहा है। रात्रि की यह सृष्टि सौर संवत्सर से पहले की है। वह प्राण-सृष्टि है।

स्वयंभू और परमेष्ठी या सत्य और ऋत के दाम्पत्य भाव का नाम तप है। प्राण के व्यापार को तप कहते हैं और भूतों के व्यापार को श्रम। स तपो अतप्यत अर्थात् प्रजापति ने प्राण व्यापार किया। सो अश्राम्यत अर्थात् प्रजापति ने भूत व्यापार किया। रात्रि की दशा में भूत व्यापार आरंभ नहीं हुआ है। तपोमूलक क्षत्र और तपोमूलक विट् कभी मोह में नहीं पड़ते। ये जब श्रममूलक होते हैं तब मोह में पड़ते हैं। केवल श्रम या भूत मोह का कारण है। भूत की आसक्ति का नाम मोह है। किन्तु प्राण असंग है, अतएव तप से संचित वस्तुओं में आसक्ति नहीं होती। श्रम से संचित वस्तु में आसक्ति हो जाती है। तप केन्द्राभिमुखी होता है, श्रम बहिर्मुखी। जिन्होंने श्रम से अर्थ का संचय किया है वे उसमें चिपके रहते हैं, पर जो तपोमूलक होते हैं उनमें दानशक्ति आ जाती है। तपोमूलक सर्वस्व संपत्ति भी दान कर दी जाती है। श्रम मूलक अरबों रुपया भी देने की इच्छा नहीं होती। श्रममूलक वस्तु अंतर्याम नहीं बनती। इसलिए सब कुछ होते हुए भी अभाव ही मालूम होता है। जिसके जीवन में तप है उसमें श्री आती है। जिसमें केवल श्रम है उसमें केवल लक्ष्मी बनी रहती है। तप और श्रम का भेद ही श्री और लक्ष्मी का भेद है। श्री और लक्ष्मी दोनों विष्णु की पत्नियां हैं। रात्रिसूक्त में श्री का नाम लिया है, लक्ष्मी का नहीं। वह प्राण सृष्टि है जो सूर्य से पहले की है। भूत सृष्टि सूर्य से चलती है। भूत सृष्टि केवल रोदसी ब्रह्मांड में है। रुद्र भूतपति या भूतनाथ हैं। उससे ऊपर परमेष्ठी लोक के स्वामी विष्णु प्राणपति हैं और स्वयंभू ब्रह्मा चित्पति हैं। उपनिषदों में इन्हें ही प्रज्ञा-प्राण-भूत कहा गया है। लक्ष्मी या भूतसृष्टि ये एक ही हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्वयंभू का सत्य जब ऋतात्मा परमेष्ठी के गर्भ में आता है तभी अण्ड-भाव की सृष्टि होती है। यह पहला दाम्पत्य भाव है जिससे रात्रि का प्रादुर्भाव हुआ। रात्रि से आशय तमोगुण अर्थात् सृष्टि के बीज से है। तमोगुण वह है जो धामच्छद है या जगह रोकता है। वही सृष्टि का मूल बीज है।

रात्रि का स्वरूप अंभस् या जल है। अप्तत्त्व के कारण रात्रि का स्वरूप वारुण है। वहाँ वरुण या असुरों का क्षेत्र है। वरुण ही सबसे बड़े असुर हैं। वरुण भाव के कारण जगदम्बा देवी को वारुणी, महासुरी, तामसी या रात्री कहा है। यह सब पारमेष्ठ्य असुर का प्रभाव है। पारमेष्ठ्य जल से ही विकार सृष्टि या भूत सृष्टि का विकास होता है।

सृष्टि का जो मूल बीज है उसका नाम रात्रि है। सृष्टि प्रवर्ग्यमूला है। वह ब्रह्मौदन के उच्छिष्ट से उत्पन्न होती है। जो रात्रि है वही दात्री है (रा दाने धातु)। जो कुछ वह देती है उसी का नाम प्रवर्ग्य है। रात्रि माता है वह सोम गुण या पानी के कारण सोम्या है। अपनी कुक्षि से वह जिसे जन्म देती है वह संतति ही उसका प्रवर्ग्य है। विस्रंसन पानी का धर्म है। प्रवर्ग्य अंश की संज्ञा रात्रि है। प्रवर्ग्य ही सृष्टि है। तत्त्वतः रात्रि का नाम है अत्रि प्राण। जो धामच्छद है या सूर्य का अवरोधक है वह अत्रि प्राण है। सम्पूर्ण सृष्टि अत्रिमूला है। जब तक स्त्री में अत्रि प्राण नहीं होता तब तक प्रजनन नहीं हो सकता। मलीमस या सड़ान यही अत्रिधर्म है। आत्रेयी योषित ही गर्भ धारण करती है। सड़ान से ही सृष्टि होती है। जलों का ठहरना और सड़ना यही वरुण का प्रभाव है। सड़ान या अत्रिधर्म न हो तो बीज रहते हुए भी अंकुरित नहीं होता। पृथिवी में या मातृकुक्षि में प्रत्येक बीज स्वयं विनष्ट हो कर या सड़कर जिस प्रवर्ग्य को ऊपर फेंकता है उसी से अंकुर और पत्ते बनते हैं। ब्रह्मौदन के माध्यम से प्रवर्ग्य ही पुनः प्रवर्ग्य को जन्म देता है। आत्म-भाव के विना ब्रह्मौदन व्यक्त नहीं होता। चित् का प्रतिबिम्ब जो ग्रहण करता है उसे ही महत् ब्रह्म या योनि या पारमेष्ठ्य प्रकृति कहते हैं। वही रात्रि तत्त्व है। बीज ग्रहण शक्ति उसी की है। चित् सर्वत्र है पर अभिव्यक्त नहीं है। महत् ही चित् को अभिव्यक्त करता है।

पारमेष्ठ्य माया का नाम महामाया है। पूरे अश्वत्थ की माया का नाम महामाया या सोम्यामाया होता है। वह सहस्रपुण्डीरा या सहस्र शाखा है।

देवी माहात्म्य में पारमेष्ठ्य असुर, सौर असुर, चान्द्र असुर और पार्थिव असुर, इन चार मण्डलों के असुरों के युद्ध का वर्णन है—

१—मधुकैटभ पारमेष्ठ्य असुर हैं। वे परमेष्ठी मंडल पर आक्रमण करते हैं।

२—महिषासुर—सौर मण्डल पर आक्रमण करनेवाला असुर है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

३—शुंभनिशुंभ—चन्द्रमा पर आक्रमण करते हैं।

४—रक्तबीज—पृथिवी पर आक्रमण करता है।

इस प्रकार चार जगहों में छः असुर हैं। स्वयंभू असुर विहीन है। वह केन्द्रात्मक शुद्ध प्राण है। असुर तब होता है जब भूत का आविर्भाव हो। भूततत्त्व का ही नाम असुर है। असुरभाव की जन्मभूमि परमेष्ठी है। स्वयंभू की माया या शक्ति शुद्ध प्राणात्मक है। वह परमेष्ठी में आकर 'देवी' हो जाती है। पारमेष्ठ्य प्रकृति देवी है। असुरभाव का जो प्रतिद्वन्द्वी भाव है वह असुर-भाव है। देव-भाव और असुर-भाव सहजन्मा हैं। अतएव पारमेष्ठ्य प्रकृति को असुर सम्पर्क के कारण आसुरी या तामसी और देव सम्पर्क के कारण देवी कहा जाता है। वह तामसी हो चाहे आसुरी पर देवताओं का ही कार्य करती है, क्योंकि उसकी मूल प्रकृति अक्षरात्मिका या प्राणात्मिका है। आत्मभाव या केन्द्रभाव की संज्ञा ही देवभाव है। वह देवी असुरों का तब तक समर्थन करती है जब तक कि वे देवभाव या केन्द्रभाव पर आक्रमण नहीं करते। देवों का अन्न यज्ञ है। जब तक देवों में यज्ञभाव जागरित रहता है उन पर असुर आक्रमण नहीं कर सकते। आदान-प्रदान या संचरण यज्ञ का रूप है। स्थिति-गति-आगति ये अक्षर या प्राण की कलाएँ हैं। केन्द्र से परिधि की ओर गति अग्नि है। परिधि से केन्द्र की ओर आगति सोम है। गति-आगति भाव का नाम ही यज्ञ है। भूत या क्षर गतिभाव का अवरोधक है। वही असुर भाव है। उसके हटने से ही यज्ञ भाव पुनः प्रचलित हो सकता है। जो केन्द्रस्थ विष्णु है वह जब सुप्त हो जाता है तो आसुरभाव प्रबल हो उठता है। विष्णु को सुप्त करनेवाली निद्रा को भी देवी का एक रूप कहा गया है। वह विष्णु के शरीर में से निकल कर विष्णु का प्रबोध करती है।

मधु कैटभ की व्याख्या

मधु कैटभ दोनों पारमेष्ठ्य असुर हैं। भूततत्त्व ने मधु कैटभ के रूप में उस केन्द्र को अभिभूत करना चाहा जिसमें स्वयंभू की शक्ति गर्भित हो चुकी थी। पारमेष्ठ्य सोम के दो स्वरूप हैं। एक भास्वर सोम, दूसरा दिक् सोम। भास्वर सोम ज्योतिर्मय सोम है। उसमें देवभाव है। उससे देववाहन मन या प्रज्ञात्मा प्राण का जन्म होता है। तमोमय सोम दिक् सोम है। उससे श्रोत्रेन्द्रिय का विकास होता है। मधु कैटभ को विष्णु के कान के मैल से उत्पन्न कहा गया है। वह दिक् सोम की ओर ही संकेत है। मलात्मक या तामस दिक् सोम का प्रतीक ही विष्णु का कर्णमल है। मधु कैटभ दो असुर हैं, जैसे दो श्रोत्र हैं। वे एक साथ जन्म लेनेवाले साकंज प्राण हैं। मधु ब्रह्मौदन है और कैटभ प्रवर्ग्य है। मधुसूदन और कैटभारि दोनों विष्णु के नाम हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कल्पान्त में जो प्रलय होती है वही प्रकृति की साम्यावस्था, एकार्णव (८१।७०) या पारमेष्ठ्य समुद्र है। स्तुति करनेवाला ब्रह्मा अव्यक्त स्वयंभू तत्त्व है जो परमेष्ठी विष्णु के गर्भ में है। अतएव विष्णु ही यहाँ प्रधान हैं। विष्णु के जिन अंगों से निद्रा बाहर आती है उनमें उरस्थल, बाहु और हृदय मुख्य हैं। उरस्थल अंतरिक्ष या महिमाबल, बाहु केन्द्रबल और हृदय प्रतिष्ठा बल का प्रतीक हैं। जब शक्ति भूत के निर्माण में तल्लीन हो जाती है तो केन्द्र बल सो जाता है। वही विष्णु का स्वाप है।

सहस्र वल्शेश्वर अर्थात् सहस्र शाखाओं वाले अव्यय वृक्ष की माया को महामाया कहते हैं। शेष सब योगमाया हैं। महामाया से युक्त होने के कारण उनका नाम योगमाया है। महामाया के गर्भ में अनेक छंद बन जाते हैं। वे अनेक छंद ही अनेक ब्रह्माण्ड या अनेक केन्द्र हैं। उनमें से प्रत्येक योगमाया है। योगमाया में भी अपेक्षा कृत महामाया—योगमाया की संबंध शृङ्खला रहती है। योगमाया सापेक्ष है, महामाया निरपेक्ष। सर्ग प्रक्रिया में सबका नाम योगमाया होगा क्योंकि वह महामाया से पराक् गति है। प्रतिसर्ग प्रक्रिया में सबका नाम महामाया होगा क्योंकि सब महामाया के अभिमुख रहेंगी। विष्णु ने पंचवर्ष सहस्र तक बाहुबल से युद्ध किया, इसका संकेत पंचपुण्डीरा सृष्टि से है। सहस्र का अर्थ पूर्ण है। स्वयं विष्णु यज्ञमूर्ति होने के कारण पांक्त या पंचावयव हैं। पुराण के संकेत सृष्टि विज्ञान के स्मारक हैं। उसका निरूपक शास्त्र तो वेद ही है। पुराण के द्वारा संस्मरण करा दिया जाता है पर सृष्टि विज्ञान की शिक्षा तो वेद से ही प्राप्त होती है। मधु कैटभ ने विष्णु से यह शर्त रक्खी कि हमें वहाँ मारो जहाँ पृथिवी जल से ढकी न हो (८१।७५)। पृथिवी प्रतिष्ठात्मक धरातल की संज्ञा है। जल से ढके होने का भाव यह है कि उसमें भौतिक कण तो उत्पन्न हो गए थे पर पिण्डात्मक स्वरूप पैदा नहीं हुआ था। वहाँ ऋत-भाव फैला हुआ था। वह काल्वालीकृत स्वरूप था जिसमें काँदा-कींच मचा हुआ था। सत्यात्मक पिण्ड-भाव उत्पन्न होते ही असुर नहीं रहते। केन्द्र उत्पन्न होने पर सत्यभाव आ जाता है और ऋतभाव हट जाता है। विष्णु ने अपने जघन या प्रतिष्ठात्मक केन्द्रबल पर उनके सिर रखकर चक्र से काट दिए। केन्द्रबल सलिल से आवृत नहीं था। चक्र गतिभाव का प्रतीक है। अक्षर तत्त्व या प्राणन या जागरण यही चक्र की गति है। विष्णु का प्रधान आयुध चक्र है। आदान और विसर्ग यही गति-भाव है। वही जब अवरुद्ध होता है तब असुर बलवान हो जाते हैं। आदान-विसर्ग की सकुशल प्रवृत्ति ही यज्ञ है। यज्ञ से ही विष्णु सकुशल रहते हैं।

महिषासुर

दूसरे युद्ध में सौर मण्डल पर परमेष्ठी का असुर आक्रमण करता है। यह असुर महिष है। पारमेष्ठ्य महत् तत्त्व ही महिषासुर है। परमेष्ठी एकात्मक है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अतएव महिषासुर अकेला सौर देवताओं पर आक्रमण करता है। सूर्यमण्डल का जन्म परमेष्ठी से अलग हो चुकता है। परमेष्ठी में जब यज्ञ आरंभ हो गया अर्थात् विष्णु जाग गए तो यज्ञात्मक नारायण या सूर्यमण्डल की पृथक् सत्ता आविर्भूत हो जाती है।

महिषासुर मृत्यु का प्रतीक है। वह वारुणभाव है। वरुण और यम सजातीय प्राण हैं। यम का वाहन भी महिष है। इसीलिए वारुण पारमेष्ठ्य असुर को महिष नाम दिया गया। जो मृत्यु है वही यम है। महिष वारुण पशु है। अश्व सौर पशु है। मृत्यु अवसान है। अवसाद भूत-भाव है। वह गति का अवरोधक है।

देवों का अधिपति पुरन्दर या इन्द्र सौर प्राण का पर्याय है (८२।१)। सूर्य में जागरण-भाव ही है। सूर्य के भीतर सोना या निद्रा नहीं है। परिधि पर आसुर-भाव आक्रमण करते हैं पर सूर्यमण्डल के भीतर वे नहीं प्रवेश करने पाते। संवत्सर पर पूरा अधिकार देवताओं का है। उसमें केन्द्र तक असुर नहीं घुस पाते। अतएव यहाँ के संग्राम बनावटी हैं, जैसा कहा है :—

न त्वं युयुत्से कतमच्चनाहर्न तेऽमित्रो मघवन् कश्चनास्ति।
मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहुर्नाद्य शत्रुं न नु पुरा युयुत्सः ॥

शत० ११।१।६।१७

अर्थात् हे इन्द्र, तुम कभी लड़े नहीं, न तुम्हारा कोई शत्रु है। तुम्हारे युद्धों का वर्णन सब माया या बनावटी है। न आज तुम्हारा कोई शत्रु है और न पहले तुमसे लड़ने वाला कोई था।

वेदों में इन्द्र और वृत्र के युद्धों का विशद वर्णन है। वृत्र के मरने से इन्द्र असपत्न हो गया। वही भाषा यहाँ महिषासुर के लिये है—इन्द्रोऽभून्महिषासुरः (८२।२)। महिषासुर ने इन्द्र को स्वर्ग के सिंहासन से पदच्युत कर दिया और स्वयं इन्द्र बन बैठा। पुनः सूर्यमण्डल के अधिष्ठातृ देवता इन्द्र देवभाव की समृद्धि से या देवी की सहायता से शक्तिशाली हुए और महिषासुर मारा गया। जो आवरण करने वाला भाव है, जो अपने तम से सौर तेज को ढक देता है वही वृत्र या महिष है। सृष्टिकाल के हिसाब से परमेष्ठी को सूर्य भाव में आने के लिए समय लगा होगा। सूर्य के जन्म से लेकर उनके तेज के पूर्ण परिपाक तक महिषासुर ही शक्तिशाली रहा होगा। अन्त में जब इन्द्र पुनः प्रबल हुए तब वही महिषवध हुआ। इन्द्रो ह वृत्रं हत्वा महेन्द्रोऽभवत्।

सौरमंडल के निर्माण से शिवतत्त्व भी अभिव्यक्त हो पड़ता है। पारमेष्ठ्य मंडल में विष्णु और ब्रह्मा प्रधान थे। अब ब्रह्मा गौण बन जाते हैं और इन्द्र, विष्णु प्रधान हो जाते हैं। वेद के इन्द्र-विष्णु ही पुराण के शिव-विष्णु हैं। सौर मण्डल में त्रयस्त्रिंशत् देव उत्पन्न हो जाते हैं। अहर्गणवाले देवता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जितने थे सब यहाँ प्रकट हो गए। परमेष्ठी से जब सूर्य की अभिव्यक्ति होने लगी तो बिखरे हुए प्राण कुछ काल में केन्द्रबद्ध हुए। जो देवप्राण परमेष्ठी में थे वे बहिर्मुख, असम्बद्ध और बिखरे हुए थे। सूर्यमण्डल के निर्माणकाल में वे केन्द्राभिमुख और केन्द्रनिष्ठ हुए। वही शक्ति देवी बन गई। वही हैमवती उमा है।

तेतीस तन्तु देवता ही तेतीस अहर्गण है। एक सहस्र गौओं से ही तेतीस अहर्गण बनते हैं। तीस से भाग देने पर एक सहस्र अहः के तेतीस अहर्गण हो जाते हैं। शेष दस बचते हैं। वही कामगवी है। आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, दो अश्विनीकुमार—ये तेतीस यज्ञीय देवता हैं। इन तेतीस देवों से निर्गत जो महत्तेज था वही तेजकूट बना जिसे देवों ने देखा— अतीव तेजसः कूटं ज्वलन्तमिव पर्वतम्। ददृशुस्ते सुरास्तत्र ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम् (८२।११)। बृहदादित्य या इन्द्र प्राण अपने मण्डल के विभ्राट् तेज का निरन्तर पान या संग्रह कर रहा है। स्वयंभू परमेष्ठी का सम्मिलित तेज वर्चस्, सूर्य का भर्ग, चन्द्रमा का सुम्न और पृथिवी का द्युम्न कहलाता है।

यह तेज ही सम्मिलित रूप में देवी या देव शक्ति बन गया।[1]

सूर्यरूपी वषट्कार या देव पात्र के बनते ही असुर उसके हवि को खाजाना चाहते हैं। क्योंकि देव केन्द्राभिमुख नहीं थे अतएव आरम्भ में असुर प्रबल रहते हैं। सूर्य की परिपूर्ण रचना प्राण और अपान के सम्मिलित रूप का स्पन्दन है। स्वयंभू और परमेष्ठी का नाम है प्राणत्। चन्द्र और पृथिवी का रूप है अपानत्। प्राणत् बल केन्द्र से परिधिकी ओर जाता है, पर जबतक वह परिधि से पुनः केन्द्र में न लौटे तबतक वह बल दृढ़ नहीं होता। उसका फिर केन्द्र की ओर आना यही अपानत् क्रिया है। प्राणबल के लिये अपान बल आवश्यक है। सूर्य गौरूप है। वह एक सहस्र गौओं की समष्टि है। वैदिक भाषा में परिधि को माता और केन्द्र को स्व या पिता कहते हैं। सूर्य रूपी गौका संचरण उसके केन्द्र से सामने परिधि तक होता है। उसका स्पन्दन वहाँ

---

१. अतुलं तत्र यत्तेजः सर्वदेवशरीरजम्।
एकस्थं तदभून्नारी व्याप्तलोकत्रयं त्विषा॥ ८२।१२

वेद की अहर्गण विद्या से उत्पन्न होनेवाले तेतीस यज्ञीय देवता तेतीस तन्तु कहे जाते हैं। उनका सम्मिलित तेज सूर्य है। उसी की शक्ति देवी है। सूर्य को देवपात्र या वषट्कार भी कहा जाता है। ये तेतीस देवतात्मक तन्तु एक आयतन या आवपन है। सामूहिक छन्द का नाम तेतीस तन्तु है। इनमें रहने वाले जो देव हैं वे यज्ञीय देव भी तेतीस है। अग्नि, वायु, इन्द्र या वसु, रुद्र, आदित्य ही तेतीस देव हैं। इक्कीस अहर्गण में तेतीस यज्ञीय देवताओं का भोग हो जाता है। इक्कीस से सत्ताइस या त्रिणव स्तोम तक पारमेष्ठ्य विष्णु और सत्ताइस से तेतीस तक स्वयंभू ब्रह्मा रहते हैं। जो दस अहः शेष वचते हैं वे चौंतीसवें प्रजापति ब्रह्मा हैं। वे ही अयुग्मन्ती स्तोम यज्ञ के स्वरूप संपादक हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तक पुनः पुनः जाता है। यही उसके प्राणत्-अपानत् व्यापार का विश्लेषण है (ऋग्वेद १।१८६।१-३)।[1] सूर्य तो विराट् प्रतीक है। प्रत्येक केन्द्र में जहाँ चित् शक्ति का स्पन्दन है वहाँ यही प्राणापान की क्रिया हो रही है। जिस मण्डल में प्राण और अपान का यह व्यापार सन्तुलित रहता है, वहाँ से महिषासुर या वृत्र या तम अपना सत्ता अधिकार छोड़कर हट जाता है। जब तक केवल प्राण बल रहा तब तक महिष ने नहीं छोड़ा। जब प्राण को अपान का बल मिल गया तब महिष ने छोड़ दिया। केवल देव महिष को हटाने में असमर्थ थे किन्तु अपनी सम्मिलित शक्ति देवी को साथ लेकर वे महिष को परास्त करने में समर्थ हुए। ऋग्वेद में आया है—

अन्तश्चरति रोचनाऽस्य प्राणादपनती।
व्यख्यन्महिषो दिवम्॥ (१०।१८९।२)।

प्रत्येक वस्तु के चारों ओर का आकाश मंडल उसका द्युलोक है। केन्द्र और परिधि के बीच में जब प्राण और अपान की रोचना या ज्योति संचरण करती है तो महिष उस मण्डल को छोड़ कर स्वयं हट जाता है।

यह कोई भुक्त इतिहास नहीं है। यह सदा सर्वत्र रहनेवाला प्रक्रान्त इतिहास है। यह चक्र सदा चलता रहेगा। ब्रह्मा की सृष्टि का यह चरित्र शाश्वत है। सृष्टि का तत्त्ववाद नित्य है। सृष्टि चरित्र में इन्द्र और महिषासुर का बल घटा तभी यह सृष्टि संभव हुई। सर्ग प्रक्रिया कभी बन्द नहीं होगी।

सब आयुधों से सज्जित होकर सिंहवाहिनी देवी ने अपने घोर गर्जन तर्जन से आकाश को भर दिया (८२।३१)। यह परमेष्ठी के दोधूयमान अलात चक्र की ओर संकेत है जिससे नीहारिका आदि बने और बन रहे हैं। वेद में उसे ही क्रन्दसी लोक कहा जाता है। क्रन्दसी लोक की शक्ति ही प्रचण्ड चण्डिका है। अंवारि भंभारि जैसे घोर गन्धर्व पारमेष्ठ्य तत्त्व हैं। और भी इस प्रकार की अनेक भयंकर शक्तियाँ हैं। सिंह भी उसी के योग्य शक्ति का प्रतीक है। सिंह अरण्य पशु है। पाँच यज्ञीय पशुओं में उनकी गिनती नहीं है। शक्ति के बिखरे हुए और छन्दहीन रूप को अरण्य कहते हैं।

---

१. सूर्य के विष्कम्भ पर उसका विंस्तार निर्भर करता है। इसे पृष्ठ्य स्तोम कहते हैं (हॉरिजेन्टल एक्स्टैन्शन)। इस विष्कम्भ या व्यास के एक सहस्र अहः माने जाते हैं। उसमें तीस-तीस अहर्गण पर विश्राम भूमि है जिसे धाम कहते हैं (त्रिंशद्धाम विराजति वाक्पतंगाय धीयते, ऋ० १०।१८९।३) प्रत्येक धामपर एक-एक देव का निवास है। यही तेतीस देव हैं। अन्त के शेष दस अहर्गण स्वयं प्रजापति की विश्राम भूमि हैं। प्रत्येक वस्तु का एक गोल मण्डल होता है और एक व्यास। दोनों सहस्रात्मक होते हैं। व्यास के विस्तार को पृष्ठ्यस्तोम और मण्डल को अभिप्लव स्तोम विद्या कहते है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

महिष का वध करने से पूर्व देवी मधुपान करती है और महिष से कहती है—गर्ज गर्ज क्षणं मूढ मधु यावत् पिबाम्यहम् (८३।३६)। यह मधु पारमेष्ठ्य सोम का प्रतीक है। परमेष्ठी लोक ऋत या सोम से भरा हुआ है। इसीलिये उसे वरुण या समुद्र या आपः या सलिल भी कहते हैं। उसी सोम या सर्वव्यापक भौतिक द्रव्य से आगे की पिण्ड सृष्टि का निर्माण होता है, अर्थात् प्रकृति की साम्यावस्था से विषम वैकारिक भूत सृष्टि का निर्माण होता है। परमेष्ठी का सोम निरन्तर सूर्य में आ रहा है। उस ब्रह्मणस्पति सोम की आहुति बराबर हो रही है तभी सूर्य का जीवन सकुशल है। मधु सोम का प्रतीक है। वे एक दूसरे के पर्याय हैं। जब तक केन्द्र का परिपाक नहीं होता तब तक महिष जीवित रहता है। जैसे ही मण्डल में केन्द्र का निर्माण हुआ वैसे ही शक्ति पूरी हुई और महिष का वध हो गया। सौर संस्था के महिषासुर के मरते ही सौर देवता से निर्मित संवत्सर चक्र का गर्जन शुरू हो जाता है। अर्थात् जो वाक्तत्त्व महिष के अधिकार में था वह सौर देवों को प्राप्त हो जाता है।

महिषासुर का स्थूल रूप तो हत हो गया, पर उनका नितान्त नाश या सर्वथा अभाव कहाँ होता है? अतएव यहाँ कहा है कि उसका सूक्ष्मभाग उसके कण्ठ से अर्धनिष्क्रान्त या निर्गत हुआ (८२।३६)।

अध्याय ८४ में देवों के विजय-महोत्सव का वर्णन है। उसमें देवी की एक भव्य स्तुति है। देवी ही अव्यक्त परा पृथिवी है। वह समस्त देवगण की शक्तियों के समूह की मूर्ति है (८४।२)। उस देवी के प्रताप से सौर मण्डल असुर विहीन हो जाता है और सूर्यरूपी त्रयीविद्या निर्बाध तपने लगती है (८४।९)।

यहाँ देवी को भद्रकाली कहा गया है (८४।३३)। काली उस आद्या शक्ति का कृष्ण या तामस रूप है। ऋग्वेद में उसे कृष्ण रजस् कहा गया है। कृष्ण रज की शक्ति से ही सूर्य का पुनः पुनः आवर्तन होता है (आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च। हिरण्ययेन सविता रथेन देवो याति भुवनानि पश्यन्)। महाकाल की शक्ति कृष्ण रजस् या महाकाली है। प्रत्येक सत्यात्मक पिण्ड शुक्ल रूप है। वह अमृत और ज्योति का रूप है। किन्तु वह कृष्ण रजस् रूप ऋत के गर्भ में प्रतिष्ठित रहता है। दिन सत्य और रात्रि ऋत का रूप है। दिन संचरक्रम या विज्ञान है। रात्रि प्रतिसंचरक्रम या ज्ञान का प्रतीक है। वेद शास्त्र अहः शास्त्र है। आगमशास्त्र रात्रि शास्त्र है। यही कारण है कि इस देवी चरित्र में कई रात्रियों का उल्लेख हुआ है।

८१।५८ में देवी को कालरात्रि, महारात्रि और मोहरात्रि कहा गया है। ये पौराणिक संज्ञाएँ हैं। फाल्गुन में शिवरात्रि की संज्ञा कालरात्रि, आश्विन में विजयादशमी की संज्ञा महारात्रि और भाद्रपद में जन्माष्टमी की संज्ञा मोहरात्रि है। मोहरात्रि पारमेष्ठ्य विष्णु की रात्रि का नाम है। सूर्य में अहः और रात्रि दोनों

२४

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तत्त्व हैं। चौदह मन्वन्तर तक अहः और चौदह तक रात्रि रहती है। अहः की प्रतिद्वन्द्विनी जो प्रलय रात्रि है वह कालरात्रि है। स्वयंभू की रात्रि जो महामाया से सम्बन्ध रखने वाली है महारात्रि है। स्वयंभू और परमेष्ठी दोनों मिलकर बल्शेश्वर कहे जाते हैं। उन दोनों की रात्रि या लयावस्था का नाम महारात्रि है। स्वयंभू की दो स्थितियाँ हैं। एक निरपेक्ष स्वयंभू दूसरा पुण्डीर स्वयंभू। निरपेक्ष स्वयंभू स्वयं अश्वत्थ है और पुण्डीर स्वयंभू उस अश्वत्थ की एक-एक शाखा है। निरपेक्ष स्वयंभू वृत्तौजा है, अर्थात् वह पूर्ण वृत्त के समान मण्डल वाला है। उसका ओजस् या तेज अपने ही केन्द्र पर अभिमुखी या एक बिन्दु पर केन्द्रित रहता है। जब वह पुण्डीर या शाखा भाव में आता है तो पंचपर्वा हो जाता है। जिस बिन्दु पर वह वृत्त से निर्गत होता है उसकी संज्ञा पुण्डीर स्वयंभू और अगले पर्वों की संज्ञा क्रमशः परमेष्ठी, सूर्य, पृथिवी, चन्द्रमा होती है। सृष्टिमूला सृष्टि प्रक्रिया में चन्द्रमा अन्त में आता है, क्योंकि चन्द्रमा पृथिवी पुत्र है। दृष्टिमूला सृष्टि प्रक्रिया में चन्द्रमा ही पहले रक्खा जाता है। पुराण चन्द्रमा को परमेष्ठी का प्रवर्ग्य होने के नाते सूर्य या शिव से पहले रखते हैं और उसे रुद्र के ललाट पर मानते हैं।

स्वायंभुवतम को महारात्रि, पारमेष्ठ्यतम को मोहरात्रि और सौरतम को कालरात्रि कहा जाता है। चान्द्र और पार्थिवतम की संज्ञा दारुण रात्रि है। ये पाँचों पिण्ड सत्यात्मक हैं। सत्य ऋत के गर्भ में रहता है। ऋत इनका मौलिक स्वरूप है। अतएव हर एक पिण्ड रात्रि के गर्भ में है।

इसके अतिरिक्त देवी के और भी पाँच विशेषण हैं। स्वयंभू या ऋषि-प्राण की दृष्टि से वह महाविद्या है। परमेष्ठी या पितृतत्त्व की दृष्टि से उसकी संज्ञा महामाया है। जगत् की आद्या शक्ति सबसे पहले स्वयंभू को ही तम या मोह से आवृत करके सृष्टि प्रक्रिया या सिसृक्षा भाव में लाती है। उसी के लिये गीता में कहना पड़ा—

> अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।
> प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ॥

सूर्य की दृष्टि से वह शक्ति महामेधा है—'यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते' यह सूर्य के ही मेधतत्त्व के लिये कहा जाता है। अश्वमेध इसी मेधा से होता है। क्रान्तिवृत्त का ही नाम अश्व है। क्रान्तिवृत्त विद्या की संज्ञा अश्वमेध विद्या है। गतितत्त्व की विद्यमानता के कारण क्रान्तिवृत्त को अश्व कहा जाता है। आशुग्रहणशील बुद्धि का नाम मेधा होता है। ऐसी बुद्धि जहाँ जाती है वहीं चिपक जाती है। मेध्यभाव में चिपकने का गुण होता है। उसमें सोम होता है। अतएव सोम संयुक्त मेधा की विशेषता चिपकना ही है। पारमेष्ठ्य सोम वही मेधा है। किन्तु परमेष्ठी की मेधा असुरों की है। वही मेधागुण जब सूर्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में आता है तो देवों का उपास्य बनता है। सौर अग्नि या सावित्र अग्नि से उसी मेधा की याचना की जाती है। देवता और पितर उसी की उपासना करते हैं। अक्षर या प्राणतत्त्व या ज्ञान की संज्ञा देव है। क्षर भूततत्त्व और कर्म का सम्बन्ध पितरों से है। मेधा तत्त्व में दोनों का समावेश है।

देवी की महास्मृति संज्ञा चन्द्रमा की दृष्टि से है क्योंकि चन्द्रमा मन से उत्पन्न हुआ है और स्मृति गुण मन का ही है। महामोहा, महादेवी, महासुरी ये तीनों नाम परमेष्ठी को ही लक्ष्य करते हैं। ये व्यापक नाम हैं। अज्ञान से आवृत ज्ञान का नाम मोह है। अथर्व से आवृत त्रयी विद्या का नाम मोह है। सुब्रह्म से आवृत ब्रह्म मोह है। सर्वप्रथम परमेष्ठी में ही मोह उत्पन्न हो जाता है।

प्रश्न है कि परमेष्ठी में उत्पन्न असुर कैसे मरें। उनमें जब तक मोह उत्पन्न न हो तब तक वह असुर बल कैसे परास्त हो। असुर प्रसन्न हुए कि पाँच सहस्र वर्ष तक हमारा मुकाबला कोई न कर सकेगा। असुरों में मोह कैसे हुआ? केन्द्र-विच्युति का ही नाम मोह है। असुरों को केन्द्र का पता होता तो वे विष्णु से वर माँगने को न कहते। केन्द्रसंयुत परिधि का नाम ब्रह्मौदन है। केन्द्रविच्युत परिधि का नाम प्रवर्ग्य है।

उत्तर चरित-शुंभ निशुंभ का वध

शुंभ निशुंभ और चंड मुंड चन्द्रमा के असुर हैं। रक्त-बीज पृथिवी का है। सूर्य का स्वरूप देवतात्मक भूतों का है। वहाँ भूत देवताओं के वश में रहते हैं। सूर्य में भूतों की सत्ता है इसलिये सूर्य की मृत्यु होती है। भूतों की सत्ता के कारण सूर्य का लय हो जाता है। मनु ने जो 'कालं कालेन पीडयन्' कहा है उसका अभिप्राय सूर्य के सापेक्ष काल से स्वयंभू परमेष्ठी के निरपेक्ष काल को पकड़ना है। संवत्सर अग्नितत्त्व है। संवत्सर विद्या अग्नि विद्या है। संवत्सर विद्या, सृष्टि विद्या, यज्ञ विद्या और अग्नि विद्या परस्पर पर्याय हैं। अस्यवामीय सूक्त में जिसे वामपलित होता कहा है वह अग्नि ही है। उसी की रौंद से आगे का संसार बनता है। सत्त्वप्रधान होने के कारण उसे पलित या श्वेत और अव्यक्तभाव के कारण वाम कहते हैं। वह एकर्षि प्राण है। उसके मूलस्वरूप या ब्रह्मौदन की क्षति नहीं है। उसका पारिभाषिक नाम अक्षिति है। इसी के लिये कहा जाता है—एष नित्यो महिमा ब्रह्मणो न कर्मणा वर्धते नो कनीयान् (बृहदारण्यक ४।५।३।२२)। स्वयंभू के मूल स्वरूप से जो प्रवर्ग्य भाग निकलता है उसी से विश्व बनता है।

उत्तर चरित्र (अध्याय ८५–९३) में चान्द्री और पार्थिव शक्तियों का निरूपण है। सूर्य संवत्सर बन जाने से महिषासुर पराजित हो गया, पर चन्द्रमा, पृथिवी में आते-आते असुर पुनः बलवान् हो गए। सारा अधिकार असुरों ने ले लिया। सूर्य में केवल अदिति भाव है। वह आदित्य है। उसमें दिति भाव नहीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है; किन्तु चन्द्रमा में दिति और अदिति दो भाव हो जाते हैं। उसमें १५ दिन प्रकाश और १५ दिन तम का प्राधान्य रहता है। अदितिभाव देव या प्रकाश है। दितिभाव असुरभाव या तम है। सब असुर राहुमूलक है। चान्द्र असुर और पार्थिव असुर सब राहुमूलक हैं।

चन्द्रमा का राहु विधुन्तुद और पृथिवी का राहु सैंहिकेय कहलाता है। चन्द्रमा विधु है। पृथिवी सिंहिका है। शक्तिमयी विधृति या धरणी होने से वह सिंहिका कही जाती है। सूचीमुख विवर्त को राहु कहते हैं। कभी वह देवों के समक्ष होता है कभी असुर उसके समक्ष आते हैं। सूर्य स्वज्योतिर्मय है। चन्द्रमा परज्योतिर्मय है। पृथिवी रूपज्योतिर्मय है। चन्द्रमा का दक्षवृत्त और पृथिवी का अक्षवृत्त दोनों प्रकाश के सामने आते हैं और हट जाते हैं। असुरों का सांकेतिक नाम पूर्व देव है। देवता शक्ति का नाम है। पहले शक्ति आसुरी थी, पीछे वह देवात्मिका हुई। ज्योति देव हैं। यह बात सूर्य में प्रत्यक्ष दृष्ट होती है।

पृथिवी का दिति भाग अत्रिमय है। वही चन्द्रमा की उत्पत्ति का कारण बनता है। चन्द्रमा अत्रिपुत्र कहलाते हैं। धामच्छद या प्रकाश को रोकने वाले प्राण की संज्ञा अत्रि है। पृथिवी का तमोमय प्राण अत्रि कहलाता है। इसके संघात से ही चन्द्रपिण्ड का उदय होता है। इसी से ऋतुभाव पैदा होता है। चन्द्रमा ही ऋतु का जन्मदाता है। अत्रि के रस का प्रस्रवण यही पृथिवी का आर्तव भाव है। इस आर्तव भाग के कारण ही पृथिवी के असुर का नाम रक्तबीज रक्खा गया। मासिक धर्म के समय स्त्री आत्रेयी होती है। जो आर्तव भाव स्त्री में आता है वह पृथिवी का अत्रिभाग ही है। स्त्री का आर्तव भाग ही रक्तबीज है। पृथिवी माता है। उसमें प्राण प्रस्तुत होता है। वह आर्तव पहले पिब्द्मान या पतला रहता है। पीछे वही घनता का सम्पादन करता है, जैसे खाँड़ की चासनी में राब बनती है। पानी का अंश भाप बनकर उड़ता है। स्वयं पृथिवी इसके प्रस्तुत होने से पिण्डात्मक बनी है। सूर्य की गर्मी से उसमें से रस टपकता है या भाप बनती है। उसे सूर्य के चारों ओर घूमना पड़ता है। वही पानी जिससे पृथिवी पिण्ड बना है सूर्य ताप से चू-चू कर चन्द्रमा का निर्माण करता है। चन्द्रमा के तमो भाग का नाम वृत्र एक सामान्य संज्ञा है—यदवृणोत् तस्माद् वृत्रः। जिसमें अवरण करने का गुण है उसे वृत्र कहते हैं। पृथिवी का तमोभाग भी असुर मंडल हैं। वही राहु या सैंहिकेय हैं। वृत्र और राहु इन दोनों असुरों से देवता पलायित हो जाते हैं। देवों ने विजय के लिये पार्थिव शक्ति और चान्द्री शक्ति की आराधना की। सौरी शक्ति हैमवती उमा है। वही पृथिवी पर पार्वती कहलाती है। उत्तर चरित्र के अधिपति सूर्य या शंकर उसके पति हैं।

पार्वती या पर्वत की पुत्री इस नाम का भी हेतु है। परमेष्ठी का सोम सलिल था। वह रस सरणशील था। उसे सरिर या इरामय भी कहते हैं। वह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पृथिवी पर आते-आते गाढ़ा होकर शिलाभाव में परिणत हो जाता है। वही अश्मा या पर्वत है। उसी अश्मा सोम ने पृथिवी को पकड़ रक्खा है। चट्टान अश्मा सोम का प्रतीक है। अश्मा सोम या पाषाण रस का साक्षात् प्रतीक शिलाजतु है।

उत्तर चरित्र में जितना वर्णन है वह देवी के पार्थिव और चान्द्ररूप का है। स्वयंभू और परमेष्ठी की गौरी यहाँ पृथिवी में पार्वती बनती है। जो गौरी पारमेष्ठ्य सलिल का तक्षण करती है वही यहाँ पृथिवी में पार्वती कहलाती है। गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षती ऋ० १।१६४।४१)। पर्वत राज हिमवान् अश्मा सोम के प्रतीक हैं। वहीं हिमाचल पर पार्वती की शरण में देवता गए (पार्वती हिमाचल कृताश्रया, ८५।४१)। हिमालय के उत्तर पार्श्व में उन्हें देवी मिली। सौरी शक्ति का विकास उत्तर भाग में ही होता है। सूर्य की हैमवती उमा का ही पार्थिव रूप पार्वती है। सूर्य या शंभु उत्तर चरित्र के अधिष्ठाता हैं। इनकी शक्ति भी उत्तर में विकसित होती है दक्षिण में नहीं।

देवी के इस स्तोत्र में 'नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः' यह मन्त्र का स्वरूप आता है। इसमें नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै जो तीन बार कहा जाता है वह शक्ति का वितान है जो त्रिक रूप में होता है। त्रिषत्या वै देवाः—यही अग्नि के तीन जन्म या देवों के तीन सत्य कहलाते हैं। शक्ति का पूर्व चरित्र स्वयंभू-परमेष्ठी से, मध्यम चरित्र सूर्य से और उत्तर चरित्र पृथिवी से संबंधित है। सृष्टि का स्वरूप पिपीलिका मुखी है। मुख भाग स्वयंभू, चक्षुस्थानीय सूर्य और पादस्थानीय पृथिवी ये तीन अन्नाद अग्नियाँ हैं जिन्हें क्रमशः ब्रह्माग्नि देवाग्नि और भूताग्नि कहते हैं। इनके बीच में परमेष्ठी और चन्द्रमा ये दो अन्न या सोम हैं।

नमोनमः—यह शिवशक्ति की सम्मिलित आराधना है। यह विश्राम भूमि है जिसमें शिवशक्ति का समुच्चय है।

श्लोक ८५।३७ में कहा है कि पार्वती गङ्गा में स्नान करने आई थी। पारमेष्ठ्य सोम का प्रतीक गङ्गा है। उस सोम समुद्र से वह शक्ति अपने को संयुक्त करती है, भले ही वह पृथिवी में उत्पन्न हो। गंगा में स्नान करते ही वह सूक्ष्म रूप में परिवर्तित हुई और शिवा बन गई। उसके शरीर कोश से शिवा कौशिकी उत्पन्न होती है (८५।३८—४०)। शरीर में और विराट् में भी कौशिकी है। जब सौम्य भाव शरीर कोश से निकल गया तो पार्वती कृष्णा या कालिका बन गई। असुरों को भयभीत करने के लिए कालिका रूप आवश्यक है। कालिका रूप तामसी है। कौशिकी अम्बिका के सौम्य रूप को खाने के लिए चण्ड-मुण्ड दौड़े। अमृत मन्थन के समय असुर अमृत को खाना चाहते थे। वहाँ भगवान् को दूसरे रूप से उनका मोहन करना पड़ा। सोम या अमृत जड़ मोहन था। उससे अधिक नारी रूप से मोहित किया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मस्तक सैंहिकेय और मध्य भाग की संज्ञा विधुन्तुद है। देवों की ऊर्ध्वगति होती है, असुरों की अर्वाक्। वे मस्तक नीचा करके चलते हैं। मस्तक पृथ्वी का भाग सैंहिकेय है और धड़ चन्द्रमा का भाग है। येही दोनों चण्ड-मुण्ड हैं। केन्द्र की शक्ति मुण्ड और परिधि की चण्ड है। दोनों एक दूसरे के सहयोगी हैं। केन्द्र ब्रह्मौदन है। परिधि प्रवर्ग्य है। केन्द्र की शक्ति धन और परिधि की ऋण होती है। प्रवर्ग्य भी शक्ति है, जैसे तम में भी रश्मियों का प्रसार रहता है। शक्ति का सूत्र है—

यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्पं व्यपोहति।
यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्ता भविष्यति ॥
(८५।६६)

अध्याय ८६ में धूम्रलोचन दैत्य के युद्ध का वर्णन है। वह अन्धकार स्वरूप है। अग्नि के मन्द तेज से धूम्र उत्पन्न होता है। इधर देवी का वाहन जो सिंह है वह क्षात्र-तेज का प्रतीक सूर्य है। चण्ड-मुण्ड के बध के कारण देवी का नाम चामुण्डा पड़ता है (८६।२५)। सब असुरों के प्रवर्ग्य उसी एक शक्ति में लीन हो जाते हैं। वह चण्ड और मुण्ड दोनों को अपने भीतर समेट लेती है। संहार भूतों का ही होता है, प्राणों का नहीं। शरीर असुर या भूत है। असुर सृष्टि के विनाश का अर्थ है भूत सृष्टि का संवरण। देव भाव से असुर भाव का संयमन हो जाता है। वह लयमात्र है, नितान्त नाश नहीं।

चण्डिका चान्द्री शक्ती है। इसकी सहायता के लिए सप्तमातृकाएँ या योगिनियाँ उत्पन्न होती हैं। यही ऋग्वेद की 'सप्त स्वसारः' या सात बहनें हैं (ऋ० १।१६४।३)। इन्हें स्वसृविध प्राण कहते हैं, जो एक ही मूल प्राणशक्ति के सात रूप हैं। इन सातों का अलग-अलग नैदानिक ध्यान है। जो देवताओं के ध्यान हैं वे ही इनके हैं। उनके आयुधों की एक-एक निदान विद्या में व्याख्या है। ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, नारसिंही, ऐन्द्री ये सात देव शक्तियाँ चण्डिका की सहायता के लिए उपस्थित हुईं। स्वयं शिव ने उन्हें प्रेरित किया। इसी मातृगण से रक्तबीज असुर का वध हुआ। वस्तुतः ये सातों एक ही देवी शक्ति के रूप हैं या उसकी विभूतियाँ हैं, जैसे एक देवमाता अदिति के सप्तपुत्र सात आदित्य हैं।[1]

मन्वन्तर वर्णन

इसके बाद अध्याय ९४ से १०० तक बचे हुए मनुओं का वर्णन और उनके सम्बन्ध की छोटी मोटी कल्पित कथाएँ हैं।

---

१. एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा।
पश्यैता दुष्ट ! मय्येव विशन्त्यो मद्विभूतयः ॥
ततः समस्तास्ता देव्यो ब्रह्माणीप्रमुखा लयम्।
तस्या देव्यास्तनौ जग्मुरेकैवासीत्तदाम्बिका ॥ (९०।३—४)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अध्याय १०१ में मार्कण्डेय राजवंशों का वर्णन शुरू करते हैं। उसी प्रसंग में कहा है कि ब्रह्मा ने दक्ष को जन्म दिया और दक्ष ने मार्तण्ड सूर्य को। किन्तु स्वयं ब्रह्मा का जन्म उसी हिरण्याण्ड से कहा जाता है। ब्रह्मा ने तीन लोक और चार वेदों को रचा। इसी प्रसंग में अ० १०२-११० तक पुनः सूर्य की महिमा का बहुत ही उदात्त और विस्तृत वर्णन किया गया है। स्वयं ब्रह्मा सूर्य की स्तुति करते हैं। सूर्य त्रयी विद्या का रूप है जिसकी व्याख्या पहले की जा चुकी है। सूर्य विष्णु की प्रथम सृष्टि है। अध्याय १०४ में देवमाता अदिति तप करती हुई सूर्य की स्तुति करती है और सूर्य अदिति को वरदान देते हैं कि मैं तुम्हारे गर्भ से जन्म लूँगा। ऋग्वेद १०।७२ के दाक्षायणी सूक्त में अदिति दक्ष और मार्तण्ड के पारस्परिक संबन्ध और जन्म का जो उल्लेख है उसी का यहाँ संकेत किया गया है। उस सूक्त में देवों के जन्म का वर्णन है। उसका सार यह है। अदिति देवमाता है। वह दक्ष को जन्म देती है, किन्तु उसे दक्ष की पुत्री भी कहा गया है। इसका अर्थ यह है—अदिति विश्व की विराट् शक्ति है। उससे ही सृष्टि में नाना यज्ञ प्रवृत्त होते हैं। प्रत्येक यज्ञ का प्रजापति या उसका प्रतिपादक दक्ष है। विराट् शक्ति का ही एक-एक अंश प्रत्येक यज्ञ में आता है। शक्ति के आंशिक रूप को दक्ष की पुत्री कहा गया है।

देवमाता अदिति के आठ पुत्र कहे गए हैं (अष्टौ पुत्रासो अदितेः ये जातास्तन्वस्परि, १०।७२।८)। उनमें सात तो केवल शक्तिरूप हैं। वे देव कहलाए। उनसे भूत सृष्टि नहीं हुई। देवता अमर हैं। वे मरते नहीं, किन्तु भूतसृष्टि बिना मृत्यु के संभव नहीं होती। अतएव आठवां पुत्र जो आदित्य था उसे अदिति ने जन्म और मरण के सम्मिलित साँचे में ढाला। शक्ति या प्राण का भूत के धरातल पर अवतीर्ण होना यही सृष्टि है। यही मार्तण्ड सूर्य से आरम्भ होती है।[1]

केवल भूतों से बना हुआ सूर्य का रूप मरा हुआ अण्डा है। उसके भीतर जो छिपा हुआ प्राणबीज है जिसे हिरण्य कहते हैं। वह जब जाग उठता है तो वही हिरण्यगर्भ सूर्य मार्तण्ड कहा जाता है। सौरमण्डल की समस्त सृष्टि का कारण वही है। यही अध्याय १०५ की संक्षिप्त व्याख्या है।

अध्याय १०६ में सूर्य के परिवार संज्ञा, छाया आदि की वही कथा है जो पहले आ चुकी हैं। एक विशेष उल्लेख यह है कि विश्वकर्मा ने शाकद्वीप में सूर्य को खरादपर चढ़ाकर उसका तेज छाँटा। अवश्य ही यह शक कुषाणों द्वारा भारत में लाई गई सूर्य पूजा की ओर संकेत करता है, यद्यपि सूर्य और त्वष्टा की कथा का मौलिक रूप भारतीय था।

---

१. सप्तभिः पुत्रै रदिति रुपप्रैत् पूर्व्यं युगः।
प्रजायै मृत्यवे त्वत् पुनर्मार्ताण्डमाभरत्॥
(ऋ० १०।७२।९)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अध्याय १०९ में पुनः सूर्य का एक स्तोत्र है जिसमें उसे अक्षर, अनृत-ऋत, व्यक्ताव्यक्त और धर्माधर्म प्रवर्तक कहा गया है। वह सात छन्द रूपी सात अश्वों को रथ में जोड़कर आकाश की यात्रा करता है। वह भास्करदेव अग्नि-सोममय है।

अध्याय ११० में राज्यवर्धन नाम के किसी राजा की सूर्योपासना का उल्लेख है।

सूर्यवंश

अध्याय १११ से १३६ तक सूर्यवंशी राजाओं की वंशावली और उनसे संबंधित कुछ कथाओं का वर्णन है। अध्याय १११ से वैवस्वत मनु के वंश का वर्णन है। वैवस्वत मनु के सात पुत्र हुए—इक्ष्वाकु, नाभग, रिष्ट, नरिष्यन्त, नाभाग, पृषध्र और धृष्ट। अन्य संतान की इच्छा से मनु ने मित्रावरुण के लिये यज्ञ किया। उससे इला नाम की पुत्री हुई। वही पीछे सुद्युम्न नामक पुत्र हो गया। इला के पुरुरवा नामक पुत्र हुआ। सुद्युम्न रूप में उसी के उत्कल, विनय, और गय ये तीन पुत्र हुए। उत्कल से उत्कल देश के निवासी हुए और गय से गया नामक नगर का नाम पड़ा। पुरूरवा प्रतिष्ठान का राजा हुआ। यह राजधानी गंगा यमुना के संगम के निकट गंगा के उत्तर तट पर बसाई गई।

अध्याय ११२ में पृषध्र की कथा है जिसने आखेट के समय भूल से एक गऊ का वध कर दिया और शापवश शूद्र हो गया।

मनु के जिन दो पुत्रों को यहाँ नाभग और रिष्ट कहा है उनका पाठान्तर नाभानेदिष्ट भी मिलता है। मनु के अन्य पुत्रों में एक करूष था जिससे कारूष नामक क्षत्रिय हुए।

दिष्ट (रिष्ट) के पुत्र नाभाग ने एक वैश्य स्त्री से विवाह किया और स्वयं भी वैश्य बन गया। उनका पुत्र भनन्दन (पाठान्तर, भलन्दन) पृथिवी का राजा हुआ। नाभाग ने राज्य करना स्वीकार न किया तो उसकी वैश्य पत्नी ने बताया कि वस्तुतः वह वैश्य न थी पर राजकुमारी होते हुए भी वह अगस्त्य ऋषि के शाप से वैश्य हो गई थी।

अध्याय ११६ में कथा है कि भनन्दन के पुत्र वत्सप्रिय ने एक राजपुत्री सुनन्दा की पाताल में एक दानव से रक्षा की और उससे विवाह किया। उसका पुत्र प्रांशु, प्रांशु का प्रजाति और प्रजाति का खनित्र हुआ। खनित्र अपने भाइयों के कुचक्र से दुखी होकर बन में चला गया (अ० ११७-११८)। उसके पुत्र क्षुप ने कृषि के लिये यज्ञ किया। उसका पुत्र वीर, वीर का विदिंश और विदिंश का खनिनेत्र हुआ। इन्द्र की कृपा से खनिनेत्र के बलाश नाम का पुत्र हुआ। उसी का दूसरा नाम करन्धन प्रसिद्ध हुआ (अ० १२१)। उसके पुत्र अवीक्षित् ने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनेक राज कन्याओं से विवाह किया और वैशालिनी नामक राजकुमारी को उसके स्वयंवर में से हर ले गया। अन्य राजाओं ने उसे जीत कर बाँध लिया। करन्धम ने अपने पुत्र को उनसे छुड़ाया तब कई प्रकर के उतार-चढ़ाव के बाद अवीक्षित् ने राजकन्या से विवाह किया और उनसे मरुत्त नाम का पुत्र हुआ जो चक्रवर्त्ती राजा कहलाया (अ० १२३-१२६)। उसके राज्य में नागों ने उपद्रव किया पर अन्त में ऋषियों के बीच में पड़ने से नागों ने संधि कर ली। मरुत्त का पुत्र नरिष्यन्त हुआ। उसके पुत्र दम ने दशार्ण देश की राजकुमारी से विवाह किया किन्तु स्वयंवर में आए हुए राजाओं ने उसका विरोध किया। उनमें से वपुष्मत् नामके एक राजा ने दम के पिता नरिष्यन्त को मार डाला। इस पर दम ने अपने पिता का बदला लेने के लिये वपुष्मत् का वध कर दिया और पिता की विधिवत् श्राद्ध-क्रिया की।

इस प्रकार मार्कण्डेय और क्रौष्टुकि का संवाद समाप्त होता है। यह मार्कण्डेय पुराण ज्ञान और विज्ञान से संयुक्त है। जो इसे जानता है उसे ऋद्धि और वृद्धि, स्मृति, और श्री, पुष्टि और तुष्टि एवं शान्ति प्राप्त होती है (१३७।६)।

इति शुभं भूयात्

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मार्कण्डेय पुराण के संस्करण

(१) जीवानन्द विद्यासागर भट्टाचार्य द्वारा सम्पादित, सरस्वती प्रेस, कलकत्ता द्वारा मुद्रित (१८७९ ई०)। इस संस्करण का मैं इस ग्रन्थ में उपयोग कर सका हूँ।

(२) के०एम० बनर्जी, बिब्लियोथिका इंडिका (Bibliotheca Indica) में प्रकाशित (१८६२ ई०)। यह मुझे उपलब्ध नहीं हो सका।

(३) वेंकटेश्वर प्रेस द्वारा प्रकाशित मूल पाठ का एक संस्करण। यह भी मुझे नहीं मिला।

(४) कन्हैयालाल मिश्र कृत भाषा टीका सहित, खुले पृष्ठ, बम्बई। यह भी मुझे नहीं मिल सका।

(५) रघुराज दूबे कृत भाषा टीका सहित, लखनऊ। इसे भी मैं नहीं देख सका।

(६) पार्जिटर का अंग्रेजी अनुवाद। बिब्लियोथिका इंडिका में एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित (१९०४)। यह अंग्रेजी अनुवाद मुझे बराबर उपलब्ध था। अक्षरार्थ की दृष्टि से यह सर्वथा प्रशंसनीय है। अध्याय ५७-५८ के भौगोलिक नामों की पहचान में पार्जिटर ने अथक परिश्रम किया है। भौगोलिक नामों की पहचान के लिये और भी देखिये हरिहर त्रिवेदी का लेख स्टडीज इन एंशेंट ज्याग्रफी (मार्कण्डेय पुराण), इंडियन हिस्टॉरिकल क्वार्टरली, वर्ष १०, अंक ४, १९३४।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.